'रामचरितमानस' का मीडिया रूपांतरण और रामानंद सागर का 'धारावाहिक रामायण'

Ramcharitmanas Ka Media Rupantaran Aur Ramanand Sagar Ka Dharavahik Ramayan

[Adaptation of Ramcharitmanas in media and Serial Ramayan by Ramanand Sagar]

पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध

शोध–निर्देशक

प्रो. देवेन्द्र कुमार चौबे

शोधार्थी

अभिषेक कुन्दन

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067

2017

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated : 18/ 07 /2017

DECLARATION

I hereby declare that the research work done in this Ph.D. Thesis entitle **(RAMCHARITMANAS KA MEDIA RUPANTARAN AUR RAMANAND SAGAR KA DHARAVAHIK RAMAYAN) 'ADAPTATION OF RAMCHARITMANAS IN MEDIA AND SERIAL RAMAYAN BY RAMANAND SAGAR'** by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

ABHISHEK KUNDAN
(Research Scholar)

PROF. DEVENDRA KUMAR CHOUBEY
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

PROF. GOBIND PRASAD
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217
Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in, jnucil@gmail.com

समर्पण

माता–पिता की आस्था एवं संघर्षपूर्ण जीवन को...
जिसकी प्रेरणा ने मुझे शिक्षा के इस मुकाम तक पहुँचाया।

भूमिका

'रामचरितमानस' एवं 'धारावाहिक' रामायण' दोनों ही रामकथा की अभिव्यक्ति के दो भिन्न माध्यम हैं, परन्तु दोनों का उद्देश्य रामकथा की प्रस्तुति है। एक साहित्यिक विधा है तो दूसरा धारावाहिक। दोनों ही माध्यमों ने अपने समसामयिक समाज को सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक रूप से प्रभावित किया, जिसका प्रभाव आज भी भारतीय जनमानस खासकर हिन्दू संस्कृति पर देखा जा सकता है।

सोलहवीं शताब्दी में तुलसीदास ने जब 'रामचरितमानस' की रचना अवधी भाषा में की, तब उसका व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ। उसका सबसे प्रमुख कारण था, लोकभाषा में रचा जाना, साथ ही कथा की रसमयता एवं गीतात्मकता ने उसे आम जनमानस का कंठहार बना दिया। हालाँकि तुलसीदास से पूर्व भी संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं में रामकथाएँ मौजूद थी लेकिन जितना व्यापक प्रभाव 'रामचरितमानस' का पड़ा, उतना अन्य रामकथाओं का नहीं। इसके कई कारण थे, पहला यह कि उत्तर भारत की लोकभाषाओं में कोई व्यवस्थित रामकथा नहीं थी, दूसरा संस्कृत हर वर्ग के लिए सुलभ नहीं था। लेकिन अवधी में इसके रूपान्तरण ने इसे काफी लोकप्रियता प्रदान की।

भाषा के पश्चात 'रामचरितमानस' की लोकप्रियता का दूसरा प्रमुख कारण राम के 'मर्यादापुरुषोत्तम' की छवि थी, जिसकी निर्मिति तुलसीदास ने तत्कालीन

सामाजिक परिस्थिति एवं युगबोध के अनुसार की थी। फलतः जनता पर राम के इस नर एवं नारायण के समन्वित रूप का व्यापक प्रभाव पड़ा।

वर्तमान समय में भी रामकथा का सर्वाधिक प्रचलित रूप 'रामचरितमानस' है। तुलसीदास रचित इस काव्यग्रन्थ का वर्तमान समय में भी जितना व्यापक प्रभाव पड़ा है, उतना शायद ही किसी अन्य रामकथा का पड़ा हो। रामकथा के पात्रों, घटनाओं नीतिपरक वाक्यों की जो छवि आम जनता के दिलो दिमाग में सृजित हुई, उसका गहरा प्रभाव समाज एवं सामाजिक सम्बन्धों पर पड़ा। इसी प्रभाव एवं स्वरूप से प्रेरित होकर रामानन्द सागर ने उसे जीवन्त पात्रों और घटनाओं के माध्यम से धारावाहिक के रूप में प्रस्तुत किया। मशीनी पुनरुत्पादन एवं आधुनिक तकनीक के दौर में जब प्राचीन कला एवं संस्कृति को पुनर्स्थापित करने का दौर शुरू हुआ, तब मिथक, पुराणों की भी अभिव्यक्ति के लिए नए माध्यम तलाशे जाने लगे, जिसमें टेलीविजन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। 'धारावाहिक रामायण' भी इसी व्यवस्था का एक प्रयोग था। यह वह दौर था जब दूरदर्शन को भारत में लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया जा रहा था, जिसमें इस धारावाहिक को अभूतपूर्व सफलता मिली। इस सफलता ने न सिर्फ दूरदर्शन को बल्कि रामकथा को भी एक बार फिर जनमानस में स्थापित कर दिया।

सोलहवीं शताब्दी में रामकथा को लोकप्रिय बनाने में जो योगदान तुलसीदास का है, वही बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में रामानन्द सागर का है। हालाँकि दोनों रामकथा को ही अभिव्यक्त कर रहे हैं किन्तु उनका स्वरूप भिन्न है। यह शोध भी इसी स्वरूपगत भिन्नता को ध्यान में रखकर किया गया है। इस शोध–कार्य में 'रामचरितमानस' एवं 'धारावाहिक रामायण' के विविध पक्षों को ध्यान में रखकर तुलना की गई है। 'साहित्य एवं इलेक्ट्रॉनिक माध्यम' के सम्बन्ध से लेकर दोनों के कथानक, पात्र, भाषा एवं उद्देश्य तथा प्रभाव की तुलना की गई है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध ''रामचरितमानस का मीडिया रूपान्तरण और रामानन्द सागर का धारावाहिक रामायण'' के प्रथम अध्याय में साहित्य एवं इलेक्ट्रॉनिक

माध्यम से सम्बन्ध पर चर्चा की गई है। साहित्य एवं इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के क्रमशः विकास एवं विस्तार पर प्रकाश डाला गया है। दोनों की अभिव्यक्ति के साधनों एवं सीमाओं पर चर्चा की गई है। एक लिखित माध्यम है जो शब्दों में अभिव्यक्त होता है जबकि दूसरा पर्दे पर अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार लिखित माध्यम के दृश्य माध्यम तक पहुँचने की प्रक्रिया में क्या–क्या बदलाव करने पड़ते हैं? या फिर दोनों माध्यमों के बीच क्या समानता या असमानता है? इन तमाम प्रश्नों पर विचार किया गया है।

दूसरे अध्याय के अन्तर्गत वर्तमान समय में रामकथा की परम्परा को आगे बढ़ाने में जिन–जिन स्रोतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, उस पर विचार किया गया है। रामकथा को धारावाहिक स्वरूप तक पहुँचाने एवं उसकी सफलता के पीछे जिन–जिन आदि स्रोतों एवं आधुनिक स्रोतों की भूमिका रही है, उन पर विचार किया गया है। साथ ही रामायण धारावाहिक से पूर्व विभिन्न भारतीय भाषाओं में फिल्मों की परम्परा एवं उसके प्रभाव स्वरूप आगे की परम्परा पर भी विचार किया गया है।

तीसरे अध्याय में रामकथा के स्वरूप पर चर्चा की गई। धारावाहिक के दूसरे मुख्य स्रोत 'वाल्मीकि रामायण' से 'रामचरितमानस' की तुलना की गई है। पुनः 'रामचरितमानस' एवं 'धारावाहिक' रामायण' के कथानक की तुलना की गई है और अन्त में धारावाहिक के कथानक का तकनीकी विश्लेषण किया गया है।

चौथे अध्याय में 'रामचरितमानस' के पात्रों द्वारा अभिव्यक्त तुलसीदास के सामाजिक सरोकारों पर विचार किया गया है। 'रामचरितमानस' एवं 'धारावाहिक रामायण' के पात्रों के चरित्र का तात्विक एवं मनोवैज्ञानिक विवेचन किया गया है, साथ ही इस दौरान 'रामचरितमानस' से 'धारावाहिक' के पात्रों की समानता एवं भिन्नता पर भी प्रकाश डाला गया है।

पाँचवे अध्याय के अन्तर्गत 'रामचरितमानस' से पूर्व की अवधी भाषा की परम्परा पर विचार किया गया है। तुलसीदास की भाषा का विश्लेषण किया गया है। 'रामचरितमानस' एवं 'धारावाहिक रामायण' के पात्रों के भाषिक–स्तर की

विवेचना की गई है। अन्त में धारावाहिक हेतु संवाद निर्माण की प्रक्रिया एवं उसके अनुसार धारावाहिक रामायण के संवाद की भाषा का विश्लेषण किया गया है।

छठे अध्याय में 'रामचरितमानस' एवं 'धारावाहिक रामायण' के उद्देश्य एवं प्रभाव का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टि से विश्लेषण किया गया है।

किसी भी कठिन कार्य के लिए जितना आवश्यक उस कार्य को सफल बनाना है, उससे भी आवश्यक, उस कार्य में सहयोग हेतु व्यक्तियों का आभार प्रकट करना भी है। प्रस्तुत शोध–प्रबंध के लिए सर्वप्रथम अभिभावक तुल्य गुरुवर प्रो. रामबक्ष का आभारी हूँ, जिन्होंने इस महत्त्वपूर्ण विषय पर काम करने का सुझाव दिया और यह शोध कार्य लगभग उन्हीं के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। पूरी शोध प्रक्रिया के दौरान न सिर्फ एक मार्गदर्शक की भूमिका निभाई वरन् इस चुनौतीपूर्ण कार्य के लिए हौसला भी बढ़ाया। उनके मार्गदर्शन के बगैर यह असाध्य काम सम्भव नहीं था। तत्पश्चात प्रो. देवेन्द्र चौबे का आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे शोध के अन्तिम दिनों में बिना किसी यक्ष प्रश्न के मुझे शोध–छात्र के रूप में अनुमति प्रदान की। तुलसीदास के शब्दों में कहें तो मेरी स्थिति उस समय 'बूड़त कछु अधार जनु पाई' जैसी थी। इस प्रतिकूल परिस्थिति में उन्होंने मुझे विभागीय चिन्ताओं से इतर शोध–कार्य हेतु प्रेरित किया। प्रो. देवशंकर नवीन का आभारी हूँ। जिन्होंने समय–समय पर न सिर्फ शोध–कार्य हेतु हौसला बढ़ाया वरन् विषय से जुड़ा महत्त्वपूर्ण सुझाव भी देते रहे। भारतीय भाषा केन्द्र के सभी शिक्षकों का आभार जिनके मार्गदर्शन एवं अध्यापन ने मेरी साहित्यिक समझ को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनिता मैम का आभारी हूँ जिन्होंने रामायण धारावाहिक के पटकथा की दुर्लभ प्रति उपलब्ध करवाई। पारिवारिक समर्थन के बगैर यह शोध–कार्य सम्भव नहीं था इसलिए मम्मी–पापा का बहुत–बहुत आभार जिन्होंने अपने संघर्षशील जीवन में पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं से दूर रखा और मेरे अध्ययन की इस लम्बी यात्रा में धैर्य बनाए रखा। अपने बड़े भाई 'अमित कुमार गुंजन' का आजीवन ऋणी हूँ, जिन्होंने आज तक आर्थिक एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त रखा एवं जीवन के हर मोड़ पर एक कुशल मार्गदर्शक की

भूमिका निभाई। बड़ी बहन दीपिका का आभारी हूँ, जो अपने घर एवं कार्यालयी व्यस्तताओं के बावजूद शोध–कार्य की सुधि लेती रहीं।

मित्रों की सहायता के बगैर यह शोध–कार्य सम्भव नहीं था। चित्तरंजन, कविता, मनोज, शिवम्, स्वप्निल, डेविड, सूरी, हेमन्त जी, अभय जी का आभारी हूँ, जिन्होंने शोध–कार्य के दौरान रामकथा एवं धारावाहिक रामायण से जुड़े कई तथ्यों की जानकारी प्रदान की।

डॉ. पीयूष राज का आभारी हूँ, जिन्होंने स्नातकोत्तर से आज तक कुशल मार्गदर्शक एवं बड़े भाई की भूमिका निभाई।

टंकण के लिए सुरेश मौर्य जी का बहुत–बहुत आभार जिन्होंने अपनी व्यस्तता के बावजूद भी इस कार्य के लिए सहमति प्रदान की और इससे जुड़ी तमाम तकनीकी समस्याओं से मुक्त रखा। प्रूफ के लिए नीलम का आभार।

अन्त में प्रिय अनुज नीलमणि का आभार, जिसने न सिर्फ शोध–कार्य के दौरान हर सम्भव मदद की बल्कि दैनिक आवश्यकताओं से जुड़ी हर चिन्ताओं से मुक्त रखा। यह शोध–प्रबंध यदि पाठकों को कुछ भी तोष दे पाया तो अपना श्रम सार्थक समझूंगा।

–अभिषेक कुन्दन

अनुक्रम

भूमिका III-VII

1. पहला अध्याय 1-36
साहित्य और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम
1.1 माध्यम का प्रश्न और साहित्य
1.2 साहित्यिक माध्यम : अभिव्यक्ति की सीमाएँ
1.3 इलेक्ट्रॉनिक माध्यम : स्वरूप और साधन
1.4 इलेक्ट्रॉनिक माध्यम : अभिव्यक्ति के साधन

2. दूसरा अध्याय 37-67
इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में रामकथा का स्वरूप
2.1 रामकथा के प्राचीन स्रोत
2.2 रामकथा के मध्ययुगीन स्रोत
2.3 रामकथा की लोकाभिरुचि एवं स्वरूप
2.4 धारावाहिक रामायण से पूर्व रामकथा का सिनेमाई रूपान्तरण
2.5 धारावाहिक की परम्परा और धारावाहिक रामायण

3. तीसरा अध्याय 68-114
रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण का कथानक
3.1 रामकथा का स्वरूप
3.2 वाल्मीकि रामायण बनाम रामचरितमानस
3.3 रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण का कथानक
3.4 धारावाहिक के कथानक का तकनीकी विश्लेषण

4. चौथा अध्याय 115-161
रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण के पात्र
4.1 रामचरितमानस के पात्रों द्वारा चित्रित तुलसीदास के सामाजिक सरोकार
4.2 रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण के पात्रों के चरित्र का तात्त्विक विवेचन
4.3 रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण के प्रमुख पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

5. पाँचवाँ अध्याय 162-225
रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण की भाषा
5.1 प्रेमाख्यान की भाषिक परम्परा और रामचरितमानस
5.2 रामचरितमानस की भाषा

5.3 रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण के पात्रों का भाषिक–स्तर
5.4 संवाद की भाषा और धारावाहिक रामायण

6. छठा अध्याय 226-270
रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण का उद्देश्य एवं प्रभाव
6.1 रामचरितमानस का उद्देश्य
6.2 रामचरितमानस का प्रभाव
6.3 धारावाहिक रामायण का उद्देश्य
6.4 धारावाहिक रामायण का प्रभाव

7. **उपसंहार** 271-284

8. **परिशिष्ट** 285-294
1. आधार ग्रंथ
2. सन्दर्भ ग्रंथ : हिन्दी और अंग्रेजी
3. सहायक ग्रंथ : हिन्दी और अंग्रेजी
4. पत्र–पत्रिकाएँ : हिन्दी और अंग्रेजी
5. वेब साइट

पहला अध्याय

साहित्य और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम

1.1 माध्यम का प्रश्न और साहित्य

1.2 साहित्यिक माध्यम : अभिव्यक्ति की सीमाएँ

1.3 इलेक्ट्रॉनिक माध्यम : स्वरूप और साधन

1.4 इलेक्ट्रॉनिक माध्यम : अभिव्यक्ति के साधन

पहला अध्याय
साहित्य और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम

साहित्य और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम दोनों मनुष्य के जीवन एवं जीवन–पद्धति के क्रमिक विकास एवं विस्तार का प्रतीक है। मानवीय सभ्यता के विकास के क्रम में जब मनुष्य ने प्रकृति के साथ अपनी जीवन–पद्धति का विकास किया, तो इस क्रम में उसने अपने अनुभवों से कई आवश्यक वस्तुओं की खोज की। विकास और खोज की इस सतत् प्रक्रिया में कई विचार भी विकसित हुए। जैसे–जैसे जीवन–पद्धति का यह क्रम बढ़ता गया, मनुष्य ने भोजन, वस्त्र को इतर एक–दूसरे से संवाद स्थापित करने हेतु अपनी भाषा विकसित की, फिर जीवन के अन्य साधन। मनुष्य ने जब अपना समाज विकसित किया, तो उस समाज को सांगठनिक स्तर पर विकसित करने के लिए नियमों, विचारों एवं अनुशासनों की भी सृष्टि की। जिसमें भाषा प्रमुख थी। क्योंकि यही वह जरिया था, जिससे विचारों का परस्पर आदान–प्रदान किया जा सकता था। इस प्रसंग में मार्क्स की धारणा गौरतलब है "भाषा उतनी ही पुरानी है, जितनी मनुष्य की चेतना, भाषा व्यवहारिक चेतना है। चेतना की तरह भाषा का भी विकास मनुष्य के पारस्परिक सम्पर्क, साहचर्य और सहयोग की आवश्यकता तथा प्रक्रिया से होता है।"[1] जाहिर है मनुष्य की चेतना के साथ–साथ ही भाषा निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी, जिसे आगे चलकर सामूहिक जीवन ने इसे और विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

पुरापाषाण काल से लेकर ताम्रपाषाण और कांस्य युग होते हुए भाषायी विकास का यह क्रम सिंधु घाटी सभ्यता तक पहुँचता है, जहाँ लोगों को लिपि का ज्ञान था। इस सिंधु लिपि में 400 अक्षर हैं। ईसा के सहस्त्रों वर्ष पूर्व भारत में

---

[1] उद्धृत मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, पृष्ठ 269

आर्यों का प्रथम आगमन माना जाता है। जिसे ऋग्वैदिक आर्य कहते हैं। ऋग्वेद की रचना इसी समय हुई। वैदिक संस्कृत उस समय की महत्त्वपूर्ण भाषा थी जिसमें वेद एवं अन्य साहित्य रचे गए। ईसापूर्व छठी सदी तक वैदिक कर्मकाण्डों की परम्परा का अनुपालन कम हो गया था। फलतः उपनिषदों का प्रादुर्भाव हुआ। जैसे–जैसे मानवीय सभ्यता विकसित होती गई, ज्ञान के विकास के साथ–साथ भाषा भी विकसित होती गई। आगे चलकर गुप्तकाल में कालिदास जैसे विद्वान ने कई साहित्यिक ग्रंथों की रचना की। वैदिक सभ्यता ने साहित्यिक रचना की कई दृष्टि से समृद्ध किया। उस दौर की रचनाएँ या तो ताम्रपत्र या भोज पत्रों में संरक्षित की गई या फिर श्रुति–परम्परा द्वारा मौखिक रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होती गई। सर्वप्रथम चीन में और फिर 1440 ई. में जर्मनी में जॉन गुटेनबर्ग ने टाइपराइटर का अविष्कार किया। फलतः बड़ी संख्या में धर्मग्रंथों की छपाई प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम बाइबिल की 300 प्रति मुद्रित कर गुटेनबर्ग ने पेरिस भेजा। फिर धीरे–धीरे मुद्रण की यह कला सम्पूर्ण यूरोप में फैली। भारत में यह पुर्तगालियों के साथ आई और 1670 ई. में भीम जी पारेख ने एक उद्योग के रूप में दीव में प्रेस की शुरुआत की। कहने का तात्पर्य यह कि जैसे–जैसे ज्ञान विज्ञान का विस्तार एवं प्रसार होता गया, उसे संरक्षित करने की नई–नई तकनीक का आविष्कार होता गया। पहले लिपि, फिर भोजपत्र तत्पश्चात मुद्रण कला के आविष्कार ने दुनियाँ में बौद्धिक ज्ञान के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। कागज पर लिखित रूप में जब ज्ञान–विज्ञान का प्रसार होने लगा तो विश्व के विभिन्न भागों में इस ज्ञान–विज्ञान का विनिमय भी शुरू हुआ। फलस्वरूप ज्ञान एक सार्वभौम सत्ता के रूप में स्थापित हुआ। मुद्रण पद्धति ने मौखिक संप्रेषण का स्थान ले लिया कानों के बजाए अब नेत्र को प्राथमिकता मिल गई। व्यक्ति धीरे–धीरे आत्मकेन्द्रित होने लगा क्योंकि इस पद्धति में मौखिक पद्धति की तरह सामुदायिकता नहीं थी। व्यक्ति मुद्रित प्रति को व्यक्तिगत स्तर पर पढ़ने के लिए स्वतंत्र था। अब ज्ञान हासिल करने के लिए हर व्यक्ति स्वतंत्र था। मुद्रण–पद्धति ने साहित्य और समाज दोनों को वैचारिक एवं सामाजिक स्तर पर जोड़ने का काम किया। विश्व की विभिन्न भाषाओं में प्रचुर साहित्य लिखे गए, कई भाषाओं में उनके अनुवाद हुए। मुद्रण पद्धति ने साहित्य को समाज के लिए सुलभ बनाया।

इस प्रकार मानस से लेकर मुद्रण तक की इस विकास यात्रा में मनुष्य ने संरक्षण के कई उपादान विकसित किए। साहित्य के सम्प्रेषण एवं ज्ञान के संरक्षण की यह पद्धति आज अपने पूर्ण रूप में विकसित है। साहित्य को नई पीढ़ी तक पहुँचाने और उसे संरक्षित करने में इस प्रिन्ट मीडिया की सबसे बड़ी भूमिका है। किन्तु बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में जब साहित्य की शाब्दिक संरचना के अन्त की अनुगूँज सुनाई देने लगी, तब उसी दौर में 'आल्विन कर्नेन' ने एक लेख लिखा, जिसका शीर्षक था 'साहित्य की मृत्यु'। हालाँकि वह दशक ही अन्तवाद की उद्घोषणा का दशक था। जिसमें 'डेनियल बेल' ने 'एण्ड ऑफ आइडियोलॉजी' की बात की, तो वही अमेरिकी विचारक 'फ्रांसिस फूकूयामा' ने 'इतिहास के अन्त' की घोषणा की। बीसवीं शताब्दी के इसी अंतिम दशक में विचारधारा के अन्त के बाद टेक्नोलॉजी–कम्प्यूटर, इंफॉर्मेशन टेक्नोलॉजी, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आदि ने चिंतन और सृजन के नए आयामों से मनुष्य का साक्षात्कार कराया। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की सुगमता और सम्प्रेषणीयता ने धीरे–धीरे 'प्रिन्ट' को प्रभावित करना शुरू कर दिया। चूँकि इलेक्ट्रॉनिक माध्यम श्रव्य और दृश्य दोनों है इसलिए उसका व्यापक प्रभाव जनमानस पर देखा जाने लगा। आज मनुष्य एक से अधिक इंद्रियों द्वारा सम्प्रेषण और संचार के कई रूपों का साक्षात्कार एक ही समय में कर रहा है, जिसमें इलेक्ट्रॉनिक माध्यम की सबसे बड़ी भूमिका है। इस माध्यम के कारण ध्वनि व्यवस्था एक बार फिर स्थापित हुई, जो मौखिक या वाचिक परम्परा के साथ खत्म हो गई थी। इस ध्वनि व्यवस्था ने इसे प्रिन्ट की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय एवं व्यापक बना दिया है। टेलीफोन, रेडियो, फिल्म और टेलीविजन द्वारा सम्प्रेषित ध्वनि को एक अनुपम शक्ति प्राप्त है। जिसका व्यापक प्रभाव जनमानस पर देखा जा सकता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के इन प्रभावपूर्ण माध्यमों एवं कम्प्यूटर ने ज्ञान तथ्यों को सुरक्षित एवं संग्रहित करने में अपूर्ण योगदान दिया है। साथ ही इस ज्ञान को संचारित करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कम से कम समय में अधिक से अधिक लोगों तक इस तकनीक द्वारा मनुष्य ने ज्ञान–विज्ञान, कला एवं साहित्य को सम्प्रेषित एवं प्रसारित करने में सफलता पाई है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस आधुनिक मौखिक एवं दृश्यात्मक संस्कृति के व्यापक प्रभाव से क्या साहित्य को समाज में प्राप्त स्थान सुरक्षित रह पाएगा या नहीं? क्योंकि प्रश्न महज उपन्यास, कथा–साहित्य या परम्परागत पद्य के विलुप्त होने का नहीं है बल्कि समस्त साहित्य के अप्रासंगिक होने का है। स्थिति की गंभीरता का कारण यह नहीं है कि सामान्य वर्ग से लेकर अभिजात्य वर्ग तक पुस्तकों से ऊब महसूस करने लगे हैं, बल्कि स्वयं लेखक जिनका अस्तित्व पुस्तक था, साहित्य सृजन से जुड़ा है, वो भी इसे शंका की निगाह से देखने लगे हैं। यहाँ तक कहा जाने लगा है कि आगे की शताब्दी में उपन्यास पृष्ठ पर नहीं बल्कि सिलोलॉयड पर लिखा जाएगा। 'लेसली फीडलर' का यह कहना "अपने ईर्द–गिर्द नए उपन्यासों की भीड़ का दृश्य मेरे भीतर यह तीव्र इच्छा उत्पन्न करता है कि मैं कोई फिल्म देखने निकल पड़ूँ।"[2] यह महज एक स्वतंत्र मन या इच्छा की परिणति नहीं है बल्कि समकालीन परिस्थितिजन्य विचार है जिसकी उत्पत्ति इन्हीं इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के प्रभावस्वरूप हुई है। विचारक का यह कहना कि 'मैं कोई फिल्म देखने निकल पड़ूँ' यह इस बात को दर्शाता है कि फिल्म माध्यम कितना प्रतिष्ठित माध्यम हो चुका है। क्या भविष्य की कल्पना अब संवेदना एवं साहित्य के मरघट के रूप में ही की जा सकती है? क्या साहित्य का भविष्य इतना अंधकारमय है?

यह सच्चाई है कि इन माध्यमों ने जनमानस पर व्यापक प्रभाव डाला है क्योंकि दृश्य एवं श्रव्य माध्यमों का प्रभाव पुस्तकों की अपेक्षा अधिक होता है। इसी विचार के तहत मार्शल मेक्लुहान ने मीडिया के स्वरूप एवं स्वभाव के आधार पर माध्यम को गर्म (तेज) एवं ठंडा में विभाजित किया है। गर्म माध्यम में ठंडे माध्यम की अपेक्षा कम सहभागिता होती है क्योंकि वह नितांत व्यक्तिगत माध्यम है। परन्तु कभी–कभी गोष्ठियों एवं संवाद के माध्यम से इसे ठंडे माध्यम में बदलने की कोशिश की जाती है, परन्तु वह उतना कारगर नहीं हो पाता, जितना यह माध्यम है। जाहिर है कि माध्यम की विषय–वस्तु की अपेक्षा माध्यम के स्वरूप एवं स्वभाव में मनुष्य और समाज में परिवर्तन लाने की क्षमता अधिक होती है। जैसे समाज में

---

[2] उद्धृत देवेन्द्र इस्सर, उत्तर आधुनिकता : साहित्य और संस्कृति की नई सोच, पृष्ठ 108।

हर व्यक्ति रामायण की कथा पढ़ नहीं सकता, परन्तु वह इन माध्यमों के जरिए इन कथाओं से परिचित हो सकता है। टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले धारावाहिक (चाहे वह रामकथा से जुड़ी हो या किसी ऐतिहासिक घटना से जुड़ी हो) का प्रभाव जनमानस पर व्यापक रूप से पड़ता है। अक्षर–बोध से अनभिज्ञ जनता भी इन ऐतिहासिक कथाओं से इन माध्यमों द्वारा परिचित होती है जो पुस्तक द्वारा सम्भव नहीं है। मैक्लुहान के शब्दों में कहें तो माध्यम ही संदेश है। मैक्लुहान ने अपनी पुस्तक 'मीडियम इज द मैसेज' में यह भी रेखांकित किया कि माध्यम कोई निरपेक्ष वस्तु नहीं है, बल्कि माध्यम मनुष्य की जीवन शैली, व्यवहार एवं मूल्यों को भी प्रभावित करता है।

साहित्य और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के स्वरूप एवं प्रभाव के विश्लेषण के बाद यह सवाल पैदा होता है कि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के बढ़ते प्रभाव के बरक्स क्या साहित्य का यह पुस्तकीय रूप सुरक्षित रह पाएगा या नहीं? पुस्तकों की आवश्यकता है या नहीं, अगर है तो उसकी भूमिका क्या होगी? सर्वप्रथम यह स्थापित सत्य है कि इन इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के संप्रेषण के पीछे भी साहित्य, पांडुलिपि, मुद्रण, लिपि आदि क्रियाशील है क्योंकि इनके बगैर माध्यमों की कोई महत्ता नहीं है। दूसरी बात यह है कि मानव मस्तिष्क का प्रयोजन महज गणित का खेल नहीं है। बल्कि उसका प्रयोजन है कि वह विचार और संवेदना का गहन अध्ययन करे, दार्शनिक तौर पर चिंतन करे, अन्तर्दृष्टि प्रदान करे, कल्पना की उड़ान भरे, सौन्दर्य सृजन करे, अपने इर्द–गिर्द की दुनियों में हर्ष और उल्लास अर्जित करे और यथार्थ की पुनर्रचना करे, जो मानव मस्तिष्क के बाहर सम्भव नहीं है। कोई भी आविष्कार एवं माध्यम मानव–मस्तिष्क की सौन्दर्यनुभूति को अभिव्यक्त नहीं कर सकते। साहित्य सृजन में मानव स्मृति की महत्त्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका होती है। नोस्टेलजिया साहित्य का अद्भुत आकर्षण है। यदि मनुष्य से यह छिन जाए तो साहित्य और संस्कृति का अन्त सुनिश्चित है क्योंकि साहित्य इसी अतीत मोह एवं सौन्दर्यानुभूति का प्रतिफलन है। आज तक मानव मन का जैसा सौन्दर्य बोध अर्जित किया गया है, उसका स्रोत वैज्ञानिकों की अपेक्षा लेखकों और चिंतकों का लेखन है। जिसे उन्होंने अपने श्रम और सौन्दर्यबोध से अर्जित किया

है। वास्तविकता यह है कि साहित्य और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में कोई द्वंद्व नहीं है बल्कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्य का भविष्य जहाँ मानवीय सम्बन्धों एवं मूल्यों से जुड़ा है वहीं मशीन के अवैयक्तिक संप्रेषण को मनुष्य के निजी अनुभव क्षेत्र में लाने की जरूरत है, उसे मानवीय बनाने की जरूरत है। यह कार्य सिर्फ साहित्य ही कर सकता है। प्रश्न यह है कि टेक्नोलॉजी संस्कृति का पोषण कर रही है, उसे मूल्यों, दर्शन, कला, साहित्य और संस्कृति के दायरे में कैसे लाया जाए ताकि एक व्यापक मानव संस्कृति का विकास सम्भव हो सके।

1.1 माध्यम का प्रश्न और साहित्य

भाषा मानव–मन की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। मन के अनेक स्तर भाषा की सहायता से खुलते हैं, मनुष्य की सौन्दर्यनुभूति का स्तर भी इसी के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। भाषा हमारे समस्त भावों एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर पाने में सर्वथा समर्थ नहीं होती है, परन्तु उसे सामाजिक संपर्क में लाने का काम भाषा ही करती है। हमारे चिंतन, भाव आदि भाषा का निर्माण करते हैं, और भाषा की सहायता से ही हमारे चिंतन, भाव आदि की प्रतीती दूसरों को होती है। साहित्य भी इसी भाव–चिंतन के भाषाई रूपान्तरण का प्रतिबिम्ब है। हालाँकि मानव मन के समस्त भावों की अभिव्यक्ति भाषा के ही माध्यम से नहीं होती बल्कि इसके अतिरिक्त भी कुछ माध्यम है जिनकी चर्चा ललित कलाओं के अन्तर्गत होती है। जैसे – संगीत, चित्र, मूर्ति आदि। इन सबमें भाषा अभिव्यक्ति का सबसे वरीय माध्यम है क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्त होता है। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अभिव्यक्त करने का माध्यम होने में और वहन करने में अन्तर है। वाहक पर जितना भार रहता है, उतना ही यह लक्ष्य तक पहुँचा देता है, किन्तु प्रेषण का माध्यम अपनी क्षमता के अनुरूप ही क्रिया संपन्न करता है। शब्द में उतनी क्षमता नहीं है कि वह साहित्यकार की समग्र भावना को पूर्ण रूप में दूसरों तक पहुँचा सके। इसलिए वह भावों या विचारों का वाहक नहीं बन सकता है।

शब्द अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले और ग्रहण करने वाले के बीच एक सम्बन्ध सूत्र जोड़ने का काम करता है। यह प्रेषण या अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र है।

1.1.1 शब्द और अर्थ का भाषा–वैज्ञानिक स्वरूप

मानव–समाज के विकास के साथ–साथ भाषा भी विकसित हुई। भाषा–विकास के इस चरण में जब मानवीय सौन्दर्यबोध का परिष्कार हुआ, तब साहित्य की आवश्यकता महसूस हुई। साहित्य मूलतः शब्दों और अर्थों की संगठनात्मक अभिव्यक्ति है, जो आम जनजीवन की भाषा से इतर परिष्कृत रूप में अभिव्यक्त होता है। भामह ने भी कहा –

शब्दार्थो सहितौ काव्यम।

शब्दों की महत्ता को रेखांकित करते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा है ''भाषा की मुख्य संपत्ति है उसका शब्द भण्डार। शब्द–भण्डार में जिन शब्दों का सम्बन्ध मनुष्य के प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश से है, जो उसकी नित्य–प्रति की आर्थिक एवं सांस्कृतिक कार्यवाही में काम आते हैं, उन्हें मूल शब्द भण्डार मानना चाहिए।''[3]

मानव जीवन के इन्हीं नित्य–प्रति के सामाजिक परिवेश से निर्मित शब्द भण्डार ही भाषा निर्माण में निर्णायक होते हैं। भामह द्वारा वर्णित काव्य की परिभाषा को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि शब्द और अर्थ में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। यास्क मुनि ने अपने निरूक्त में शब्द और अर्थ की तुलना अग्नि और शुष्क इंधन से की है। जिस प्रकार शुष्क इंधन बिना आग के नहीं जल सकता है, उसी प्रकार बिना अर्थ को समझे, जो शब्द दुहराया जाता है, वह अभीप्सित विषय को प्रकाशित नही कर सकता है –

यद् गृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्दयते।

अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्।।''[4]

---

[3] रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, पृ. 10

[4] उद्धृत देवेन्द्रनाथ शर्मा/दीप्ति शर्मा, भाषा विज्ञान की भूमिका, पृ. 253

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि अर्थ के अभाव में भाषा का कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि भाषा शब्दों में और अन्ततः अर्थों में ही ध्वनित होता है। शब्द मूर्त रूप है और अर्थ उसका अमूर्त रूप है। या फिर यों कहें कि शब्द यदि शरीर है तो अर्थ उसकी आत्मा।

भर्तृहरि के अनुसार जिस शब्द के उच्चारण से जब जिस अर्थ की प्रतीति होती है, वही उसका अर्थ है, अर्थ का दूसरा लक्षण नहीं है'। अर्थों की यह प्रतीती दो तरह से होती है :

(1) आत्मप्रत्यक्ष

(2) परप्रत्यक्ष

आत्मप्रत्यक्ष के माध्यम से हम वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते हैं, जिसे हम स्वयं देखते या अनुभव करते हैं। परन्तु परप्रत्यक्ष द्वारा हमें वस्तुओं के ज्ञान के लिए उन लोगों पर निर्भर होना पड़ता है, जो उनका अनुभव प्राप्त कर चुके हैं। इंद्रियों की क्रियाशीलता के आधार पर आत्मप्रत्यक्ष के भी दो रूप हैं :

(1) बहिरिन्द्रिय

(2) अन्तरिन्द्रिय

बहिरिन्द्रिय में आँख, कान, जीभ, त्वचा है, जिसकी सहायता से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का ज्ञान होता है। अतिरिंद्रिय में मन की अंदर के भावों की प्रतीती होती है, जो अमूर्त होते हैं। इससे हम अपने मनोभावों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जैसे –ईश्वर, स्वर्ग, प्रेम, दया, करुणा, ईर्ष्या, राग, द्वेष, अहिंसा आदि है, जिसका शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है। अन्तरिन्द्रिय द्वारा गृहीत ज्ञान के अनिश्चित एवं अस्पष्ट होने का कारण उसका अमूर्त होना है। जिसका प्रत्यक्षीकरण सम्भव नहीं है और इन्हें शब्द की सीमा में बाँधना भी सम्भव नहीं है।

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध संकेत–ग्रहण पर भी निर्भर है। क्योंकि अर्थ–बोध के कई साधन हैं जो अर्थ की प्रतीति में सहायक होते हैं। जैसे – घोड़ा

कहने पर पशु–विशेष का बोध होना या पानी कहने पर तरल पदार्थ का बोध होना आदि इसके उदाहरण हैं। इस प्रतीति का कारण है कि बचपन से व्यवहार में जिन शब्दों को प्रयोग हम करते हैं, धीरे–धीरे उसका अर्थबोध होने लगता है। कुछ अर्थबोध आप्तवाक्यों से भी होता है, जो स्थापित सत्य है। बोलते समय स्वर, मुद्रा, चेष्टा आदि के सहयोग से भी अर्थ बोध होता है। अर्थ बोध की इन प्रक्रियाओं का वस्तु या शब्द के संकेत ग्रहण में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। दूसरी बात यह है कि पारिभाषिक शब्दावली में ध्वनि के संयोजन से वस्तु का सम्बन्ध स्थपित करना संकेत ग्रहण कहलाता है। जिसका प्रमुख आधार अनुभव है। संकेत ग्रहण में बिंब की सबसे बड़ी भूमिका होती है। मनष्य के जन्म के साथ–साथ जैसे–जैसे उसकी चेतना का विकास होता है, उसका परिचय अपने परिवेश की वस्तुओं से होता है, इन्हीं वस्तुओं का बिंब उसके मन–मस्तिष्क पर अंकित हो जाता है। फलतः जब भी हम कोई शब्द सुनते हैं या कोई वस्तु देखते हैं तब उसकी प्रतीति हमें होती है जिसकी चर्चा हमने अर्थ बोध के साधनों के रूप में की है। शब्द बोधक है और अर्थ बोध्य। शब्द से ही अर्थ का बोध होता है क्योंकि शब्द का अंतिम उद्देश्य अर्थ बोध ही होता है लेकिन कभी–कभी शब्द में जितना अर्थ निहित होता है, अर्थबोध के लिए उतना ही पर्याप्त नहीं होता। बहुत बार उससे अधिक की प्रतीति अभीष्ट होती है। जैसे एक उदाहरण है 'घंटी हो गई।' इसके कई अर्थ हो सकते हैं। स्टेशन पर गाड़ी आने के पूर्व की घंटी, कक्षा के आरम्भ एवं अवसान की घंटी आदि कई अर्थ अभीष्ट हैं। कहने का गरज यह कि शब्द के मूल अर्थ के इतर भी कई अर्थ होते हैं। अर्थ के भी तीन स्तर होते हैं। जिसे वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य कहते हैं। इसके लिए तीन शब्द–शक्तियाँ हैं।

अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।

शब्द मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं :

(1) एकार्थक

(2) अनेकार्थक

कुछ शब्दों का एक ही अर्थ होता है जैसे पेड़, नदी आदि। किन्तु कुछ शब्दों के कई अर्थ होते हैं। सूर का अर्थ सूर्य भी है, अंधा भी है। इतना ही नहीं 'हरि' शब्द के एक दर्जन अर्थ हैं। उदाहरणस्वरूप रामचरितमानस की पंक्ति द्रष्टव्य है –

"हरि सन मागौं सुंदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई।।"[5]

इस पंक्ति के आधार पर नारद ने विष्णु से उनका रूप माँगा था, परन्तु उन्होंने उसे बंदर का स्वरूप दे दिया। क्योंकि हरि मतलब बंदर भी होता है। एक शब्द के यदि अनेक अर्थ हो, तब ऐसी परिस्थिति में शब्द का अर्थ ग्रहण सम्पूर्ण प्रसंगों के आधार पर किया जाना चाहिए। इन अनेकार्थक शब्दों के अर्थनिर्णय के कई कारण हैं। जिनमें संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध अर्थ–प्रकरण, लिंग, अन्य शब्दों का सान्निध्य, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति, स्वर आदि है। इन तमाम उपादानों के कारण ही अर्थ–निर्णय सम्भव हो पाता है। "जिसका उल्लेख भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में किया है।

संयोग विप्रयोगश्च साहचर्य विरोधिता।
अर्थ प्रकरणं लिंगं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः।।
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेष स्मृति हेतवः।।"[6]

उसी तरह एकार्थक शब्दों के अर्थ निर्णय के भी कई साधन हैं। जिसका उद्धरण साहित्यदर्पण में मिलता है। साहित्यदर्पण के अनुसार इनके दस साधन हैं।

(1) वक्ता (2) श्रोता (3) वाक्य (4) वाच्य (5) अन्य सन्निधि

(6) प्रकरण (7) देश (8) काल (9) काकु (10) चेष्टा

---

[5] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 118
[6] उद्धृत देवेन्द्रनाथ शर्मा/ दीप्ति शर्मा, भाषा विज्ञान की भूमिका, पृ. 267

इस प्रकार शब्द का अर्थग्रहण अन्ततः श्रोता या भावक पर निर्भर करता है। उदाहरणस्वरूप बिहारी का यह दोहा द्रष्टव्य है –

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही तें बँध्यो, आगे कौन हवाल।।

बिहारी का यह दोहा महराज जयसिंह को लक्ष्य था, जिसका अर्थ उन्होंने अपनी परिस्थिति से जोड़ा और दोहे की सार्थकता सिद्ध हुई। इस प्रकार शब्दों का महत्त्व अन्ततः लक्षित अर्थ में ही विद्यमान होता है।

'नीत्शे' ने कहा कि "शब्द उनके लिए होते हैं, जो वजन सह सकते हैं। हल्के लोगों के लिए शब्द व्यर्थ है।"[7] जाहिर है शब्द भाषा या भावों की अभिव्यक्ति का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। जिसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है। जिस भाव या विचार से शब्द श्रोता या भावक को प्रेषित किया गया है, वह उसी रूप में प्रभाव छोड़ने में सक्षम हों। साहित्य शब्दों का खेल है, परन्तु वह अर्थपूर्ण शब्दों का खेल है। जिसके आभाव में साहित्य की कल्पना निरर्थक है। साहित्यकार शब्दों को चुनकर रचना को जन्म देता है। भाषा–वैज्ञानिक यदि वाक्य की संरचना का ज्ञान कराता है, तो साहित्यकार उस वाक्य के अर्थ को सुरक्षित रखते हुए रचना में लालित्य पैदा करता है। साहित्यकार का उद्देश्य भाषायी अनुशासन पैदा करना नहीं बल्कि शब्दों के सुगठित एवं लालित्यपूर्ण उपयोग से पाठकों को तोष प्रदान करना है।

किन्तु सवाल यह है कि कोई भी साहित्यकार अपनी रचना में किस प्रकार के शब्दों का उपयोग करता है? उसके शब्दों के स्रोत क्या है? यह शब्दों का उपयोग इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस वर्ग या समाज को सम्बोधित कर रहा है। उस रचनाकार की अपनी जीवन–दृष्टि क्या है, और यह जीवन दृष्टि उसे कहाँ से प्राप्त हुई है। 'मैनेजर पाण्डेय' ने लिखा है – "शब्द अगर एक ओर जनता के कर्म से जुड़ता है, तो दूसरी ओर लेखक के रचना कर्म से। मनुष्य की चेतना उसके सामाजिक अस्तित्त्व के अनुरूप बनती है। व्यक्ति की दृष्टि उसकी

[7] उद्धृत पाखी, संपादकीय, जनवरी 2016, पृ. 6

जीवन–दशा से प्रभावित होती है। रचनाकार के शब्द, उसकी रचना के शब्द, उसके जीवन कर्म को प्रतिबिंबित करते हैं। रचनाकार का रचनाकर्म सम्पूर्ण सामाजिक जीवन से उसके सम्बन्ध का द्योतक होता है।''[8]

स्पष्ट है कि प्रत्येक साहित्यकार या रचनाकार की अपनी एक शब्दावली होती है, शब्द–संस्कार होता है, जिसका उपयोग वह रचनाओं में करता है। यह शब्द–भण्डार उसके अपने जीवन के निजी अनुभवों एवं समाजदर्शन का प्रतिफलन होता है। यह तथ्य है कि साहित्य शब्दों का खेल है। हर वर्ग, समाज, जाति का अपना शब्द होता है। उदाहरण स्वरूप आदिकाल में विद्यापति ने जिस शब्दों का उपयोग किया है, यह आवश्यक नहीं है कि चंदवरदाई ने भी उन्हीं शब्दों का उपयोग किया हो। विद्यापति एवं चंदवरदाई ने समाज विशेष या वर्ग–विशेष पर आधृत शब्दों का उपयोग किया है। उनके समाज अलग है, परिस्थितियाँ अलग है। मध्यकाल के कवि विशेष वर्ग से जुड़े थे। उनके प्रतिमान और शब्द दोनों उनके लोक–जीवन से जुड़े थे। अपने कर्मक्षेत्र से ही शब्दों का चयन इन कवियों ने किया है। एक ही काल में तुलसी के शब्द अलग हैं, वही मीरा के शब्द अलग हैं क्योंकि दोनों के जीवन एवं परिस्थितियों में काफी अन्तर हैं। सूरदास के वे अपने अलग शब्द है जो कृषि एवं पशुपालन की संस्कृति से जुड़ी है। आधुनिक काल में ग्रामीण संस्कृति का चित्रण करते हुए भी प्रेमचंद के शब्द अलग हैं, रेणु के अलग। इतना ही नहीं दोनों के शब्दों के टोन भी अलग–अलग हैं। जाहिर है, हर रचनाकार का अपना एक शब्द–संस्कार होता है जो उसके जीवन–पद्धति एवं दैनंदिन व्यवहार से आता है। ये शब्द पाठ संदर्भित होते हैं, जिससे अर्थबोध में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती।

साहित्य रचना में शब्द शक्तियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। साहित्य में प्रयुक्त भाषा का प्रभाव उनकी शब्द–शक्तियों पर ही निर्भर करता है ये शक्तियाँ ही साहित्य को प्रभावोत्पादक बनाती है। साहित्य में शब्दों का लाक्षणिक प्रयोग होता है। मनुष्य की समस्त अनुभूतियों को शब्दों में बाँध देना मुश्किल है, इसलिए उसमें शक्ति भरने के लिए नवीन भंगिमाएँ अपनानी पड़ती है। जो नवीन

[8] मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, पृ. 262

शब्द–प्रयोगों से ही सम्भव हो पाती है। लाक्षणिक प्रयोगों के कई उदाहरण साहित्यिक भाषाओं में दिखाई देते हैं। जैसे मनुष्य के अंगों के सादृश्य के आधार पर अनेक निर्जीव वस्तुओं के लिए भी अंगवाची शब्द का प्रयोग होता है। घड़े का मुँह, सुराही की गर्दन, पेड़ का धड़ आदि। इसी प्रकार मधुर संगीत, मीठी बात, कटु अनुभव आदि सभी प्रयोग लाक्षणिकता से पूर्ण है। संगीत की प्रशंसा करते हुए हम अनायास ही उसे 'मधुर' विशेषण प्रदान कर देते हैं। परन्तु संगीत में मधुरता कैसे हो सकती है, वह कोई खाद्य सामग्री तो है नहीं। इसी तरह बात में मिठास या कटुता का आरोपण भी अभिव्यंजना की प्रभावोत्पादकता बढ़ाने के लिए की जाती है। कहानी से कोई तरल द्रव्य नहीं टपकता, फिर भी हम उसे सरस कह देते हैं, और इतना ही नहीं वांछित भाव के न होने पर हम उसे नीरस भी कह देते हैं। सरसता और नीरसता का यह भाव लाक्षणिक प्रयोग द्वारा प्रभावोत्पादकता पैदा करने का प्रयास है। साहित्य में व्यंग्य शब्दों का भी प्रयोग बहुतायत मिलता है। 'भ्रमरगीतसार' में वर्णित उद्धव–गोपी संवाद इसका सुंदर उदाहरण है। गोपियाँ उधों से कहती हैं –

उधो तुम अति चतुर सुजान!

यहाँ गोपियाँ उद्धव के बुद्धिमत्ता की प्रशंसा नहीं कर रही है बल्कि व्यंग्य कर रही है। रीतिकालीन कवि घनानन्द की यह पंक्ति द्रष्टव्य है –

खानौ न नेक बिथा पर की, बलिहारी तऊ पै सुजान कहावत।

घनानन्द कहते हैं नाम तो तुम्हारा सुजान है पर दूसरी की व्यथा नहीं समझते। सुजान नाम की सार्थकता तब होती, जब व्यथा समझते। यह घनानंद का सुजान को लक्ष्य कर व्यंग्य किया गया है।

शब्दों में भावात्मक बल का भी उपयोग साहित्य में होता है। जैसे यह कहना कि 'उनकी बात सुनकर कलेजा मुँह को आ गया' इस वाक्य में भावात्मकता का ही अतिरेक है। 'राम–राम उसने कैसे यह काम किया' में राम–राम धिक्कारवाचक शब्द है। इसी तरह भयंकर, चतुर, प्रचंड–मूर्ख आदि शब्द भावातिरेक के ही परिणाम हैं।

1.1.2 साहित्य और ललित कला

ललित कलाओं के माध्यम से भी साहित्य अभिव्यक्त होता है, वह उसी का परिवर्तित या रूपांतरित रूप है। चाहे साहित्य की अभिव्यक्ति कलाओं के माध्यम से हो या फिर कलाओं की अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम से हो। इनमें परस्पर अन्तःसम्बन्ध होता है।

कुमार विमल ने अपनी पुस्तक 'सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व' में इस अन्तःसम्बन्ध पर चर्चा की है। उनका आशय है कि माध्यम की दृष्टि से कलाओं में चाहे कितनी भिन्नता क्यों न हो किन्तु तत्त्व समास की दृष्टि से सभी कलाएँ समान हैं, और इनमें एक तात्त्विक अन्तःसम्बन्ध अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है।

चित्र–मूर्ति कला का सम्बन्ध नृत्य के साथ है और नृत्य का संगीत तथा अन्य नाट्य कलाओं के साथ। ललित कला के दो वर्ग हैं।

(1) चाक्षुष कलाएँ (2) श्रव्य कलाएँ

स्थापत्य, मूर्ति और चित्र दृश्य कलाएँ हैं, संगीत और काव्य श्रव्य कलाएँ। दृश्य कलाओं में जहाँ वर्ण बोध की प्रधानता रहती है, वहीं श्रव्य कलाओं में स्वर बोध की। हीगेल ने ललित कला के तीन स्तरों की चर्चा की, जिसे पाश्चात्य सौन्दर्य–दर्शन में हीगेलीय त्रय कहा जाता है।

थीसिस	**एंटीथीसिस**	**सिंथीसिस**
लॉजिक	नेचर	माइंड
सब्जेक्टिव	ऑब्जेक्टिव	एब्सोल्यूट
सिम्बॉलिक	क्लासिकल	रोमांटिक
वास्तुकला	मूर्तिकला	चित्र, संगीत और काव्य

इस प्रकार हीगेल का मूल सौन्दर्य–दर्शन तीन अवस्थाओं में प्रकट होता है पक्ष, प्रतिपक्ष और समन्वय। इन तीनों अवस्थाओं को तीन दार्शनिक रूप में व्याख्यायित किया जाता है। वो है तर्क, प्रकृति और मन। यही सौन्दर्यबोध मन तक पहुँचकर तीन रूपों में प्रकट होता है, व्यक्तिगत, वस्तुगत और समग्रगत। हीगेल का मानना है कि यह सौन्दर्य (प्रत्यक्ष) जब पूर्णता या समग्रता की स्थिति में

पहुँच जाता है, तब उच्चस्तरीय कला की सृष्टि होती है। प्रत्यय की इन तीन अवस्थाओं के कारण उससे निर्मित कला भी तीन प्रकार की होती है। जिनमें एक परमतत्त्व जो उसमें अन्तर्निहित है, जो क्रमशः अपने को अभिव्यक्ति देता है। यही परमतत्त्व कलात्मक रूपों में पहले प्रतीकात्मक कला में, फिर शास्त्रीय कला में और अन्ततः इन दोनों के समन्वय से रोमांटिक कला में अभिव्यक्त होता है। हीगेल ने उदाहरण के लिए स्थापत्य कला को प्रतीकात्मक कला, मूर्तिकला को क्लासिकल कला में और चित्र, संगीत तथा कविता को रोमांटिक कला रूपों में स्वीकार किया है।

1.1.3 कविता और चित्र

पाश्चात्य देशों में ऐसी धारणा है कि चित्र एक प्रकार की मूक कविता है और कविता एक सवाक चित्र है। फलतः दोनों एक दूसरे से अन्तर्निहित है। हेगेल के अनुसार वर्णित कोटियों में चित्रकला एक रोमांटिक कला है। जिसका माध्यम रंग है, जो पत्थर की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और कम ऐन्द्रिय है। जिसमें सत्य की अपेक्षाकृत अधिक अभिव्यक्ति होती है। भारतीय काव्यशास्त्र में भी काव्य का चरम लक्ष्य, रस का, चाक्षुस कलाओं के मुख्य उपादान 'रंग' से सम्बन्ध जोड़ा गया है। रंग को भी काव्य गुण की तरह रसोपकारक माना गया है। भरत के नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में रसों के लिए रंग का विधान निरूपित किया गया है। श्रृंगार के लिए श्याम, हास्य के लिए श्वेत, रौद्र अथवा वीर के लिए रक्त, करुण के लिए भूरा, भयानक के लिए काला, वीभत्स के लिए नीला, अद्‌भुत के लिए पीत रंग की योजना की गई है। लियोनार्द–द–विंशी ने अपनी पुस्तक 'पेरैगना' में चित्रकला और काव्यकला का सुंदर तुलनात्मक अध्ययन किया है। क्षेमेन्द्र ने भी कवियों के लिए चित्रकला का ज्ञान आवश्यक माना है। कहा जाता है कि चित्र वैसी कविता है, जिसे हम सुनते नहीं, देखते हैं, और कविता वह चित्र है जिसे हम देखते नहीं सुनते हैं। काशी के कला–भवन में बिहारी और केशव की कुछ पंक्तियों की विषयवस्तु को बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रों में उपस्थित किया गया है। सम्पूर्ण

बिहारी सतसई को एक जर्मन चित्रकार ने चित्रों में प्रस्तुत करने की कोशिश की है। कालिदास के नाटकों से लेकर रामायण तक को आधार बनाकर चित्रों की रचना की गई। भारत में कृष्णकाव्य के उत्कृष्ट भावों को चित्रों में बदलने की एक लम्बी परम्परा रही है। 'गीत–गोविंद' एवं भागवत पुराण के कई रोचक स्थलों को चित्रों में उतारा गया है। आधुनिक भारतीय चित्रकला के दो प्रमुख चित्रकार 'जामिनी राय' और 'जार्ज कीट' ने भारतीय काव्य में वर्णित कृष्ण सम्बन्धी भावभूमि के आधार पर कई कालजयी चित्रों की रचना की हैं दिनकर कृत 'उर्वशी' के कुछ चित्र है, जिन्हें 'उर्वशी' की पंक्तियों के आधार पर प्रसिद्ध चित्रकार ज्योति भट्टाचार्या ने बनाया है। वे 'उर्वशी' में ही संकलित हैं। इसी प्रकार छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा की 'दीपशिखा' और 'सांध्य–गीत' में कविताओं के साथ संकलित तद्भाव व्यंजक चित्र ध्यातव्य हैं।

1.1.4 कविता और संगीत

कविता और संगीत दोनों श्रव्य कलाएँ हैं, इसलिए माध्यम की दृष्टि से दोनों में गहरा सम्बन्ध है। रामचन्द्र शुक्ल का भी मानना है कि काव्य बहुत ही व्यापक कला है जिस प्रकार मूर्त विधान के लिए कविता चित्रविधा की प्रणाली का अनुसरण करती है। उसी प्रकार नाद–सौष्ठव के लिए वह संगीत का कुछ–कुछ सहारा लेती है। नाद–सौन्दर्य का योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप खड़ा करने के लिए आवश्यक है। 'पल्लव' की भूमिका में सुमित्रानंदन पंत और 'परिमल' की भूमिका में निराला ने भी इस अन्तःसम्बन्ध की ओर महत्त्वपूर्ण संकेत किया है। कवि गुरू रवींद्रनाथ ने भी संगीत को कविता से उच्चतर कला माना है। उनकी कविताओं में संगीत इस प्रकार अनुस्यूत है मानों संगीत ही कविता का वाहक हो। उन्होंने काव्य और संगीत दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध माना है। मध्यकाल के महान कवि सूरदास के भ्रमरगीत विषयक पदों को संकलित करते हुए आचार्य शुक्ल ने प्रत्येक पद में व्याप्त राग–रागिनियों का उल्लेख किया है। काव्य में लय को प्रमुखता प्राप्त है, जो संगीत का प्राण–तत्त्व है। गोस्वामी तुलसीदास ने विनय

पत्रिका के पदों को भी राग–रागिनियों के साथ प्रस्तुत किया है। हिंदी साहित्य के इतिहास का मध्यकाल इस बात का प्रमाण है कि अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त अमीर खुसरो, हरिदास, बैजू–बावरा और तानसेन जैसे अनेक कवि/संगीतकार हुए, जिन्होंने काव्य और संगीत दोनों का अनूठा मेल प्रस्तुत किया। भारत में प्रबन्ध काव्य को गाकर पढ़ने की परिपाटी पुरानी है, जिसका सबसे बड़ा उदाहरण 'रामचरितमानस' है, जिसे आज भी गाँवों में उतनी ही तन्मयता से पढ़ा या गाया जाता है। आधुनिक काल के कवियों में छायावादी कवियों से इतर नरेन्द्र शर्मा, हरिवंश राय बच्चन, रामधारी सिंह दिनकर, गोपाल सिंह नेपाली, गोपालदास नीरज आदि की कविताओं ने गीतकारों के मध्य जबरदस्त ख्याति अर्जित की।

1.1.5 कविता और मूर्तिकला

कविता और मूर्तिकला में बड़ा ही गहरा सम्बन्ध है। हीगेल ने मूर्तिकला को क्लासिकल कला की श्रेणी में रखा है। हीगेल का मानना है कि प्रतीकात्मक कला में जो प्रस्तर (पत्थर) स्थूल रूप में होता है, वह मूर्तिकला में सूक्ष्मता को प्राप्त करता है। हालाँकि दोनों में पत्थर का ही उपयोग होता है परन्तु मूर्तिकला में वह परमतत्व जो अभिव्यक्त होने वाला है, उसका स्वरूप स्थापत्य की अपेक्षा मूर्तिकला में अधिक स्पष्ट होती है। उसका मानना है कि मूर्तिकला में आकर वह अभिव्यक्त होने वाला परमतत्त्व अपनी शरीर प्राप्त कर लेता है। ग्रीक मूर्तिकला क्लासिकल कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है जिसमें वह अपने उत्कर्ष पर है। अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों पर इसी ग्रीक मूर्तिकला का प्रभाव था। इन स्वच्छन्दतावादी कवियों की यह विशेषता रही है कि उनकी कविताओं के सृजन में ललित कलाओं की परस्परोपकारिता बनी रही है। कविता में दृश्यात्मकता लाने के लिए चित्रात्मकता के साथ–साथ मूर्तनता का होना अत्यंत आवश्यक है, इसी सन्दर्भ में उनकी कविता मूर्तिकला से प्रभाव ग्रहण करती है। हीगेल ने भी ग्रीक मूर्तिकला के अपूर्वता की काफी प्रशंसा की है। कहा जाता है कि जीयस, हेरा,

अपोलो आदि देवताओं की मूर्तियाँ अपनी रचनात्मकता के कारण आध्यात्मिकता से लबालब भरी जान पड़ती है।

भारत में शुंगकालीन मूर्तिकलाओं में कालीदास की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है, हालाँकि कालीदास गुप्तकाल में हुए परन्तु शुंगकाल में जिस संख्या में मृण्मूर्तियों का निर्माण हुआ, वैसा गुप्तकाल में नहीं हुआ। कालीदास की शकुंतला की कल्पना से जिन सूक्ष्मकटि और पृथु नितम्ब वाली नारी मूर्ति का निर्माण शुंगकाल में हुआ, वैसा फिर नहीं हुआ।

1.1.6 स्थापत्य और कविता

स्थापत्य और कविता या साहित्य, एक दूसरे से अप्रत्यक्ष रूप में जुड़े हैं। स्थापत्य और कविता के सम्बन्धों की यदि बात करें तो कविता का भी अपना स्थापत्य होता है। कविता भी स्थापत्य के आधार पर लिखी जाती है। ग्राहम हौग ने 'मॉरिस' की कविताओं पर स्थापत्य के प्रभाव का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया है।

हीगेल ने स्थापत्य कला को कला विकास का प्रथम चरण अर्थात् प्रतीकात्मक कला माना है। इस कला द्वारा व्यक्त सौन्दर्य या प्रत्यय हमारी चेतना का स्पर्श नाममात्र के लिए करता है क्योंकि स्थापत्य में अन्य ललित कलाओं की अपेक्षा स्थूलता अधिक होती हैं उसने मिस्त्र के 'पिरामिड' का उदाहरण देते हुए कहा कि प्रतीकात्मक कला में अभिव्यक्त होने वाली उसकी आत्मा से अधिक उस वस्तु को महत्ता मिल जाती है, जिससे कला के पूर्ण सम्प्रेषण में अस्पष्टता एवं विद्रूपता आ जाती है।

अंग्रेजी आलोचना में कविता का विश्लेषण स्थापत्य कला के रूपकों के आधार पर होता रहा है। भारतीय संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में भरत के नाट्यशास्त्र, शिल्परत्न, संगीत रत्नाकार में रंगमंच और प्रेक्षागृह का चित्रण नाटक और स्थापत्य की निकटता का द्योतक है। भारतीय स्थापत्य का सबसे सुंदर उदाहरण 'ताजमहल' को आधार बनाकर अनगिनत कविताएँ एवं कहानियाँ लिखी

गई हैं इसी प्रकार स्थापत्य ने भी साहित्य को भावाधार प्रदान किया है। साहित्य और ललित कलाओं के अन्तःसम्बन्ध पूरकता एवं अभिव्यक्ति विनिमय के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कल्पना, बिंब, प्रतीक, प्रेषणीयता, विषय, विचार आदि गौण तत्त्वों के आपसी संयोग से निर्मित ललित कलाओं में अभिव्यक्ति की मात्रा में भेद हो सकता है। एक ओर जहाँ काव्य में कल्पना की प्रधानता होती है, वहीं संगीत में प्रेषणीयता की। चित्र में चाक्षुष सौन्दर्य प्रधान रहता है तो मूर्ति और स्थापत्य में क्रमशः विषय रूप एवं स्थूल साधनों की अधिकता। इन तत्त्वों की अनिवार्य उपस्थिति एवं इनके अन्तःसम्बन्ध ही साहित्य एवं ललित कलाओं को एक दूसरे में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

1.2 साहित्यिक माध्यम : अभिव्यक्ति की सीमाएँ

यह सर्वविदित है कि हर माध्यम की अपनी सीमा होती है और इन्हीं सीमाओं के कारण अभिव्यक्ति के नए माध्यमों की आवश्यकता महसूस होती है। एक माध्यम जब अभिव्यक्त कर सकने में असमर्थ होता है, उस परिस्थिति में किसी भाव या विषयवस्तु का रूपान्तरण किसी अन्य माध्यमों में हो जाता है। साहित्य की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है 'शब्द'। किन्तु शब्द मनुष्य की समस्त भावनाओं की अभिव्यक्ति कर सकने में सक्षम नहीं है। शाब्दिक ज्ञान को व्यक्ति निजी स्तर पर ग्रहण करता है, वह पाठक पर प्रभाव छोड़ने के लिए स्वतंत्र होता है। हर पाठक उसे अपने भाव के अनुसार ग्रहण करता है। शब्दों का माध्यम जब अन्य सौन्दर्य–बोध को अभिव्यक्त कर पाने में अक्षम सिद्ध हुआ, तब उस स्थिति में ललित कलाओं की खोज हुई।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या ये माध्यम साहित्य को समग्रता में अभिव्यक्त कर पाने में सक्षम है? जाहिर है इनकी भी अपनी सीमाएँ हैं। साहित्य के ये रूप अलग–अलग प्रतीकों एवं भावों का वहन करते हैं। जैसे मूर्तिकला, चित्रकला चाक्षुष कलाएँ हैं जबकि संगीत कला श्रव्यकला है। ये सभी माध्यम कुछ वर्ग तक ही सीमित है क्योंकि ज्ञान के अभिव्यक्ति का यह माध्यम सर्वसुलभ नहीं

है। शाब्दिक ज्ञान के लिए जहाँ अक्षर बोध का होना आवश्यक है वहीं स्थापत्य, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला आदि के लिए सौन्दर्य बोध एवं स्वर–बोध का। इन्हीं के आलोक में इन कलाओं का दिग्दर्शन किया जा सकता है। एक अशिक्षित कामगार व्यक्ति के लिए न तो ग्रीक मूर्ति का कोई महत्त्व है और न ही यक्षिणी की मूर्ति का। कहने का मतलब यह है ज्ञान के बोध के लिए भी ज्ञान का होना आवश्यक है।

चूँकि मनुष्य सामुदायिक जीवन से व्यक्तिगत जीवन की ओर उन्मुख हुआ है और साहित्य का उद्‌भव भी इसी सामुदायिक जीवन से हुआ है, जहाँ वह वाचिक परम्परा में सुरक्षित थी। ज्ञान–विज्ञान के संरक्षण की प्रक्रिया में धीरे–धीरे ज्ञान की सामुदायिक अभिव्यक्ति का संकुचन होने लगा और वह ज्ञान कुछ वर्ग–विशेष तक सिमट गया, जहाँ तक अभिव्यक्ति के माध्यमों की सुलभता थी। कारण यह कि साहित्य एवं कला रूपों को समझने के लिए जिस सौन्दर्य बोध की आवश्यकता थी, वह सबमें नहीं था। परन्तु साहित्य और कलारूपों का यह बंधन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के युग में टूटने लगा। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने उसे सर्वजन सुलभ बनाया और एक बार फिर से उस सामुदायिक जीवन की ज्ञान प्रक्रिया को नए रूपों में संदर्भित किया।

1.3 इलेक्ट्रॉनिक माध्यम : स्वरूप और साधन

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विशेषज्ञ मार्शल मैक्लुहान ने मानव इतिहास के विकास में चार युगों को महत्त्वपूर्ण बताया है।

1. ''साक्षरतापूर्ण पूर्ण तौर पर मौखिक जनजातीय समाज।
2. वर्णमाला/लिपि/लेखन की संगठित व्यवस्था जो लगभग दो हजार वर्ष तक रही।
3. मुद्रण का युग वर्ष 1500 से 1900 तक।

4. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का युग वर्ष 1900 से आज तक।''[9]

मैक्लुहान द्वारा प्रदर्शित इस समयावधि को देखते हुए हम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तक के सफर को समझ सकते हैं संचार के साधनों के क्रमिक विकास ने हमें 'सूचना क्रान्ति' के इस दौर तक पहुँचाया है। जनसंचार के दोनों माध्यमों (प्रिन्ट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया) में इलेक्ट्रॉनिक माध्यम ज्यादा सशक्त एवं सर्वसुलभ माध्यम है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की सक्रियता ने सूचना, ज्ञान एवं मनोरंजन को हर वर्ग, हर धर्म, यहाँ तक कि समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाया। प्रिन्ट मीडिया की अपनी सीमाएँ हैं जिसके कारण वह सुलभता और तीव्रता में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से अपेक्षाकृत कमजोर माध्यम है, परन्तु दोनों का महत्त्व अपने जगह बरकरार है। कारण, जिस भाव या विचार की अभिव्यक्ति प्रिन्ट मीडिया के माध्यम से हो सकती है वह इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में सम्भव नहीं है और संदेश की तीव्रता और मनोरंजन की संप्रेषणीता जो इलेक्ट्रॉनिक माध्यम द्वारा सम्भव है, वह प्रिन्ट मीडिया द्वारा अभिव्यक्त नहीं हो सकता है। प्रिन्ट मीडिया बीती हुई घटनाओं को प्रस्तुत करती है लेकिन इलेक्ट्रॉनिक माध्यम होती हुई घटनाओं को प्रस्तुत करता है। इन दृश्य–श्रव्य माध्यमों एवं कम्प्यूटर ने मनुष्य की अभिव्यक्ति को व्यापक विस्तार दिया है। संप्रेषण और संचार की नई प्रणालियों एवं नए उपकरणों के प्रयोग में दुनियाँ को एक 'ग्लोबल विलेज' बना दिया है। एफ. एम., रेडियो, केबल टेलीविजन, वीडियो कैसेट रिकॉर्डिंग, वीडियो डिस्क, उपग्रह, माइक्रो फिल्म, कैपस्यूल, वीडियो टेक्स्ट आदि के कारण मनुष्य का अनुभव और उसकी अभिव्यक्ति नित नए रूप में परिवर्तित हो रही है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के कई साधन है जैसे – रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर एवं उससे जुड़े उपकरण। इन तमाम साधनों में टेलीविजन एवं रेडियो एक महत्त्वपूर्ण एवं सर्वजनसुलभ माध्यम है। हालाँकि कम्प्यूटर एवं इंटरनेट की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता है, किन्तु उसका उपयोग कुछ खास वर्गों तक ही सीमित है। टेलीविजन की उपलब्धता एवं उसका दृश्य एवं श्रव्य होना तथा सूचना, ज्ञान और मनोरंजन की विविधतापूर्ण प्रस्तुति ने रेडियों की महत्ता को बहुत हद तक प्रभावित किया है।

[9]उद्धृत देवेन्द्र इस्सर, उत्तर आधुनिकता : साहित्य और संस्कृति की नई सोच, पृ. 119

1.3.1 रेडियो

बीसवीं शताब्दी के जनसंचार माध्यमों में रेडियो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रेडियो सदियों से चली आ रही मौखिक परम्परा का आधुनिक स्वरूप है। जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी समाज में विद्यमान रही हैं भारत में 1920 के दशक में रेडियो का प्रसारण आरंभ हुआ। सूचना और मनोरंजन के क्षेत्र में यह क्रांतिकारी कदम था। रेडियो की शुरुआत अंग्रेजों ने देश के दूर–दराज के इलोकों तक अपनी सूचना पहुँचाने और मनोरंजन के उद्देश्य से की थीं 1921 में मुंबई से संगीत कार्यक्रम की शुरुआत हुई। 1 अप्रैल 1930 को भारत सरकार या तत्कालीन अंग्रेजी सरकार ने 'इंडिया स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' की स्थापना कर रेडियो प्रसारण को एक केंद्रीय संस्था का रूप दिया। यही संस्था आगे चलकर 8 जून 1936 ई को 'ऑल इंडिया रेडियो' के नाम से जाना जाने लगा। आजादी के उपरांत 1957 ई. में इस 'इस ऑल इंडिया रेडियो' का नाम बदलकर 'आकाशवाणी' कर दिया गया। 1954 से 1961 ई. तक संगीत, वार्ता, नाटक, फीचर, समसामयिक साहित्य एवं अन्य कार्यक्रमों का प्रसारण हुआ। रेडियो प्रसारण के प्रारम्भिक दौर में फिल्मी गीतों का प्रसारण कम होता था, इसलिए मनोरंजन के इच्छुक व्यक्तियों के लिए आकाशवाणी ने 30 अक्टूबर 1957 ई. से विविध–भारती की शुरुआत की। इस प्रकार धीरे–धीरे सम्प्रेषणीयता के इस जीवंत माध्यम ने संचार के क्षेत्र में क्रान्ति का प्रवर्तन किया। वैसी जनता जो लिपि बोध से हीन थी, वही भी अपने ज्ञान का वर्द्धन इस इलेक्ट्रॉनिक माध्यम द्वारा कर सकती थी। जो समाचार घटित होने के कई दिनों बाद लिखित रूप में आम लोगों तक पहुँचता था, वह प्रत्यक्ष रूप में कम समयावधि में पहुँचने लगा। कला, साहित्य, संस्कृति से जुड़ी तमाम जानकारियाँ रेडियो के माध्यम से सुलभ हो गई। शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत तथा फिल्मी गानों की पहुँच अब समाज में प्रत्यक्ष रूप में थी। वैसे दौर में जब देश में साक्षरता का दर नगण्य था। उस परिस्थिति में इस माध्यम ने सरकारी कार्यों एवं सूचनाओं को आम–लोगों तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण काम किया। चाहे लालकिले से नेहरू

जी का प्रथम भाषण हो या फिर गाँधीजी की हत्या की खबर, देश ने रेडियो के माध्यम से जानकारी प्राप्त की।

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में सूचना प्रसारण की इस तकनीक ने मानवीय समाज के क्रमिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। किन्तु अंतिम दशक तक आते–आते टेलीविजन के आगमन ने रेडियो की प्रासंगिकता को कम कर दिया। क्योंकि टेलीविजन रेडियो की अपेक्षा दृश्य एवं श्रव्य दोनों माध्यम है, वह केवल अपनी भाषा एवं वाक् शैली से केवल शब्द बिम्ब तैयार कर सकता है। रेडियो प्रसारण में चूँकि ध्वनि महत्त्वपूर्ण है इसलिए इस माध्यम में आवाज की प्रमुखता है। ध्वनि ही शब्द को शक्ति प्रदान करता है और उसका अर्थ प्रस्तुत करता है। यह मूलतः ध्वनि प्रक्रिया का माध्यम है। किन्तु टेलीविजन में पूरी दृश्यात्मकता, ध्वनि के साथ मौजूद है। फलतः अगला युग टेलीविजन के युग के रूप में स्थापित हुआ।

1.3.2 टेलीविजन

टेलीविजन का आविष्कार बीसवीं शताब्दी के संचार माध्यमों की सबसे प्रमुख उपलब्धि है, जिसने वैश्विक संस्कृति के निर्माण में युगांतकारी भूमिका निभाई। इस अद्‌भुत यंत्र ने मानवीय सभ्यता और संस्कृति को एक नई दिशा की ओर प्रशस्त कर दिया। टेलीविजन के आविष्कार ने रेडियो की उपयोगिता को कम किया है, परन्तु निजी रेडियो चैनलो द्वारा प्रसारित संगीतमय एवं मनोरंजक कार्यक्रमों ने इसकी उपयोगिता एवं महत्ता को जीवंत बना रखा है। टेलीविजन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का सबसे सशक्त एवं लोकप्रिय माध्यम है, इसकी महत्ता का अंदाजा इसी बात से लगाया सकता है कि जब भी इलेक्ट्रॉनिक माध्यम की बात होती है, तो उसका आशय टेलीविजन ही समझा जाता है। यह दृश्य एवं श्रव्य दोनो माध्यम है। रेडियो की सीमा ध्वनि तक सीमित थी। परन्तु टेलीविजन में ध्वनि के साथ–साथ चित्रों के सजीव प्रसारण ने इसकी उपयोगिता एवं कार्यक्रम दोनों को रुचिकर बना दिया। जिसका प्रभाव जनता पर व्यापक रूप से पड़ा।

भारत में टेलीविजन की शुरुआत सितंबर 1959 ई. में प्रायोगिक तौर पर की गई। 1965 ई. में इसकी नियमित सेवा प्रारम्भ की गई। 1946 ई. में इसे आकाशवाणी से अलग कर दूरदर्शन के रूप में स्थापित किया गया। प्रारम्भ में लगभग 1973 ई. के आसपास सरकार ने नासा के सहयोग से शैक्षिक टेलीविजन प्रसारण की शुरुआत की। जिसका उद्देश्य पिछड़े क्षेत्रों को जागरुक करना था। यह प्रसारण मूलतः किसानों के जीवन से जुड़ा था और उसकी दौर में भारत में हरितक्रान्ति की शुरुआत हो चुकी थी। इस प्रसारण में सफाई, परिवार नियोजन, कृषि–सम्बन्धी जानकारी प्रसारित किए जाते थे। 1982 ई. में भारत में हुए एशियाई खेलों के आयोजन ने इसकी लोकप्रियता को काफी बढ़ाया। 1984 ई. में पहली बार मनोहर श्याम जोशी लिखित धारावाहिक 'हमलोग' का प्रसारण पी. कुमार वासुदेव के निर्देशन में प्रारम्भ हुआ, जिसे काफी लोकप्रियता मिली। दूसरी ओर क्रिकेट विश्वकप के प्रसारण ने भी इसे लोकप्रियता प्रदान की।

टेलीविजन का यह क्रमिक विकास आज अपने पूर्ण रूप में विद्यमान है, जो देश और समाज को हर क्षेत्र में दिशा प्रदान का जरिया बना हुआ है। टेलीविजन मुख्य रूप से दृष्टि–निर्बंध के सिद्धांत पर आधारित है। जिस वस्तु या व्यक्ति का बिंब टेलीविजन के माध्यम से प्रसारित करना होता है, उस पर तेज प्रकाश डाला जाता है। तस्वीर वाले अवयव में बदल दिए जाते हैं तथा उनसे जुड़ी तरंगों का माड्यूलन कर निश्चित दिशा में प्रेषण द्वारा, यह संचारित किया जाता है। दर्शक या ग्राही उसी क्रम में (जिस क्रम में तस्वीर विभक्त हुई है।) इन अवयवों को जोड़कर मूल तस्वीर प्राप्त करता है और हमारी आँखों के सामने एक सेकेंड में 20–25 क्रमिक परिवर्तन वाले चित्रों के गुजरने के कारण वह हमें गतिमान दिखाई देता है।

टेलीविजन माध्यम को लोकप्रिय बनाने में निजी चैनलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। टेलीविजन चैनलों एवं कार्यक्रमों की विविधता ने समाज को मनोरंजन एवं सूचना के लिए टेलीविजन पर आश्रित कर दिया है। विश्व के किसी भी कोने में घटित होने वाली घटनाएँ तत्काल हमें सहजता से उपलब्ध हो जाती है। संचार

माध्यमों की इस तीव्रता को बढ़ाने और आम जनता को घर बैठे सारा संसार दिखाने में टेलीविजन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

1.3.3 इंटरनेट

कम्प्यूटर के आविष्कार ने जहाँ तथ्यों, सूचनाओं आदि के संग्रहण एवं विश्लेषण में हमें जिस आधुनिक तकनीक से परिचित कराया, वहीं उसी कम्प्यूटर के माध्यम से संचालित इंटरनेट ने जनसंचार के क्षेत्र को असीमित संभावनाओं से पूरित कर दिया। चाहे राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने विचार हेतु जनसमर्थन की बात हो, अपने ज्ञान को प्रसारित करना हो, सूचनाओं का आदान–प्रदान करना हो, इंटरनेट इस दिशा में उपयोगी सिद्ध हुआ। इंटरनेट पर ज्ञान का असीम भण्डार होता है, जिसके लिए अलग–अलग वेबसाइट होते होते हैं। इनके माध्यम से कोई को व्यक्ति, जिसे कम्प्यूटर का ज्ञान हो, सूचना प्राप्त कर सकता है। 'गूगल डॉट कॉम' जैसी वेबसाइट से व्यक्ति किसी भी तरह की जिज्ञासा की पूर्ति कर सकता है समान, शेयर, टिकट बेचने के लेकर ज्ञान–विज्ञान एवं साहित्य के क्षेत्र में भी इसका महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप है। इतना ही नहीं इंटरनेट ने मानवीय एवं सामाजिक सम्बन्धों के मेल में भी उपयोगी भूमिका निभाई है। आज इंटरनेट पर कई ऐसी साइटें हैं, जो शादी–विवाह के माध्यम से दो अनभिज्ञ लोगों को भी मिलाने का काम करते हैं। इंटरनेट की सुविधा ने प्रत्यक्ष सामाजिक सम्बन्धों के समांतर एक अलग सामाजिक दुनिया की सृष्टि की है।

भारत में इंटरनेट की शुरुआत 80 के दशक में हुई किन्तु आम लोगों के सामान्य उपयोग के लिए इसका शुभारम्भ 15 अगस्त 1995 ई. को हुआ, जब विदेश संचार निगम लिमिटेड ने गेटवे सर्विस की शुरुआत की। भारत में कुल जनसंख्या का 10 प्रतिशत लोग इंटरनेट का उपयोग करते हैं, जो विश्व की आबादी का 3 प्रतिशत है। इंटरनेट सम्पूर्ण विश्व में फैले कम्प्यूटर नेटवर्कों का एक नेटवर्क है। जिसमें किसी भी नेटवर्क का कम्प्यूटर, किसी भी नेटवर्क के

कम्प्यूटर से कम्युनिकेट कर सकता है। इंटरनेट की इस सुविधा के लिए आवश्यक शर्तें होती हैं, जिसे प्रोटोकॉल कहा जाता है। इंटरनेट पर दो कम्प्यूटर आपस में कम्युनिकेट करने के लिए जिस प्रोटोकॉल का प्रयोग करते हैं, उसे TCP/IP के नाम से जाना जाता है। एक हई–स्पीड नेटवर्क विभिन्न लोकल एरिया नेटवर्क (LAN) को इंटरनेट से जोड़ता है। जिसे इंटरनेट का बैकबोन कहते हैं। यह मूल रूप से टेलीविजन लाइनों द्वारा जुड़ा होता है। इसी टेलीविजन लाइन के द्वारा कम्प्यूटर को इंटरनेट सर्विस प्रोवाइडर के सर्वर से जोड़ा जाता है और संदेश को एक स्थान से दूसरे स्थान तक कम्प्यूटर के माध्यम से प्रेषित किया जाता है।

इंटरनेट के उपयोग एवं स्वरूप को समझने के बाद यह जानना आवश्यक हो जाता है कि जनसंचार माध्यमों के मध्य इसकी स्थिति क्या है? सूचना प्रौद्योगिकी का यह माध्यम किस वर्ग के उपयोग के लिए है। अगर इंटरनेट की तुलना अन्य माध्यमों से करें तो यह प्रिन्ट मीडिया की तरह पाठन के लिए उपयोगी है। टेलीविजन की प्रकृति इंटरनेट की अपेक्षा भिन्न है क्योंकि वह दृश्य एवं श्रव्य दोनों माध्यम है। साथ ही टेलीविजन के उपयोग के लिए किसी भी प्रकार से शिक्षित होने की आवश्यकता नहीं है। टेलीविजन मनोरंजन एवं सूचनाओं को पूर्ण एवं प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत कर देता है, जिसमें आम जीवन की कोई भागीदारी नहीं होती है। लेकिन इंटरनेट के उपयोग के लिए कम्प्यूटर की बुनियादी जानकारी एवं अक्षर–ज्ञान आवश्यक है। पढ़े–लिखे समाज में इंटरनेट ने अपनी उपयोगिता बड़े पैमाने पर सिद्ध की है। सीखने और सिखाने का यह एक वृहत् माध्यम है। चूँकि यह एक बहुपयोगी माध्यम है इसलिए इसकी लोकप्रियता भी बहुत है। इंटरनेट इन दिनों सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन का बहुत बड़ा जरिया है। सामाजिक एवं राजनीतिक संगठनों के लिए यह एक विचारमंच के तौर पर उभरा है। इस माध्यम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके उपयोग के लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है। जाहिर है विचार संप्रेषण के इस बहुआयामी एवं तीव्र माध्यम के जहाँ फायदे हैं, वहीं इसका दुरुपयोग सामाजिक विकास एवं मानवीय संस्कृति को नुकसान भी पहुँचाता है।

1.4 इलेक्ट्रॉनिक माध्यम : अभिव्यक्ति के साधन

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की अभिव्यक्ति के साधनों ने ही उसके उपयोग एवं उपयोगिया को लोकप्रिय बनाया है। प्रिन्ट मीडिया के सीमित साधन मनुष्य के भाव एवं ज्ञानेन्द्रियों को तुष्ट नहीं कर पाते थे, वहीं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने मनुष्य की हर कल्पनाशीलता को प्रत्यक्ष कर दिया। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के प्रभावशाली सम्प्रेषण में कई साधनों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

1.4.1 ध्वनि

इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के प्रसारण में ध्वनि व्यवस्था महत्त्वपूर्ण है। यह ध्वनि व्यवस्था तब और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है, जब केवल श्रव्य माध्यमों द्वारा सूचना प्रेषित की जाती है। विशेष रूप से रेडियो प्रसारण में। हालाँकि रेडियो एवं टेलीविजन दोनों माध्यमों में ध्वनि महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन रेडियो में चित्रात्मकता के आभाव में ध्वनि द्वारा ही बिम्बों का निर्माण किया जाता है। रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रमों में ध्वनि पर विशेष ध्यान दिया जाता है। किसी भी रेडियो नाटक, कहानी या अन्य कार्यक्रमों के लेखन एवं प्रसारण में ध्वनि संयोजन का ध्यान विशेष रूप से रखा जाता है क्योंकि इसमें टेलीविजन की तरह चित्रों के माध्यम से पात्र या घटनाओं को दर्शकों तक प्रेषित नहीं किया जा सकता है। रेडियो में राजा हो या भिखारी, दुकानदार हो या पटवारी सबका अभिनय ध्वनि के माध्यम से ही हो सकता है। एक रेडियो उद्घोषक या कलाकार की सफलता इस बात पर निर्भर है कि वह श्रोताओं पर अपनी आवाज या शैली से कितना प्रभाव छोड़ पाता है। इसलिए उद्घोषक या कलाकार संवाद अदायगी एवं शब्दों के उच्चारण में हमेशा सावधानी बरतता है क्योंकि वह ध्वनि के माध्यम से ही अभिनय कर रहा होता है। रेडियो प्रसारण में दृश्यों एवं घटनाओं के सम्प्रेषण के लिए ध्वनि ही एकमात्र जरिया है। जैसे घोड़ों की टाप, युद्ध क्षेत्र का वर्णन, पशु–पक्षियों की चहचहाहट, बारिश की बूँदे, दरवाजे के खुलने की आवाज, जोर से चीजें पटकने, लाठी की ठक–ठक बस एवं रेलगाड़ी की आवाज एवं उद्घोषणाएँ, रेलवे प्लेटफॉर्म के दृश्य आदि का आनन्द रेडियो पर ध्वनि द्वारा ही लिया जा सकता है।

जबकि टेलीविजन में चित्रात्मकता प्रमुख है, परन्तु ध्वनि और चित्र का उचित सामंजस्य ही माध्यम को सफल बनाता है। मान लीजिए चित्रों के माध्यम से कुछ और दिखाया जा रहा हो और ध्वनि कुछ और कह रहे हो, उस स्थिति में दर्शकों के गुमराह होने का खतरा रहता है। दूसरी बात यह कि दिखाए जाने वाले पात्रों के संवाद का चित्र और उसकी ध्वनि का यथासमय मेल होना चाहिए। टेलीविजन माध्यम में ध्वनि की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता है, किन्तु ऐसी कई परिस्थितियाँ होती हैं, जहाँ दृश्यों को शब्दों की जरूरत नहीं होती। बहुत से ऐसे कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं, जो मूक होते हैं। भारतीय सिनेमा की शुरुआत ही मूक फिल्मों से हुई है। कहने का अर्थ यह कि दृश्य माध्यमों में ध्वनि व्यवस्था की इतनी गुंजाइश शेष रहती है कि उसके बगैर भी चित्र सम्भव है, परन्तु रेडियो पूर्णतः ध्वनि व्यवस्था है। ध्वनि की महत्ता और उसकी शक्ति को इसी माध्यम द्वारा समझा जा सकता है।

1.4.2 प्रकाश

प्रकाश व्यवस्था का सम्बन्ध मूलतः दृश्य माध्यमों से है। टेलीविजन और फिल्म निर्माण की प्रक्रिया में दृश्यों के संयोजन के लिए इस व्यवस्था का उपयोग किया जाता है। यह किसी भी कार्यक्रम के निर्माण का महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसके आभाव में दृश्य निर्माण की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। हालाँकि कैमरा हर तरह के दृश्यों का संयोजन कर सकता है, परन्तु कैमरे की अपनी सीमा है। प्रकाश की व्यवस्था कैमरे के सहायक के रूप में की जाती है, ताकि रंगों को आसानी से पहचाना जा सके। समुचित प्रकाश व्यवस्था के बिना कैमरा कुछ भी दिखाने में असमर्थ हो सकता है। आजकल कुछ अत्याधुनिक कैमरे उपलब्ध है, जो कम रोशनी में भी छायांकन में सक्षम हैं, किन्तु कैमरे के माध्यम से वांछित दृश्य के लिए समुचित प्रकाश, बाह्य छायांकन के लिए सूर्य की स्थिति एवं प्रकाश को ध्यान में रखते हुए टेलीविजन या फिल्म के दृश्यों को संयोजित कर लिया जाता है। लेकिन धारावाहिक सिनेमा, संगीत–कार्यक्रमों, नाटकों या रात्रिकालीन

गतिविधियों के छायांकन के लिए प्रकाश की वांछित व्यवस्था होनी चाहिए। यदि छायांकन स्टूडियो या किसी जगह विशेष के भीतर हो रहा हो, तो वैसी स्थिति में निर्देशक द्वारा तकनीकी सहकर्मियों की मदद से प्रकाश की व्यवस्था की जानी चाहिए। किसी भी वस्तु या जगह की लम्बाई–चौड़ाई के साथ–साथ उसकी मोटाई व गहराई दिखाने के लिए तीसरी दिशा का भ्रम पैदा किया जाता है। यह प्रक्रिया समुचित प्रकाश व्यवस्था में ही सम्भव है। साथ ही दृश्यांकन या छायांकन में जो चीजें कम महत्त्वपूर्ण है, उन्हें अनदेखा भी किया जाता है और जिसे स्पष्ट दिखाना है, उस पर प्रकाश की तीव्रता बढ़ा दी जाता है। इस प्रकाश व्यवस्था के माध्यम से न सिर्फ वस्तु या दृश्य को आलोकित करने का काम किया जाता है बल्कि अलग–अलग तरह के प्रकाश के रंगों द्वारा कई तरह के भावों का भी प्रदर्शन किया जाता है। स्टूडियो के अंदर या बाहरी क्षेत्र में स्टूडियोनुमा छायांकन के लिए प्रायः तीन तरह के प्रकाश स्रोतों का इस्तेमाल किया जाता है।

(1) की लाइट (Key Light)

(2) बैक लाइट (Back Light)

(3) फिल लाइट (Fill Light)

(1) की लाइट (Key Light)

यह कलाकार या स्थान केन्द्रित प्रकाश स्रोत है। जो पूर्णतः इन पर ही केन्द्रित होता है।

(2) बैक लाइट (Back Light)

यह दृश्य के पृष्ठ भाग को दिखाने में प्रयुक्त की जाती है।

(3) फिल लाइट (Fill Light)

दृश्यांकन में अवाँछित छाया या दाग–धब्बों आदि को हल्का या कम करने के लिए जिस प्रकाश–स्रोत का इस्तेमाल किया जाता है, उसे फिल लाइट कहते हैं इस

प्रकार इन तमाम प्रकाश व्यवस्था की प्रविधियों का इस्तेमाल ही दृश्य निर्माण को जीवंतता प्रदान करता है।

1.4.3 कैमरा

कैमरा इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के अन्तर्गत दृश्य माध्यम का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। कैमरा के बगैर दृश्य माध्यमों की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। दृश्य संयोजन में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कैमरे में लगे ऑप्टिकल लेंस तथा संबंधित इलेक्ट्रॉनिक उपकरण ही दृश्य निर्मित करते हैं। टेलीविजन कार्यक्रम एवं फिल्म निर्माण में कैमरा बहुपयोगी माध्यम है, जिसके नित नए प्रयोग एवं उपयोग ने इसे काफी लोकप्रिय बना दिया है।

टेलीविजन कार्यक्रमों एवं फिल्म निर्माण में कैमरे से जुड़ा एक लोकप्रिय शब्द है 'शॉट'। एक कैमरामैन अपने कैमरे को किसी दृश्य के छायांकन हेतु चालू करने से लेकर बंद करने तक एक बार में जो दृश्य कैमरे में छायांकित करता है, यह पूरा अंश एक 'शॉट' कहलाता है। दृश्यांकन की सम्पूर्ण प्रणाली इसी शॉट के अन्तर्गत होती है। जिस प्रकार लिखित भाषा में कई वाक्यों का पैराग्राफ होता है, उसी प्रकार टेलीविजन कार्यक्रम में कई 'शॉट्स' मिलकर दृश्य का निर्माण करते हैं। यह शॉट विडियो या फिल्म प्रोडक्शन की आधारभूत इकाई है। दृश्य टेलीविजन कार्यक्रम की तरह छोटी या बड़ी किसी भी अवधि का हो सकता है। इस 'शॉट' के कई प्रकार होते हैं।

(1) फ्रेम

टेलीविजन कार्यक्रम का सबसे लघु भाग फ्रेम कहलाता हैं टेलीविजन के लिए छायांकन की गति 25 फ्रेम प्रति सेकेंड होती है। इसे गति से छायांकित दृश्य प्राकृतिक एवं सुंदर लगते हैं। एक 'शॉट' में कई फ्रेम होते हैं। जिस प्रकार कई 'शॉट' में एक दृश्य होता है, उसी प्रकार कई फ्रेम मिलकर एक 'शॉट' का निर्माण करते

हैं। किस फ्रेम में क्या है, किस 'शॉट' में कितने फ्रेम हैं? किस शॉट में क्या और किसे, कितना दिखाना है? ये तमाम चीजें टेलीविजन के कार्यक्रम निर्देशक द्वारा तय किया जाता है। निर्देशक के इशारे पर ही कैमरामैन आवश्यकतानुसार कम एवं ज्यादा मात्रा में वस्तु, व्यक्ति तथा स्थान को एक शॉट में शामिल करते हुए छायांकित करता है।

(2) क्लोज–अप

पूरे परदे पर केवल एक व्यक्ति का चेहरा नजदीक से दिखाना ही 'क्लोज–अप–शॉट' कहलाता है। खासतौर पर यह संवाद की स्थिति में प्रयुक्त होता है। विशेषज्ञों ने भी इसे संवाद का माध्यम कहा है। इस प्रक्रिया में दर्शक किसी व्यक्ति, वस्तु या दृश्य को ज्यादा नजदीक या बारीकी से देखकर उसके साथ एक जुड़ाव महसूस करता है।

(3) मीडियम शॉट

क्लोज–अप–शॉट के दौरान कैमरे के माध्यम से चेहरा और ऊपर का भाग दिखाया जाता है लेकिन दर्शक सिर्फ ऊपर के भागों से ही संतुष्ट नहीं होता है, इसलिए चेहरे के साथ छाती से नीचे पेट तक के हिस्से को शॉट में दिखाए जाने के कारण इसे मीडियम शॉट कहते हैं। आमतौर पर चर्चा या बातचीत के दौरान इसका प्रयोग किया जाता है।

लॉन्ग शॉट

किसी व्यक्ति को अपाद–मस्तक पूरा एक साथ, एक ही शॉट में दिखाए जाने को 'लॉन्ग शॉट' कहते हैं दैनिक जीवन अथवा व्यवहार के अनुसार व्यक्ति 'लॉन्ग शॉट' में अकेला नहीं होता, बल्कि उसके आस–पास बहुत कुछ हो सकता है।

जैसे – उसके आस–पास का परिवेश कैसा है? किधर और किसे देख रहा है? आस–पास कुछ रखा है? आदि कई स्थितियों का छायांकन 'लॉन्ग शॉट' का हिस्सा हो सकता है। इस प्रकार के शॉट को 'वाइड शॉट' कहते है। किसी स्थान या माहौल का परिचय देने के लिए जिस विधि का उपयोग किया जाता है, उसे 'लोकल शॉट' कहा जाता है। एक 'लॉन्ग शॉट' और 'मीडियम शॉट' के बीच की आकृति से बनने वाले शॉट को मीडियम लॉन्ग शॉट कहते है। 'मीडियम शॉट' और 'क्लोज–अप' के मध्य आकृति को 'मीडियम क्लोज–अप शॉट' कहा जाता है। मनुष्य के चेहरे को गर्दन से ऊपर बाल तक के हिस्से को दिखाया जाना 'बिग क्लोज–अप शॉट' या 'टाइट क्लोज–अप शॉट' कहलाता है।

दृश्यों का बारीकी से छायांकन करने के लिए कुछ अन्य शॉट भी होते हैं। दृश्य में दिखाए गए व्यक्तियों की संख्या के आधार पर एक व्यक्ति का 'सिंगल शॉट', दो का 'टू शॉट', तीन का 'थ्री शॉट' और चार उस उससे अधिक का 'समूह शॉट' कहलाएगा। दो व्यक्तियों की बातचीत को दर्शाने के लिए एक व्यक्ति के कंधे और कनपटी को दिखाते हुए सामने वाले का चेहरा दिखाते हुए जो शॉट बनाया जाता है, उसे ओ.एस.एस. (Over the shoulder shot) शॉट कहते हैं। 'प्रोफाइल शॉट' में व्यक्ति का एक तरफ का चेहरा दिखाई देता है और व्यक्ति कहीं और देख रहा होता है। सामान्य रूप से इस प्रविधि का इस्तेमाल एकाकीपन के दृश्य में होता है। स्टूडियों अथवा फील्ड में छायांकन के दौरान कैमरा कलाकार की गतिविधियों का 'ऑन शॉट' पीछा करता है। इसे अनुगामी शॉट कहते हैं। स्थिर शॉट में कैमरा स्थिर रहता है। इस प्रकार कैमरा छायांकन या दृश्यांकन का आधार है जो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

1.4.4 भाषा

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम भाषा भी है। भाषा ही सम्प्रेषण को व्याख्यायित करती है। साथ ही भाषा की प्रभावोत्पादकता भी माध्यम को सफल बनाती है। टेलीविजन कार्यक्रमों एवं फिल्म निर्माण की भी अपनी भाषा

होती है। उस भाषा को दर्शकों की रुचि के अनुसार तैयार किया जाता है। भाषा लेखन के वक्त कुछ बातों का ध्यान रखना पड़ता है। जैसे – भाषा के माध्यम से चरित्र खुलकर सामने आए और उसमें अधिक से अधिक नाटकीयता हो। माध्यम की भाषा आमफहम, स्पष्ट और सटीक होना चाहिए, ताकि वह हर वर्ग तक प्रेषित हो सके। भाषा में किए जाने वाले प्रयोग भी दर्शकों को केंद्र में रखकर किया जाना चाहिए। ऐसे किसी भी शब्द का उपयोग न किया जाए, जिसे समझने में कठिनाई हो, क्योंकि उसका उच्चारण दुबारा नहीं होता। वाक्य छोटे–छोटे होने चाहिए, ताकि भाषा का प्रवाह बना रहे। कथानक में संक्षिप्तता होनी चाहिए और लेखन के पूर्व उसका स्वरूप तय होना चाहिए, जिससे दर्शक यह तय कर सकें कि अमुक धारावाहिक, फिल्म या कार्यक्रम का केंद्र बिंदु क्या है? आदि।

दूसरी बात यह कि टेलीविजन या रेडियो कार्यक्रमों की अवधि निर्धारित होती है; इसलिए सीमित अवधि में अधिक से अधिक प्रभावोत्पादकता को ध्यान में रखकर भाषा का निर्माण किया जाता है। जैसे – विज्ञापनों में प्रयुक्त भाषा इसी प्रकार भी भाषा होती है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भाषा में साहित्यिकता का आभाव होता है, क्योंकि इसका उपयोग अशिक्षित एवं साहित्य से इतर जनता भी करती है। रेडियो कार्यक्रमों के लिए भाषा टेलीविजन माध्यम से अधिक उपयोगी है, क्योंकि वहाँ चित्र के आभाव में प्रेषणीयता का सारा दारोमदार भाषा एवं ध्वनि पर ही है। टेलीविजन कार्यक्रमों में भाषा एवं चित्र दोनों में सामंजस्य होता है, क्योंकि दोनों एक दूसरे को अभिव्यक्त करते हैं। कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने के लिए भाषा में प्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है। चूँकि यह माध्यम दर्शक या श्रोता के प्रत्यक्ष रूप में जुड़ा है, इसलिए इसकी भाषा में मानवीय संवेदनाओं का ध्यान रखा जाता है, ताकि उस कार्यक्रम से किसी को भावनात्मक ठेस न पहुँचे। इस प्रकार इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की अभिव्यक्ति में भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साहित्य और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। साहित्य, संस्कृति एवं कला के संरक्षण, संवर्धन एवं व्यापक प्रसार के लिए जहाँ इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की आवश्यकता है, वहीं इन

माध्यमों की अभिव्यक्ति का विषय एवं स्वरूप साहित्य द्वारा निर्धारित होता है। इन माध्यमों के बिना सुदूर ग्रामों और आदिवासी अंचलों में बसे लोगों तक कला–सांस्कृतिक एवं साहित्य को पहुँचाना मुश्किल है। रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेलीविजन, संचार उपग्रह, ऑडियो–वीडियो कैसे इस द्वारा हम संगीत, नृत्य, ललितकला, साहित्य, संस्कृति, सूचना, समाचार आदि को जनसाधारण के घरों तक पहुँचाने में सफल हुए हैं।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साहित्य और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम दो अलग–अलग चीजें नहीं हैं बल्कि इसी साहित्यिक अभिव्यक्ति का विस्तार है। ज्ञान संरक्षण के दौर में मनुष्य पत्थर से लेकर ताम्रपत्र एवं भोजपत्र की यात्रा तय करते हुए कागज तक पहुँचा। शब्दों के माध्यम से मन की भावनाओं को अभिव्यक्त किया जाने लगा। लेकिन शब्दों की पहुँच आम लोगों तक नहीं थी। शब्द ज्ञान सबके लिए सुलभ नहीं था। जहाँ साहित्य की अभिव्यक्ति शब्दों के माध्यम से हुई वहीं ध्वनि, प्रकाश आदि तकनीक ने इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों को अभिव्यक्त किया। परन्तु जब कागज पर मुद्रित शाब्दिक ज्ञान मनुष्य के सर्वांगीण जीवन को अभिव्यक्त करने में असमर्थ सिद्ध हुआ, वैसी स्थिति में अभिव्यक्ति के नए साधनों की तलाश हुई। जैसे – रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट आदि माध्यम इसी प्रकार विकसित हुए। जैसे–जैसे मानवीय जिज्ञासाएँ बढ़ती गई। मनुष्य ने उसके शमन के साधन ढूँढ लिए। प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से ये साधन ज्यादा कारगर सिद्ध हुए। फलतः साहित्य को अभिव्यक्त करने के लिए इन माध्यमों का सहारा लिया जाने लगा। सभ्यता, संस्कृति, मिथक पुराण की कथाओं, जीवन–सम्बन्धी शिक्षा आदि को जन–जन तक पहुँचाने के लिए इन्हीं माध्यमों का सरलता एवं सहजता से इस्तेमाल किया जाने लगा। 'वाल्टर बेंजामिन' ने भी कहा है कि ''मैकेनिकल रिप्रोडक्शन के युग में कला को प्रभावी बनाने का काम कलाकार से अधिक मशीन करती है।''[10]

रामानन्द सागर निर्मित रामायण धारावाहिक साहित्य एवं इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के समन्वय का अदभुत उदाहरण है। ऐसा नहीं है कि इस तरह का प्रयोग

---

[10] उद्धृत सुरेश शर्मा, नवभारत टाइम्स, हाँ एक नई राह दिखाई है इस फिल्म ने, 16 अगस्त 2003

पहली बार रामानन्द सागर ने किया। मिथक–पुराण की कथा को आधार बनाकर तकनीकी माध्यमों द्वारा नए तरीके से प्रस्तुत किया जा चुका था। समय–दर–समय, जैसे–जैसे तकनीक का अविष्कार होता गया जनता की रुचि आधुनिक भावों की ओर अग्रसर होती गई। मिथक–पुराणों की कथा का जो संस्कार जनमानस पर व्याप्त था, उसी भाव को सहलाने का यह एक सार्थक प्रयास था। इससे पूर्व रामकथा का प्रदर्शन हो चुका था किन्तु उसे धारावाहिक के रूप में पहली बार रामानन्द सागर ने ही प्रस्तुत किया। धारावाहिक द्वारा प्रस्तुति की योजना ने जनता को एक लम्बे अन्तराल तक रामकथा के मोहपाश में बाँधे रखा। जाहिर है परम्परागत संस्कृति के प्रदर्शन का यह एक सार्थक प्रयास था जिसमें तकनीक का सहारा लिया गया था।

दूसरा अध्याय

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में रामकथा का स्वरूप

2.1 रामकथा के प्राचीन स्रोत

2.2 रामकथा के मध्ययुगीन स्रोत

2.3 रामकथा की लोकाभिरुचि एवं स्वरूप

2.4 धारावाहिक रामायण से पूर्व रामकथा का सिनेमाई रूपान्तरण

2.5 धारावाहिक की परम्परा और धारावाहिक रामायण

दूसरा अध्याय

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में रामकथा का स्वरूप

धारावाहिक रामायण की सफलता के पीछे जनमानस में व्याप्त रामकथा के पूर्ववर्ती स्रोतों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता है। भारतीय जनमानस में इस कथा की व्याप्ति एवं प्रभाव के कई आदिम एवं आधुनिक स्रोत हैं जिसकी भूमिका इसकी सफलता का आधार है। इन आदिम एवं आधुनिक स्रोतों ने ही जनमानस को इस धारावाहिक के लिए कौतूहल एवं रहस्यात्मकता पैदा की। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत 'ऋग्वेद', 'ऐतरेय ब्राह्मण', 'शतपथ–ब्राह्मण', 'जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण', 'वृहदारण्यक उपनिषद' आदि में मौजूद रामकथा के पात्रों ने रामकथा के आगे की पृष्ठभूमि तैयार की। इन्हीं स्रोतों पर आगे चलकर वाल्मीकि ने रामकथा को आधार बनाकर व्यवस्थित रूप में रामायण की सर्जना की।

रामकथा की यह धारा जो वैदिक साहित्य से चली और वाल्मीकि द्वारा सृजित हुई थी, वह सैकड़ों वर्षों में न सिर्फ लोक–भाषाओं में बल्कि विदेशी भाषाओं में भी प्रसारित हुई। फलतः न सिर्फ भारतीय भाषाओं में बल्कि विदेशों में भी प्रभूत रामकथाएँ लिखी गई। रामकथा की इस लोकप्रियता का प्रभाव सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन पर पड़ा। इसी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक व्याप्ति के कारण इसकी अभिव्यक्ति एवं प्रस्तुति के लिए नए माध्यम के रूप में रामलीला का जन्म हुआ। अब तक जो कथा वाचिक एवं लिखित परम्परा में थी, वह साक्षात पात्रों के माध्यम से अभिनीत होने लगी। रामलीला के अभिनय की यही परम्परा 'इलेक्ट्रॉनिक माध्यम' में धारावाहिक के रूप में स्थापित हुई। यह धारावाहिक इसी रामलीला का तकनीकी रूपान्तरण था, जो टेलीविजन के माध्यम से प्रसारित किया गया था। रामायण धारावाहिक से पूर्व विभिन्न

भारतीय भाषाओं में कई फिल्में बनाई जा चुकी थी। जिसका प्रभाव रामानन्द सागर पर देखा जा सकता है न सिर्फ पूर्ववती परम्पराओं का लाभ रामानन्द सागर को मिला बल्कि उनके धारावाहिक की अभूतपूर्व सफलता ने आगे भी धारावाहिकों की परम्परा स्थापित की।

2.1 रामकथा के प्राचीन स्रोत

रामकथा का प्रत्यक्ष अर्थ यह है कि यह राम से जुड़ी कथा है लेकिन साथ–साथ यह भी प्रश्न उठता है कि यह 'राम' कौन है? राम की कथा क्या है? रामकथा के आदि एवं प्रकारांतर के स्रोतों ने अपने–अपने अनुसार राम शब्द की व्याख्या की है और कथा की सृष्टि की है। आध्यात्म रामायण के अनुसार –

> ''यस्मिन् रमन्ते मुनयो विद्ययाः ज्ञानविप्लवे।
> तं गुरूः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि।।''[1]

अर्थात जिसमें सभी देवता एवं मुनिजन रमण करते हैं, वह परमब्रह्म, परमशक्ति राम है।

प्रारम्भ में 'राम' शब्द का अर्थ व्यापक था, जो बाद में चलकर परमब्रह्म अर्थात विष्णु के अवतार के रूप में स्थापित हुआ। विद्वानों का मानना है कि अवतारवाद की इस अवधारणा के पूर्व ही रामकथा का विकास एवं प्रसार हो चुका था, राम विष्णु के अवतार बाद में माने गए। 'रामधारी सिंह दिनकर' का मानना है कि ''ईसा से तीन सौ वर्ष पूर्व वासुदेव कृष्ण के अवतार माने जाने लगे थे और उनके अवतार होने की बात चलने के बाद, बाकी अवतार भी विष्णु के ही अवतार माने जाने लगे; तथा उन्हीं दिनों राम का अवतार होना भी प्रचलित हो गया।''[2]

ईसा की पहली शताब्दी ई. पूर्व तक राम विष्णु के अवतार रूप में पूर्णतया स्थापित हो चुके थे।

---

[1] आध्यात्म रामायाण, पृ. 25

[2] रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 76–77

चौथी शताब्दी ई. पूर्व में वाल्मीकि ने राम के चरित्र को आधार बनाकर एक विस्तृत प्रबन्ध–काव्य की रचना की, जिसमें राम के निर्वासन से लेकर अयोध्या में उनके प्रत्यागमन तक की कथा का वर्णन था। उसमें अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथा वर्णित थी। रामकथा के इस व्यवस्थित रूप के प्रभावस्वरूप लोकमानस ने वाल्मीकि रामायण में वर्णित दशरथ पुत्र राम की अभिन्नता पूर्व के राम से स्थापित करनी प्रारम्भ कर दी। धीरे–धीरे सम्पूर्ण हिन्दी जगत एवं अन्य क्षेत्रों में राम के इसी स्वरूप की प्रतिष्ठा हो गई। 16वीं शताब्दी में तुलसीदास ने वाल्मीकि एवं आध्यात्म रामायण की कथा को आधार बनाकर राम के मर्यादा पुरुषोत्तम एवं ब्रह्म के समन्वित रूप की प्रतिष्ठा की।

''जेहि इमिं गावहि बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगतहित कोसलपति भगवान।।''[3]

वेद और विद्वत जन जिसका गुणगान करते हैं, मुनि जिसका ध्यान धरते हैं, वही दशरथ नंदन भक्तों के हितकारी, अयोध्या के स्वामी भगवान श्रीरामचन्द्र हैं। इस तरह सम्पूर्ण भारत में खासकर हिन्दी प्रदेशों में राम के इसी स्वरूप को ग्रहण किया गया। 'राम' शब्द का उपयोग इस स्वरूप से इतर कबीर ने किया है जिनके राम 'दशरथ सुत' नहीं है।

दसरथसुत तिहुँ लोक बखाना, रामनाम का मरम है आना।।

कबीर ने दासरथी राम की जगह निर्गुण ब्रह्मरूपी राम की प्रतिष्ठा की है। इस प्रकार 'राम' शब्द की व्याख्या एवं उसका स्वरूप कई रूपों में दिखाई देता है।

2.1.1 वैदिक साहित्य

वैदिक साहित्य में रामकथा के अनेक पात्रों के नाम मिलते हैं, जिससे यह सिद्ध किया जाता है कि वैदिक काल में भी इसका प्रचलन था। जिस इक्ष्वाकु वंश में

---

[3] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 107

राम के जन्म लेने की बात की जाती है, उस इक्ष्वाकु का ऋग्वेद में एक बार उल्लेख मिलता है। जिससे यह ज्ञात होता कि इक्ष्वाकु नाम के कोई राजा थे। अथर्ववेद में भी एक बार इस नाम का उल्लेख मिलता है।

वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ऋग्वेद में भी एक बार दान स्तुति में अन्य राजाओं के साथ दशरथ की भी प्रशंसात्मक स्तुति मिलती है। मध्य–एशिया की आर्य जाति 'मितन्नि' के राजा दशरथ का भी उल्लेख मिलता है, जिसका समय 1400 ई. पूर्व माना जाता हैं ऐसा दिनेशचंद्र सेन का मत है।

राम का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। जहाँ उनका वर्णन अन्य प्रतापी राजाओं के साथ हुआ है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में राम का परिचय श्यापर्ण कुल के ब्राह्मण के रूप में मिलता है, जो जनमेजय के समकालीन थे। शतपथ ब्राह्मण में 'अंसुग्रह' नामक यज्ञ के तत्व पर विचार करने वाले आचार्यों में एक राम का भी उल्लेख है, जो उस विद्वत समाज के अंग हैं। 'जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण' के दो स्थलों पर राम का उल्लेख 'क्रातुजतिय' दार्शनिक शिक्षा देने वाले विद्वान के रूप में की गई है। इन्हीं तमाम उल्लेखों के आधार पर 'कामिल बुल्के' ने यह निष्कर्ष निकाला कि ''प्राचीनतम वैदिक काल से ही राजाओं और ब्राह्मणों दोनों में 'राम' नाम प्रचलित था।''[4]

'शतपथ ब्राह्मण' और 'छांदोग्य उपनिषद' में अश्वपति कैकय का उल्लेख मिलता है, जो केकय देश के राजा थे और उनकी विद्वता अद्वितीय थी, वे ब्राह्मणों को भी शिक्षा देते थे।

राजा जनक का प्रथम उल्लेख 'कृष्ण–यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण' में प्राप्त होता है। बाद में 'शतपथ ब्राह्मण' में जनक वैदेह का चार प्रसंगों में उल्लेख मिलता है। जनक के साथ–साथ याज्ञवल्क्य का भी उल्लेख चारों जगहों पर है। वे याज्ञवल्क्य को शिक्षा देते हुए चित्रित है और स्वयं ब्राह्मण है। जबकि वृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञ्वल्क्य जनक को शिक्षा देते हैं। 'शतपथ ब्राह्मण' के अतिरिक्त जनक का उल्लेख 'जैमिनी ब्राह्मण' और 'वृहदारण्यक उपनिषद' में भी

[4] कामिल बुल्के, रामकथा : उत्पत्ति और विकास, पृ. 3

होता है। इन पात्रों की अपेक्षा जनक का उल्लेख वैदिक साहित्य में अधिक होता है।

वैदिक साहित्य में सीता की चर्चा दो रूपों में होती है। एक सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी है, जिसकी चर्चा ऋग्वेद से लेकर वैदिक साहित्य के सारे स्थलों पर होती है। दूसरी सीता का परिचय 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' से प्राप्त होता है। जहाँ सीता सावित्री, सूर्य की पुत्री के रूप में अंकित है और उसमें सोम राजा का उपाख्यान भी विस्तार पूर्वक अंकित है। सीता का यह स्वरूप वैदिक साहित्य में इसके बाद कहीं वर्णित नहीं है। हालाँकि 'लांगल पद्धति' द्वारा सीता शब्द का उल्लेख वैदिक साहित्य में कई बार हुआ है। वाल्मीकि रामायण में सीता के जन्म की चर्चा जिस प्रकार की गई है, वह कृषि की अधिष्ठात्री देवी के ही अनुरूप है। इसलिए कामिल बुल्के का भी मानना है कि ''वाल्मीकि रामायण पर भी सीता, कृषि की अधिष्ठात्री देवी का प्रभाव पड़ा है। यद्यपि इसका रामायण में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है फिर भी अयोनिजा सीता के जन्म और तिरोधान के जो वृतांत मिलते हैं, वे सम्भवतः इस वैदिक सीता के व्यक्तित्व से प्रभावित है।''[5]

वैदिक साहित्य में वर्णित इन तमाम रामकथा के पात्रों की आपस में कोई संगति नहीं है। इन नामों का उल्लेख आवश्य है किन्तु रामकथा की कोई व्यवस्थित पद्धति या इन पात्रों की आपसी संगति नदारद है।

2.1.2 वाल्मीकि रामायण

ऐसा माना जाता है चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में वाल्मीकि ने रामकथा पर आधृत वहत् प्रबन्ध काव्य की रचना की, जिसमें आयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथा का वर्णन है। इसे 'आदिरामायण' कहा गया। रामकथा इससे पूर्व भी श्रुति पंरपरा में विद्यमान थी, परन्तु इसका व्यस्थित रूप पहले पहल 'आदि रामायण' से ही माना जाता है परन्तु परवर्ती समय में प्रचलित वाल्मीकि रामायण

[5] वही, पृ. 18

का रूप अलग है। जिसमें बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड को जोड़ा गया है। वाल्मीकि कृति इस प्रचलित रामायण के तीन पाठ है। –

"1 **दाक्षिणात्य पाठ** : गुजराती प्रिंटिंग प्रेस (बम्बई) निर्णय सागर प्रेस (बम्बई) तथा दक्षिण के संस्करण। यह पाठ अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित एवं व्यापक है।

2 **गौड़ीय पाठ** : गोरेसियो (पैरिस) तथा कलकत्ता संस्कृत सिरीज के संस्करण।

3 **पश्चिमोत्तरीय पाठ** : दयानंद महाविद्यालय (लाहौर) का संस्करण, जो आजकल साधु आश्रम होशियारपुर (पंजाब) से प्राप्त है।"[6]

इस प्रकार कामिल बुल्के ने इस प्रचलित रामायण के तीन पाठ बताए हैं, जिनमें पाठ की भिन्नता परिलक्षित होती है। इसका कारण है कि वाल्मीकि कृत रामायण प्रारम्भ में मौखिक रूप में प्रचलित था, जो कालांतर में भिन्न–भिन्न परम्पराओं के आधार पर स्थायी एवं लिखित रूप में प्रस्तुत हुआ। पाठों की इसी भिन्नता और समयावधि को ध्यान में रखकर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड परवर्ती रचना है। जिसे 'आदिरामायण' से जोड़ दिया गया है।

विद्वानों ने रामायण के रचनाकाल को दो हिस्सों में विवेचित किया है। एक वह समय जिसमें 'आदि रामायण' की रचना हुई, दूसरा वह जिसमें 'प्रचलित रामायण' लिखा गया। विभिन्न विद्वानों के मतों के विश्लेषण के आधार पर (एम. विंटरनित्स, एच. याकोबी, एम. मोनियेर विलियम्स, सी.वी. वैद्य, ए.ए. मैकडोनेल आदि) यह तय किया गया है कि 'आदिरामायण' चौथी शताब्दी ई. पूर्व की रचना है तथा प्रचलित रामायण दूसरी शताब्दी ई. की। वर्त्तमान समय में रामकथा सम्बन्धी जितने ग्रंथ उपलब्ध है, सबका आधार वाल्मीकि रामायण ही है।

---

[6] वही, पृ. 20

2.1.3 महाभारत

महाभारत रामायण के बाद की रचना है जिसमें न सिर्फ रामकथा का बल्कि वाल्मीकि कृत रामायण का भी संकेत मिलता है। महाभारत में रामकथा का उल्लेख चार स्थलों पर मिलता है। इन चार स्थलों में 'रामोपाख्यान' महत्त्वपूर्ण स्थल है, जहाँ रामकथा का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन चार महत्त्वपूर्ण स्थलों के अतिरिक्त लगभग पचासों स्थान पर रामकथा के पात्रों का उल्लेख उपमा के तौर पर हुआ है। युद्ध सम्बन्धी पर्वों में द्रोण पर्व में 14 बार रामकथा का उल्लेख मिलता है, वहीं भीष्म, कर्ण और शल्य पर्वों में कुल मिलाकर पाँच उल्लेख मिलता है। 'आरण्यक पर्व' में रामकथा का दो बार वर्णन है, किन्तु इसके अतिरिक्त भी रामकथा के पंद्रह संकेत मिलते हैं। नलोपाख्यान, रामोपाख्यान, सावित्री की कथा आदि ये सब 'आरण्यक पर्व' में सम्मिलित किए गए हैं। इसमें राम के अवतार की भी सूचना है।

'रामोपाख्यान' के अतिरिक्त 'आरण्यक पर्व' में राम की एक और कथा है, जिसमें भीम–हनुमान संवाद है। हनुमान भीम को रामकथा सुनाते हैं। ग्यारह श्लोकों में ही हनुमान भीम को वनवास से सीताहरण और फिर अयोध्या आगमन तक की कथा संक्षप में सुनाते हैं। इस पर्व में रामावतार और राम के 11000 वर्षों तक राज्य करने के उल्लेख हैं। यहाँ भी बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड की कथाएँ संयोजित नहीं है।

द्रोणपर्व तथा शांति पर्व की कथाएँ 'षोडशराखोपाख्यान' के अन्तर्गत मिलती है। 'द्रोणपर्व' में अभिमन्युवध के कारण शोक संतप्त युधिष्ठिर को धैर्य प्रदान करने के लिए व्यास 'षोडशराजोपाख्यान' सुनाते हैं इन्हीं सोलह राजाओं में राम भी एक राजा थे। इस 'षोडशराजोपाख्यान' के अन्तर्गत नारद राम की महिमा का वर्णन करते हुए अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्ध काण्ड तक की कथा सुनाते हैं। नारद ने इस प्रसंग में रामकथा से इतर रामराज्य की समृद्धि एवं राम की महिमा को अधिक महत्त्व दिया है। वनवास से लेकर अयोध्या आगमन तक की सारी कथा का वर्णन 10 श्लोकों में हैं, इससे अलग राम का अभिषेक, गुणों की उत्कृष्टता, रामराज्य में

दुष्टो का आभाव, राम का 11000 वर्षों का शासनकाल तथा उनकी मृत्यु आदि का वर्णन 21 श्लोकों में हैं।

'शांतिपर्व' में कृष्ण युधिष्ठिर को 'षोडशराजोपाख्यान' सुनाते हैं 'शांतिपर्व' में सिर्फ रामराज्य और राम की महिमा का वर्णन किया गया है। वनवास का प्रसंग यहाँ भी है। शांतिपर्व में शम्बूक वध का भी वर्णन है। महाभारत के इन पर्वों में राम के अवतार–स्वरूप की चर्चा नहीं है, किन्तु 'आरण्यक पर्व' में तीन स्थानों पर रामावतार का स्पष्ट उल्लेख है। जिसका उदाहरण भीम–हनुमान संवाद एवं 'आरण्यक पर्व' का अंतिम अध्याय है। जिसमें विष्णु के दशरथ के घर में रहकर रावण के वध की बात की गई है। यह राम के अवतार रूप का सूचक है।

महाभारत के अन्तर्गत 'रामोपाख्यान' रामकथा का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है, जिसमें द्रोपदी के हरण एवं पुनः प्राप्त करने के उपरांत अपने दुर्भाग्य पर शोकाकुल युधिष्ठिर कहते हैं कि 'मुझसे भी कोई अधिक अभागा है'? इस पर मार्कण्डेय राम का उदाहरण देकर युधिष्ठिर को धैर्य बँधाने का प्रयास करते हैं और 'रामोपाख्यान' सुनाते हैं। 'रामोपाख्यान' मूलतः एवं अंशतः वाल्मीकि रामायण पर ही आश्रित है, जो उसका स्वतंत्र एवं संक्षिप्त रूप है।

2.1.4 बौद्ध साहित्य

बौद्ध साहित्य भारतीय ज्ञान परम्परा का महत्त्वपूर्ण स्रोत है, जिसका प्रभाव न सिर्फ भारत में बल्कि दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में भी वृहत्तर रूप में पड़ा। बौद्धों की जातक–कथाओं में रामकथा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। ये जातक कथाएँ गौतम बुद्ध के विभिन्न रूपों (पशु, पक्षियों, मनुष्य) में अवतरित कई जन्मों की कहानियाँ हैं, जिसे बौद्ध धर्मोपदेशक जनता को धर्म के प्रचारार्थ सुनाया करते थे। इन्हीं में राम से भी जुड़ी कथाएँ है। रामकथा मूलरूप से तीन जातकों में उल्लिखित है।

(1) दशरथजातकम्   (2) अनामकं जातकम्   (3) दशरथ कथानकम्

इनमें 'दशरथजातकम्' प्रमुख है। यह 'जातकट्ठवण्णना' में पाया जाता है, जो पाँचवीं शताब्दी ई. की एक सिंहली पुस्तक का पाली अनुवाद है।

'जातकट्ठवण्णना' के अन्तर्गत 'दशरथजातकम्' में रामकथा के दो रूप है। एक 'वर्त्तमान कथा' है, दूसरा 'अतीत कथा' है। वर्त्तमान कथा में किसी गृहस्थ का पिता मर जाता है। इस पर शोकग्रसित होकर वह अपना सारा कर्तव्य छोड़ देता है। यह जानकर बुद्ध उसे दशरथमरण का प्रसंग सुनाते हैं, जिसमें राम के अभूतपूर्व धैर्य को दर्शाया गया है। वे कहते हैं कि पंडित लोग अपने पिता की मृत्यु पर शोक नहीं करते हैं।

'अतीतकथा' में दशरथ को वाराणसी का राजा बताया गया है। जिनकी बड़ी रानी की तीन संताने थी। राम, लक्ष्मण और सीता। इस रानी की मृत्यु के बाद राजा ने दूसरी रानी को ज्येष्ठ बनाया। जिससे भरत कुमार का जन्म हुआ। राजा ने उसी अवसर पर उसे वर माँगने को कहा, जिसे रानी ने बाद में माँगने की बात कही। जब भरत की अवस्था 7 वर्ष की हुई तो रानी ने पुत्र के लिए राज्य माँगा। जिसे राजा ने इनकार कर दिया। लेकिन रानी द्वारा बार–बार अनुरोध किए जाने के कारण राजा ने षड्यंत्र के भय से, पुत्री को वन में जाकर रहने को कहा। दोनो भाई के साथ सीता भी वन गई। तीनों हिमालय चले गए और आश्रम बनाकर रहने लगे।

नौ वर्ष बाद दशरथ पुत्र शोक से चल बसे। रानी द्वारा भरत को दिए गए राजा बनने के प्रस्ताव को ठुकराने के बाद भरत चतुरंगिनी सेना लेकर राम को मनाने वन जाते हैं। आश्रम के बगल में सेना को छोड़ कुछ लोगों के साथ राम से मिलते हैं और उनसे लौट चलने का आग्रह करते है। परन्तु राम पिता की आज्ञा पालन की बात कहकर अपनी 'तृणपादुका' भरत को देकर विदा कर देते हैं। वनवास से लौटकर राम अपनी बहन सीता से विवाह करते हैं, और 16000 वर्षों तक राज्य करते हैं। अंत में स्वर्ग चले जाते हैं। बौद्ध कथावाचक इसे गौतमबुद्ध के परिवार एवं जीवन से जोड़कर इस कथा को सुनाते हैं।

'अनामकं जातकम्' में किसी भी पात्र के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है, परन्तु राम और सीता का वनवास, सीतहरण, जटायु का वृतांत, बालि और सुग्रीव का युद्ध, सेतुबन्ध, सीता की अग्निपरीक्षा आदि के संकेत मिलते हैं। 'दशरथ जातकम्' से इसमें कुछ भिन्नता परिलक्षित होती है। जिसमें राम का वनवास विमाता द्वारा पिता की आज्ञा से न होकर अपने मामा द्वारा आक्रमण की सूचना से स्वेच्छा वश राज्य छोड़ने का उल्लेख है। बालि वध का वृतांत बदला हुआ है, जिसमें बालि राम द्वारा धनुष चढ़ाते हुए देखते ही भाग खड़ा होता है।

'दशरथ कथानकम्' में सीता का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। दशरथ जम्बूद्वीप के राजा हैं, जिस समय मनुष्य की आयु कम से कम 11000 वर्ष होती थी। उनकी चार रानियाँ थी और उन्हीं चारों रानियों के पुत्र क्रमशः राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न थे। तीसरी रानी से प्रसन्न राजा ने उससे कोई वर माँगने को कहा। राजा जब बीमार पड़े तो उन्होंने राम का राज्याभिषेक करवाया। उसी वक्त रानी ने राजा से अपने पुत्र के राज्याभिषेक का वर माँगा। राजा ने वचन निभाया और दोनों पुत्रों राम और लक्ष्मण को वन भेज दिया। आगे 'दशरथ जातकम' से ही मिलती–जुलती कथा है। भरत का राम को मनाने जाना, पादुका लेकर लौटना, वनवास की अवधि व्यतीत कर राम का वापस आना और राज्य करना वर्णित है।

इनके अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में 'लंकावतारसूत्र', 'खोतानी रामायण', 'राम जातक' और 'ब्रह्म चक्र' में रामकथा के संकेत मिलते हैं।

2.1.5 जैन साहित्य

बौद्ध साहित्य के अतिरिक्त जैन–साहित्य में भी रामकथा का उल्लेख मिलता है। जैन–धर्मावलम्बियों ने रामकथा के पात्रों को धर्म में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। राम, लक्ष्मण और रावण न सिर्फ जैन धर्मावलम्बी है, बल्कि 'त्रिषष्टि' महापुरुषों में भी उन्हें स्थान मिला है। यह 'त्रिषष्टि' एक प्रकार का चक्रीय कालक्रम है, जिसमें 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 बलदेव और 9 प्रतिवासुदेव का जन्म होता है। इन्हें 'शलक पुरुष' भी कहा जाता है। इनका श्रेणी विभाजन उस पात्र द्वारा पूर्व

जन्म में किए गए पाप या पुण्य पर आधृत होता है। विभिन्न प्रकार के तप एवं उपासना द्वारा ही किसी को उच्चतम पद प्राप्त होता है।

इस जैन परम्परा में राम को बलदेव, लक्ष्मण को वासुदेव और रावण को प्रतिवासुदेव माना गया है। प्रत्येक बलदेव के समकालीन एक वासुदेव एवं उसका प्रतिद्वंद्वी प्रतिवासुदेव होता है। वासुदेव अपने बड़े भाई बलदेव के साथ मिलकर प्रतिवासुदेव से युद्ध कर उसका वध करता है, और इसी कारण वासुदेव नरक में जाता है। अनुज के शोक में दग्ध बलदेव जैन धर्म की दीक्षा लेकर अंततः मोक्ष को प्राप्त करता है। जैन रामायण की सम्पूर्ण रामकथा इसी सिद्धान्त पर आश्रित है। लक्ष्मण वासुदेव, बड़े भाई राम बलदेव के साथ मिलकर प्रतिवासुदेव से युद्ध करके उसका वध करता है और इसी कारण वासुदेव नरक में जाता है। अनुज के शोक में दग्ध बलदेव जैन धर्म की दीक्षा लेकर अंततः मोक्ष को प्राप्त करता है। जैन रामायण की सम्पूर्ण रामकथा इसी सिद्धान्त पर आधारित है। जैन रामायण में लक्ष्मण नरकगामी बनते हैं, क्योंकि जैन धर्म में हिंसा का कोई स्थान नहीं है। यहाँ सीता का हरण भी सीता के पूर्व जन्मों का कर्म बताया गया है, जिसमें रावण की गलती नहीं है बल्कि सीता के ही कर्म बुरे थे, जिसके कारण उसका हरण हुआ।

जैन रामायण में रामकथा की दो धाराएँ मिलती है। एक विमलसूरि कृत 'पउमचरियं' जिसकी परम्परा स्वयंभू के 'पउमचरिउ' तक दिखाई देती है। दूसरी गुणभद्र कृत 'उत्तरपुराण' की परम्परा है। विमलसूरि ने राम को 'पद्म' कहा है, जिसे अपभ्रंश में 'पउम' कहते हैं। इसी आधार पर उन्होंने ग्रंथ का नाम 'पउमचरियं' रखा है। विमलसूरि ने समस्त कथानक को 6 भागों में बांट दिया है।

(1) रावणचरित

(2) राम और सीता का जन्म एवं विवाह

(3) वन भ्रमण

(4) सीता हरण और खोज

(5) युद्ध

(6) उत्तरचरित

इस प्रकार कथा को छः पर्वों में विभाजित किया गया है।

'रामकथा' का दूसरा रूप गुणभद्र के 'उत्तरपुराण' में मिलता है। गुणभद्र के रामायण में दशरथ वाराणसी के राजा थे। जिनके चार पुत्र थे। राम सुबाला के पुत्र थे। भरत और शत्रुघ्न किसी अन्य रानी के पुत्र थे। सीता इसमें रावण और मंदोदरी की पुत्री बताई गई है। बालि और रावण दोनों का वध लक्ष्मण करते हैं। सेतुबंध की जगह यहाँ सेना विमान द्वारा लंका पहुँचाई जाती है। इसमें राम की 8000 और लक्ष्मण की 16000 रानियाँ बताई गई है। सीता और राम के आठ पुत्र होते हैं। इसमें सीता त्याग का प्रसंग सम्मिलित नहीं है। यहाँ भी लक्ष्मण रावण वध के कारण नरकगामी होते हैं। इन दोनों रामकथाओं में विमलसूरि का 'पउमचरियं' अधिक प्रसिद्ध है।

इस प्रकार जैन रामकथा में अंततः जैन धर्म के आदर्शों के अनुसार ही रामकथा को पिरोया गया है। सारी कथा जैन मतों एवं तीर्थंकरों की महत्ता को ही प्रतिपादित करता है।

* *रामकथा के आदि स्रोतों के तथ्य कामिल बुल्के की पुस्तक रामकथा उत्पत्ति और विकास पर आद्धृत है।*

2.2 रामकथा के मध्ययुगीन स्रोत

रामकथा के जिन आदिस्रोतों पर हमने पीछे बात की है उनके वाल्मीकि कृत रामायण सबसे महत्त्वपूर्ण एवं आधार सामग्री है। वाल्मीकि कृत 'आदि रामायण' हो या ईसा बाद की प्रचलित रामायण, भारतीय एवं वैश्विक रामकथा के प्रसार का यह महत्त्वपूर्ण आधार ग्रंथ है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि रामकथा अपने प्रारम्भिक काल से ही आम जनजीवन में काफी लोकप्रिय रहा है। जिसकी लोकप्रियता एवं उसके कारणों पर हम आगे विचार करेंगे, परन्तु रामकथा की लोकप्रियता के वशीभूत ही भारतीय भाषाओं एवं विदेशी भाषा के रचनाकारों ने रामकथा की सृष्टि की। जिन आदि स्रोतों पर हमने विचार किया है, उनके

अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में भी प्रचुर रामकथाएँ लिखी गई। हिन्दी में लगभग 11, मराठी में 8, बंग्ला में 25, तमिल में 12, तेलुगु में 12, उड़िया में 6 रामकथाएँ लिखी गई। इसके अतिरिक्त संस्कृत गुजराती, मलयालम, कन्नड़, असमिया, उर्दू, अरबी, फारसी आदि भाषाओं में भी रामकथा की रचना हुई। इतना ही नहीं कालिदास, भास, भट्‌ट, प्रवरसेन, क्षेमेंद्र, भवभूति, राजशेखर, सोमदेव, नारद, लोमेश, मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, गुरू गोविंद सिंह आदि चार सौ से अधिक विद्वानों, एवं संतों ने अलग–अलग भाषाओं में इस कथा को आधार बनाकर काव्य की रचना की। रामायण के संख्या की बात करें, तो 'रामायण सत कोटि अपारा' वाली बात है। छोटी–छोटी भाषाओं एवं समुदायों के द्वारा हजार रामायण लिखे गए होंगे, किन्तु कुछ प्रमुख भारतीय एवं विदेशी रामायणों की सूची निम्नलिखित है।

संस्कृत

वाल्मीकि रामायण

योगवसिष्ठ या वशिष्ठ रामायण

आध्यात्म रामायण

आनंद रामायण

अगस्त्य रामायण

अद्‌भुत रामायण

हिन्दी

रामचरितमानस (मूल अवधि)

राधेश्याम रामायण

पउमचरियं (जैन रामायण – अपभ्रंश)

उड़िया

जगमोहन रामायण या दांडि रामायण या उड़िया रामायण

विशि रामायण,	रघुनााथ विलास,
सुचित्र रामायण,	बैदेही विलास,
कृष्ण रामायण	नृसिंह पुराण,
केशव रामायण,	रामरसामृत सिंधु,
रामचन्द्र बिहार,	रामरसामृत,
रामलीला,	बाल रामायण,

बिलंका रामायण।

तेलुगु	**कन्नड़**
भास्कर रामायण	कुमुदेंदु रामायण
रंगनाथ रामायण	तोरवे रामायण
रघुनाथ रामायणम्	रामचन्द्र चरित पुराण
भोल्ल रामायण	बत्तलेश्वर रामायण
असमिया	**बांग्ला**
कथा रामायण	कृतिवास रामायण
मराठी	**गुजराती**
भावार्थ रामायण	रामबालकिया
पंजाबी	**कश्मीरी**

रामावतार या गोविंद रामायण, रामावतारचरित

मलयालम **तमिल**

रामचरितम् कम्ब रामायण

इसके अतिरिक्त मंत्र रामायण, गिरिधर रामायण, चम्पू रामायण, आर्य रामायण, चंदा झा कृत मैथिली रामायण आदि भारतीय भाषाओं में उपलब्ध रामायण है।

विदेशी भाषाओं में जो रामायण लिखे गए हैं उनमें कुछ निम्नलिखित है –

नेपाली **कंबोडिया**

भानुभक्त कृत रामायण रामकर रामायण

सुंदरानंद रामायण **तिब्बत**–तिब्बती रामायण

आदर्श राघव

पूर्वी तुर्किस्तान **इंडोनेशिया**

खोतानी रामायण ककबिन रामायण

जावा **इंडोचाइना**

सेरतराम रामायण रामकेर्ति (रामकीर्ति)

सैरीराम खमैर रामायण

रामकेलिंग **बर्मा**

पातानी रामकथा यूतोकी रामयागन

थाईलैंड

रामकियेन

इसके अतिरक्त यह माना जाता है कि ग्रीस कवि 'होमर' का प्राचीन काव्य 'इलियड' और रोम के कवि 'नोनस' की कृति 'डायोनीसिया' से रामकथा की समानता है। इन तमाम रामकथाओं में अपने लोकजीवन की मधुर मिठास व्याप्त है, जो इस रामकथा को व्यापकता प्रदान करता है।

2.3 रामकथा की लोकाभिरुचि एवं स्वरूप

चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में वाल्मीकि ने जब 'आदि रामायण' की रचना की, तो उसमें केवल अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की ही कथा वर्णित भी, लेकिन यही 'आदि रामायण' दूसरी शताब्दी ई. तक आते–आते प्रचलित रामायण के रूप में प्रकट हुआ और उसमें बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड की भी कथाएँ जोड़ दी गई। कहने का अर्थ यह कि रामकथा का यह स्वरूप कैसे निर्मित हुआ? रामकथा के विस्तार के कारण क्या थे? जाहिर है लोकाभिरुचि ने ही इसे व्यापकता प्रदान की और इसका स्वरूप परिवर्तित होता गया।

पीछे आदि स्रोतों पर बात करते हुए हमने देखा कि रामकथा वाल्मीकि से पूर्व भी मौखिक एवं श्रुति परम्परा में विद्यमान थी। परन्तु वाचन से लेखन तक का व्यवस्थित रूप वाल्मीकि के माध्यम से ही संपन्न हुआ। वाल्मीकि रामायाण का यह रूप कई शताब्दियों तक स्थित न रहकर मौखिक रूप में ही प्रचलित रहा। मौखिक परम्परा के कथावाचक या गायक अपने श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखकर उसके लोकप्रिय अंशों को बढ़ाने एवं कथानक में नवीन सामग्री का सृजन करने लगे। जैसे–जैसे जनता की रसानुभूति बढ़ती गई, इन कुशीलवों ने कथानक में अद्भुत रस की सृष्टि प्रारम्भ कर दी। कथा वाचन की इस मौखिक परम्परा से नई कथा की सृष्टि हुई, जिसका आत्मसातीकरण व्यापक रूप से हुआ। कथाओं के मध्य, उपकथाओं का सृजन होता गया। ऐसा माना जाता है कि स्वर्ण–मृग का वृतांत, लंकादहन, हनुमान का धौलागिरी पर्वत लाना, सीता की अग्नि–परीक्षा आदि इसी तरह के प्रक्षिप्त अंश है, जो श्रोताओं की रुचि के अनुसार रामकथा में जोड़े गए। जब राम से जुड़ी यह कथा थी, तो फिर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक था कि जब राम थे, तो उनका परिवार भी होगा? माता–पिता सगे सम्बन्धी भी होंगे। सीता

कौन थी? राम और सीता का जन्म एवं विवाह किस प्रकार हुआ? वनवास प्रत्यागमन के बाद दोनों का जीवन कैसा बीता? दोनो की संताने कि कितनी थी? आदि प्रश्न सामने आए। जनता की इसी जिज्ञासा को तुष्ट करने के लिए कथावाचकों ने बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड की सृष्टि कर ली।

सैकड़ों वर्षों तक रामकथा भी यह परम्परा देश–विदेश में प्रचारित होती रही।

रामकथा की जो धारा वैदिक संस्कृत से चली थी, वह अन्य लोक भाषाओं में फैली ही, साथ ही साथ विदेशी भाषाओं में भी प्रसारित हुई। देश–विदेशी कथा के प्रसार का एक कारण धार्मिक था दूसरा सांस्कृतिक विनिमय। व्यापार के सिलसिले में देश–विदेश जाने वाले व्यापारियों के साथ भी कथा का प्रचार–प्रसार हुआ और बहुत कुछ स्थानीय संस्कृति के समावेश के साथ यह स्थापित हो गया।

इसकी लोकप्रियता हर भाषा में दिनानुदिन बढ़ती गई। जिसका सर्वप्रथम कारण यह था कि यह रामकथा जनता के सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक जीवन को तुष्ट करती थी। जाहिर है यह धीरे–धीरे सभी भाषाओं में मौखिक से लिखित रूप में अभिव्यक्त हुई। आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा के प्रथम प्रयोक्ता तमिल महाकवि कम्बन हैं, जिन्होंने बारहवीं शताब्दी में रामकथा की रचना की। उसके पश्चात तेलुगु का 'द्विपद रामायण (तेरहवीं शताब्दी)', मलयालम का 'रामचरितम (चौदहवीं शताब्दी)', असमिया का 'माधवकंदली रामायण (चौदहवीं शताब्दी)', बंग्ला 'कृतिवास रामायण (पंद्रहवीं शताब्दी)', कन्नड़ का 'तोरबे रामायण (सोलहवीं शताब्दी)', अवधी का 'रामचरितमानस (सोलहवीं शताब्दी)', उड़िया का 'बलरामदास रामायण (सोलहवीं शताब्दी)', मराठी का 'भावार्थ रामायण (सोलहवीं शताब्दी)' तेलुगु का 'मोल्ल रामायण (सत्रहवीं शताब्दी)', कश्मीरी का 'रामावतारचरितम् (अठारहवीं शताब्दी)' आदि लिखे गए। विभिन्न भारतीय भाषाओं में रचित इन रामकथाओं के प्रभूत लेखन से ही इस कथा का अंदाजा लगाया जा सकता है।

रामकथा की लोकप्रियता का प्रभाव न सिर्फ सामाजिक जीवन पर पड़ा बल्कि विभिन्न धर्मों पर भी इसका व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है।, बौद्धों एवं

जैनियों ने भी राम को अपने धर्म में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। रामकथा भारतीय संस्कृति में इस प्रकार व्याप्त हो गई कि उस समय के प्रचलित तीनों धर्मों ने उसे स्थान दिया चाहे हिंदू धर्म में विष्णु के रूप में हो, बौद्ध धर्म में बोधिसत्व के रूप में हो या फिर जैन धर्म में आठवें बलदेव के रूप में। हालांकि इसका स्वरूप धार्मिक से ज्यादा साहित्यिक रहा है। कामिल बुल्के भी मानते हैं कि भारतीय एवं भारत के निकटवर्ती देशों के ललित साहित्य में इसकी व्यापकता अधिक है। साहित्य का यह स्वरूप आगे चलकर रामलीला में परिणत हो गया, जो रामकथा के प्रचार–प्रसार का प्रभावी माध्यम था।

2.3.1 रामलीला का उद्‌भव, प्रसार एवं स्वरूप

12वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी के मध्य प्रभूत रामकथाएँ लिखी गई। वाचन की परम्परा से रामकथा का लेखन महत्त्वपूर्ण हो गया। कथा का प्रसार एवं उसकी व्याप्ति हर वर्ग तक हो इसके लिए नए माध्यमों की तलाश हुई। फलतः रामलीला की संकल्पना साकार हुई। रामकथा के अभिनय की परम्परा हालांकि 'हरिवंश पुराण' से ही मिलती है, जो बाद में 'हनुमन्नाटक' से होती हुई अन्य भारतीय भाषाओं तक पहुँचती है। चाहे गुजराती में 'भवाई का रामवेश' हो या फिर महाराष्ट्र के 'ललित' में रामकथा की परम्परा, असम और बंगाल की 'रामजात्रा' हो या पंजाबी का 'आसा दी वार' सबने रामलीला की पंरपरा को पुष्ट किया।

ऐसा माना जाता है कि हिन्दी प्रदेश में पहले–पहले रामलीला की विधिवत शुरुआत तुलसीदास ने की। उन्हीं की प्रेरणा से काशी में पहली बार रामलीला की प्रस्तुति हुई। अवध, काशी और मिथिला इसके प्रधान केंद्र थे, जहाँ अश्विन भर इसकी प्रस्तुति होती थी। इसके अतिरिक्त प्रयाग, राजपूताना, मथुरा, वृंदावन, गोकुल, आगरा, अलीगढ़, मैनपुरी, एटा, इटावा, फर्रूखाबाद, शाहजहाँपुर, कानपुर में भी इसका प्रचार–प्रसार था। यह दक्षिण में बरार, मैसूर और रामेश्वरम् तक प्रसिद्ध था।

भक्तिकाल के पश्चात रीतिकाल में श्रृंगार की प्रधानता ने इसे शिथिल अवश्य किया, परन्तु आधुनिक काल में यह पुनः धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधि के रूप में स्थापित हुआ। यह आज भी ग्रामीण जनता की धार्मिक सांस्कृतिक एवं नाट्य वृत्तियों की पोषक बनी हुई है। इसका प्रदर्शन दशहरा एवं रामनवमी के अवसर पर व्यापक रूप से होता है। धनुष यज्ञ के दृश्य, सीता–स्वयंवर, परशुराम–लक्ष्मण संवाद, लक्ष्मण–मेघनाद युद्ध, राम–कुंभकरण–रावण युद्ध, भरत–मिलाप तथा राम का राज्याभिषेक आदि इसके प्रमुख दृश्य होते हैं। जिसका अभिनयकर्त्ता काफी कुशलता से करता है। इसमें वीर, करुण, अद्‌भुत, भयानक, श्रृंगार आदि रसों की प्रधानता रहती है। इसमें दो तरह का रंगमंच होता है। एक रंगमंच विस्तृत खुला मैदान होता है, उसे कथा से जुड़ी किसी जगह का नाम दे दिया जाता है। जैसे रामनगर की रामलीला। दूसरा चौकियों एवं लकड़ियों का रंगमंच बनाया जाता है और सम्पूर्ण लीला उसी स्थान पर संपन्न होती है तथा जनता सामने बैठकर देखती है। इस रामलीला के अभिनय में हर आयु वर्ग के लोग भाग लेते हैं और स्त्री का अभिनय भी पुरुष पात्र ही करते हैं।

रामलीला चूंकि धार्मिक नाट्यरूप है, इसलिए उसकी संकल्पना भी उसी रूप में होती है। रामलीला करवाने वाले से लेकर दर्शक तक सभी धार्मिक भावनाओं से ओत–प्रोत रहते हैं। पात्रों की कल्पना भी ईश्वरीय रूपों में ही की जाती है। रामलीला के आरंभ का मुकुट पूजन इसी ईश्वरीय आस्था की प्रतिष्ठा है, जिसे कलाकार पूरी निष्ठा से निभाता है। प्रत्येक दिन की लीला में होने वाली आरती का जो चढ़ावा होता है, वहीं आर्थिक स्रोत होता है। आयोजन के अंतिम दिन पूरी नियम–निष्ठा के साथ राम–सीता एवं अन्य पात्रों की झाँकी का नगर भ्रमण कराया जाता है और जनता भगवत भक्ति से उसका स्वागत करती है।

रामलीला का प्रभाव यह होता है कि जिस नगर या मुहल्ले में इसका आयोजन होता है, वहाँ की जनता इस अनुष्ठान से अपना एकाकार स्थापित कर लेती है। नाटकीय दृश्यों में भी जनता की भावपूर्ण सहभागिता होती है। चाहे बारात का दृश्य हो या रामवनगमन का, जनता अपने आप को उस दृश्य का सहभागी समझती है। प्रत्येक दृश्य के अनुसार जनता की मनोदशा परिवर्तित होती

रहती है। इतना ही नहीं रामलीला के दौरान उसे क्षेत्र विशेष में किसी प्रकार की अनैतिक घटना न के बराबर होती है।

रामलीला की एक प्रमुख विशेषता है उसका कथागान एवं काव्याधारित संवाद, जिसके कारण दर्शक रसमग्न रहता है। मानस का पाठ प्रचलित रामलीलाओं का अनिवार्य पाठ है। पारंपरिक रामलीलाओं में इसका सम्पूर्ण पाठ होता है, परन्तु संवाद आधारित रामलीलाओं में बीच–बीच में पदों का गायन कर कथा को गतिशीलता प्रदान की जाती है।

रामलीला के सभी कलाकार मूलतः अव्यवसायिक होते हैं। जैसा कि विदित है, यह एक धार्मिक अनुष्ठान की तरह प्रदर्शित होता है, इसलिए रामलीला में अभिनय को गौरव का विषय समझा जाता है। ये कलाकार पूरी निष्ठा से इस भाव का वहन करते हैं। चढ़ावा प्रमुख आर्थिक स्रोत होता है।

इस प्रकार रामलीला का यह स्वरूप लोकजीवन की सहज, स्वाभाविक एवं संगीतमयी अभिव्यक्ति है, जो न सिर्फ लोक जीवन को धार्मिक संबल प्रदान करती है, बल्कि उनके दैनिक जीवन के तापों एवं सामाजिक तथा मानसिक विकारों से भी मुक्त करती है।

2.3.2 लोकप्रियता का कारण एवं वर्त्तमान स्वरूप

भारतवर्ष के पारंपरिक नाट्य रूपों में रामलीला ही ऐसी विधा है, जिसका क्षेत्र विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं है। रामलीला क्षेत्र विशेष से परे व्यापक रूप में प्रदर्शित होती है। चाहे हिन्दी भाषी प्रदेश हो या फिर गैर हिन्दी प्रदेश प्रत्येक जगह रामनवमी या फिर दशहरे के अवसर पर यह प्रदर्शित होती है। इनमें क्षेत्रीय विविधता के बाद भी एकरूपता है। इसकी लोकप्रियता का प्रमुख कारण है। इसका दृश्य एवं श्रव्य होना। कथा की अपनी रसमयता तो है ही लेकिन जब कथा प्रत्यक्ष दृश्य के माध्यम से उपस्थित हो जाती है, जो जनता उस अलौकिक एवं काल्पनिक ईश्वरीय प्रतिरूप का साक्षात दर्शन इन रामलीलाओं के माध्यम से

करती है। बारहवीं शताब्दी में भक्ति–आन्दोलन के प्रादुर्भाव के पश्चात उत्तर भारत में रामलीला की परम्परा पर धार्मिकता का आवरण चढ़ता चला गया। यह लीला जितनी ईश्वरीय लीला है, उतनी ही लोकजीवन की लीला है। इन रामलीलाओं में लोक अपना आदर्श जीवन देखता है और राम के आदर्श पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की परिकल्पना को अपने जीवन में साकार करना चाहता है।

जैसा कि कहा जा चुका है इस रामलीला की शुरुआत धार्मिक दृष्टिकोण से हुई थी, जिसका उद्देश्य धर्म का भी प्रचार–प्रसार करना था। प्रारम्भिक दिनों से लेकर सैकड़ों वर्षों तक यह समाज के बड़े हिस्से को धार्मिक एवं नैतिक रूप से तुष्ट करता रहा है, जिसका और कोई अन्य व्यवसायिक उद्देश्य नहीं था। परन्तु जैसे–जैसे साधनों का विकास होता गया, सामाजिक जीवन एवं संरचनाओं में बदलाव आता गया, वैसे–वैसे रामलीला का स्वरूप भी बदलता चला गया। आरंभिक दिनों में भले साधनहीनता की स्थिति थी, परन्तु वहाँ लोकजीवन का आजस्र भाव विद्यमान था। जैसे–जैसे जनता की भावना में बदलाव होता गया, रामलीला सामाजिक से व्यावसायिक होता चला गया। जो रामलीला एक सामाजिक कर्म था, वह व्यक्तिगत व्यवसाय में परिणत हो गया। नए दौर के दर्शकों की रुचि में परिवर्तन के कारण रामलीला का स्वरूप एवं भाव दोनों परिवर्तित हो गया रामलीला की इसी वर्त्तमान स्थिति पर टिप्पणी करते हुए 'अज्ञेय' कहते हैं ''लोक–सम्पृक्त रामलीला पूरा समाज जीता था और उससे लीला के द्वारा उसके आगे–पीछे, समाज उस साहित्य की ओर लौटता था – रामायण पढ़ी–सुनी जाती थी और लोगों की जबान पर रहती थी। अभिनीत रामलीला–नाटक लोगों को साहित्य की ओर नहीं लाता, वह नाटक देखा जाकर चुक जाता है। तुलसी का रामचरितमानस सचमुच लीलाकाव्य था। अभिनीत रामायण के नाटक का केवल एक 'स्क्रिप्ट' होता है जिसका मूल्य नट–सूत्रधार निर्देशक के लिए तो हो सकता है, दर्शक मण्डली के लिए नहीं। इस प्रकार जैसे–जैसे पुरानी रामलीला 'नए रामायण नृत्य–नाट्य' में पुनरुज्जीवित हो रही है, वैसे–वैसे रामायण लोक जीवन से छिनती जा रही है, मरती जा रही है।''[7] दशरथ

[7] तुलसीदास एक पुनर्मूल्यांकन, संपा. अजय तिवारी, पृ. 260

के दरबार में नर्तकी की फिल्मी गीत पर नाचना हो या मेघनाद का मोटरसाइकिल से रंगमंच पर प्रस्तुत होना, सीता–राम का उन्मुक्त फिल्मी अंदाज में प्रणय निवेदन हो, या फिर शूर्पणख का प्रेम–प्रस्ताव रखना, इन सारी परिस्थितियें ने रामलीला की नैतिकता को फूहड़ता में परिणत कर दिया। जो जनता रामलीला के दौरान अपने आप को कभी जनकपुर की प्रजा समझकर राम का सत्कार दामाद की तरह करती थी, और वनगमन के समय अश्रुपूरित नेत्रों से विदाई करती थी, वही जनता आज वनगमन को उत्सव की तरह देखकर प्रसन्न हर इसमें कतई संदेह नहीं है। जाहिर है इन सारी परिस्थितियों का जिम्मेदार बढ़ती हुई व्यवसायिकता है, जिसने न सिर्फ रामलीला के स्वरूप को परिवर्तित किया है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का भी क्षरण किया है। शहरों में रामलीला के इस दूषित स्वरूप के इतर आज भी गाँवों में रामलीला जनता के मनोविनोद एवं उसकी रुचि का परिष्कार करती है। हालाँकि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया खासकर टेलीविजन पर रामकथा के प्रसारण ने रामलीला की परम्परा को प्रभावित अवश्य किया है किन्तु यह आज भी अपने कुछ स्वरूप परिवर्तन के साथ समाज में विद्यमान है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के दौर में इसकी प्रासंगिकता को सुरक्षित रख पाना भी चुनौतीपूर्ण कार्य है। रामलीला की इसी आधारभूत संरचना ने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को धारावाहिक एवं फिल्म के रूप में आधार प्रदान की।

2.4 धारावाहिक रामायण से पूर्व रामकथा का सिनेमाई रूपान्तरण

मशीनी पुनरुत्पादन का दौर जैसे–जैसे बढ़ता गया, कलाओं का भी रूपान्तरण सरल एवं सुबोध हो गया। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया खासकर रेडियो, टेलीविजन एवं फिल्मों ने कला के क्षेत्र में क्रांति का सूत्रपात किया। इन माध्यमों द्वारा आरंभ में परम्परा एवं संस्कृति का ही पुनरुत्पादन प्रारंभ हुआ, क्योंकि तब इसी प्रकार के ग्रंथ सुलभ थे एवं जनता की रुचि भी इसी प्रकार की थी। चाहे सत्य हरिश्चन्द्र से भारतीय सिनेमा ने शुरुआत की हो, या फिर टेलीविजन के आरंभिक दौर में

रामायण एवं महाभारत जैसे धारावाहिकों के प्रसारण हुआ हो। ये सारे प्रसारण जन–भावना के ही प्रीत्यर्थ थे।

रामकथा से जुड़ी फिल्म और धारावाहिक रूपान्तरण रामकथा का ही सरलीकृत रूप एवं विस्तार था, जहाँ जनता को किसी प्रकार का बौद्धिक एवं काल्पनिक श्रम नहीं करना पड़ता था, सारी घटनाएँ मूर्त रूप में उपस्थित हो जाती थी। धारावाहिक एवं फिल्मों के ये कल्पनातीत दृश्य आम जनजीवन को सांसारिक तापों के शमन हेतु संबल प्रदान करते थे।

भारत में पहली बार रामकथा को आधार बनाकर 1917 ई. में दादा साहब फाल्के ने 'लंका दहन' नामक फिल्म बनाई थी। यह एक मूक फिल्म थी। इसकी कथा वाल्मीकि रामायण से ली गई थी। इसमें राम वनगमन से लेकर लंका दहन तक की कथा को चित्रित किया गया था। इस फिल्म में राम और सीता दोनों की भूमिका 'अन्ना सालुंके' ने ही निभाई थी। 'गणपत–शिन्दे' हनुमान की भूमिका में थे। इस फिल्म की लोकप्रियता का यह आलम था कि जब राम पर्दे पर दिखते तो जनता जूते उतारकर रख देती थी। टिकट काउंटर पर टिकट के लिए टॉस करना पड़ता था इतना ही नहीं टिकट के सिक्के बोरियों में भरकर बैलगाड़ी से निर्माता के यहाँ पहुँचाया जाता था।

1932 ई. में 'राम पादुका पट्टाभिषेकम' नामक तेलुगु फिल्म का निर्माण हुआ, जिसके निर्देशक 'सर्वोत्तम बादामी' थे। इसमें राम द्वारा भरत को चरण पादुका देने और भरत द्वारा उस पादुका को राम का प्रतीक मानकर चौदह वर्षों तक राज्य करने की कथा दिखाई गई है। 'यादवल्ली सूर्यनारायण' ने राम की भूमिका निभाई थी और 'सुरभि कमलाबई' ने सीता की भूमिका अदा की।

1934 में 'बाबूराव पेंढ़ारकर' के निर्देशन में 'प्रभात फिल्म कम्पनी' के बैनर तले 'सीथा कल्याणम' नामक तमिल फिल्म का निर्माण हुआ। धनुषयज्ञ की कथा को आधार बनाकर इस फिल्म का निर्माण किया गया था। इस फिल्म में 'एस. राजम' ने राम की भूमिका निभाई थी और 'एस. जयलक्ष्मी' सीता की भूमिका में थी।

1942 ई. में 'विजय भट्ट' ने हिन्दी भाषा में 'भरत–मिलाप' नामक फिल्म बनाई थी। इससे पूर्व 1943 ई. में 'विजय भट्ट' के निर्देशन में 'रामराज्य' नामक फिल्म बनी, जो 'वाल्मीकी रामायण' पर आधृत थी। यह हिन्दी भाषा की फिल्म थी। इस फिल्म के राम की प्रेरणा तत्कालीन गाँधीजी के रामराज्य से ली गई थी। स्वतंत्रता आन्दोलन का दौर था, जिसमें इस फिल्म के माध्यम से भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन को एक नई दिशा प्रदान करने की कोशिश की गई थी। यह पहली फिल्म थी, जिसका 'प्रीमियर' अमेरिका में किया गया था। 'प्रेम अदीब' राम की भूमिका में थे और 'शोभना समर्थ' सीता की भूमिका में थी। पुनः विजय भट्ट ने 1948 ई. में 'रामायण' नामक फिल्म बनाई। इसमें लगभग वही कलाकर थे। इस फिल्म में अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड एवं लंकाकाण्ड की कथाओं को आधार बनाया गया है। 1954 ई. में पुनः विजय भट्ट ने 'रामायण' नामक फिल्म बनाई, जो 'वाल्मीकि रामायण' पर आधृत थी। यह भी हिन्दी भाषा की फिल्म थी। इसमें भी 'प्रेम अदीब' राम की भूमिका में थे और 'शोभना समर्थ' सीता की भूमिका में थी। इस फिल्म में उत्तरराम की कथा को आधार बनाया गया है, और लव–कुश काण्ड को प्रमुखता दी गई है।

1944 ई. में 'जी. बालरमैया' ने 'सीताराम जनमम्' नामक फिल्म बनाई, जो तेलुगु भाषा की फिल्म थी। यह रामजन्म की कथा पर आधृत फिल्म थी, जो काफी सफल रही। इसकी सफलता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 'दुर्गाकला मंदिर' विजयवाड़ा में यह 100 दिनों तक हाउसफुल चलती रही। 'ए. नागेश्वर राव' ने राम की भूमिका निभाई थी, जो उनकी पहली फिल्म थी।

1945 ई. में 'कदारू नामभूषणम' ने 'पादुका–पट्टाभिषेकम्' नामक फिल्म बनाई, जो तेलुगु भाषा की फिल्म थी। इसमें रामवनगमन एवं भरत द्वारा राम की चरणपादुका माँगना तथा 14 वर्षों बाद राम के आयोध्या लौटने तक की कथा को आधार बनाया गया है।

1945 ई. में ही 'सर्वोत्तम बादामी' ने अपने निर्देशन में पूर्णिमा प्रोडक्शन के बैनर तले 'रामायणी' नामक फिल्म बनाई। यह हिन्दी भाषा की फिल्म थी। इस

फिल्म में 'पहाड़ी सान्याल' राम की भूमिका में थे और 'नरगिस' सीता की भूमिका में थी।

1951 ई. में 'रामजन्म' नामक हिन्दी फिल्म का निर्माण हुआ। जिसमें 'निरूपा राय', 'शोभना समर्थ' एवं 'त्रिलोक कपूर' ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अप्रैल 1958 ई. में के. सोमू के निर्देशन में 'एम.ए. वेणु' ने 'सम्पूर्ण रामायण' नामक फिल्म बनाई थी, जो तमिल भाषा की फिल्म थी। इसमें रामजन्म से लेकर अयोध्या प्रत्यागमन तक की कथा को दिखाया गया है। इस फिल्म में 'एन.टी. रामाराव' राम की भूमिका में थे और 'पद्मिनी' सीता की भूमिका में थी। शिवाजी गणेशन ने भरत की भूमिका निभाई थी और टी.के. भगवती रावण थे।

जनवरी 1961 ई. में एन.टी. रामाराव ने 'सीताराम कल्याणम्' नामक फिल्म बनाई। इसमें जन्म से लेकर परिणय तक की कथा को आधार बनाया गया है। 'हरिनाथ' ने राम की भूमिका निभाई है और 'गीतांजली' ने सीता की। यह तेलुगु भाषा की फिल्म है। 1961 ई. में इसे तेलुगु भाषा की सर्वश्रेष्ठ फिल्म का अवार्ड मिल चुका है।

1961 ई. में 'होमी वाडिया' ने 'सम्पूर्ण रामायण' नामक लोकप्रिय फिल्म का निर्माण किया। इसमें निर्देशक बाबू भाई मिस्त्री थे। यह फिल्म भी 'वाल्मीकि रामायण' पर आधृत थी। जिसमें महिमाल राम की भूमिका में थे और अनीता गुहा सीता की भूमिका में थी। यह फिल्म मूल रूप से पारसी रंगमंच से प्रभावित थी, जिसमें कथा के संप्रेषण से अधिक नाटकीयता विद्यमान थी। इस फिल्म ने 1961 के दशक में काफी ख्याति अर्जित की खासकर उत्तर भारत में भी इस फिल्म को काफी सफलता मिली। फलतः इस फिल्म के कथानक पर चर्चा करना आवश्यक है। कहानी धनुष–यज्ञ से शुरू होती है। लक्ष्मण का संवाद राम के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो अनुकूल नहीं है। घटनाएँ सतही तौर पर दिखाई गई है, मार्मिक स्थलों का वर्णन नाटकीय ढंग से हुआ है। हालांकि दृश्य संयोजन से चमत्कारपूर्ण कथा दिखाने की कोशिश की गई है, परन्तु कई दृश्यों को छोड़ दिया गया है। जैसे राम और केवट का संवाद गौण है, जिसे गीतों के माध्यम से कथा को गति

एवं संपूर्णता प्रदान करने की कोशिश की गई है। सुमंत्र का वन से लौटकर आना, तत्पश्चात् दशरथ मरण एवं भरत का ननिहाल से आना भावनात्मक नहीं बल्कि नाटकीय लगता है। घटनाओं को संक्षिप्तता में दिखाने के कारण निर्देशक ने वनगमन के कई प्रमुख प्रसंगों को छोड़ दिया है। दशरथ की मृत्यु के पश्चात् कथा सीधा चित्रकूट पहुँचती है जहाँ भरत जी का आगमन होता है। भरत सभी सभासदों के साथ राम से मिलते हैं। चित्रकूट का मिलन नाटकीय के साथ भवुकतापूर्ण भी है। चित्रकूट में राम–भरत का संवाद अत्यंत संक्षिप्त है। चित्रकूट सभा का प्रसंग नदारद है।

बहरहाल बीच–बीच में सीता का श्रृंगारपूर्ण नृत्य, आध्यात्म से इतर सिनेमाई रूप के ज्यादा निकट है। ऐसा लगता है, मानो वे वनवास नहीं बल्कि आनंदोत्सव मनाने वन में आए हों। सीता बार–बार मेनका सदृश राम को आकर्षित करने की कोशिश करती है। चित्रकूट से कथा एकाएक पंचवटी में सीता के नृत्य से शुरू होती है। इसी बीच शूर्पणखा का प्रवेश होता है और बिना किसी संवाद के लक्ष्मण एक ही वाण से उसकी नाक–कान काट देते हैं। इतना ही नहीं आगे बालि और सुग्रीव की समस्त कथा गीत के माध्यम से ही पूर्ण हो जाती है। इसी प्रकार कथा आगे बढ़ती है और सीता द्वारा दोनों पुत्रों को राम को सौंपकर धरती में समाने पर फिल्म की समाप्ति होती है। कहन का गरज यह कि उस दौर की फिल्में, चाहे समयावधि की कमी से या फिर लेखन या निर्देशन की कमी से वह प्रभाव नहीं छोड़ सकी, जो अपेक्षित है। हालाँकि धार्मिक कथाओं के इस रूपान्तरण ने जनजीवन को एक नया विचार दिया। फलतः आगे चलकर यह कथा धारावाहिक के रूप में विस्तारित हुई।

1967 में 'विजय भट्ट' के निर्देशन में 'शंकर भाई भट्ट' ने 'रामराज्य' नामक फिल्म बनाई। इसकी पटकथा वाल्मीकि रामायण, रामचतिमानस और भवभूति के 'उत्तररामचरित' पर आधारित थी। इस फिल्म में राम के अयोध्या प्रत्यागमन के बाद की कथा महत्त्वपूर्ण है। इसमें 'कुमार सेन' ने राम की भूमिका निभाई है। 'वीणाराय' ने सीता की भूमिका निभाई है। यह हिन्दी भाषा में निर्मित फिल्म थी, जो 1942 ई. के रामराज्य पर आधारित थी।

1971 ई. में 'बापू' के निर्देशन में 'सम्पूर्ण रामायण' नामक तेलुगु फिल्म बनी। यह बाल्मीकी रामायण पर आधृत फिल्म थी। इसमें भी रामजन्म से लेकर अयोध्या प्रत्यागमन तक की कथा को आधार बनाया गया है। व्यवसायिक रूप से यह काफी सफल फिल्म थी। 'शोभन बाबू' राम की भूमिका में थे और 'चंद्रकला' सीता की भूमिका में थी। 'एस.वी. रंगाराव' रावण की भूमिका में थे।

1974 ई. में 'बाबू भाई मिस्त्री' ने हिन्दी भाषा में 'हनुमान विजय' नामक फिल्म बनाई। इसमें 'आशीष कुमार' राम की भूमिका में थे और 'राजकुमार' लक्ष्मण की भूमिका में थे।

1976 ई. में 'चंद्रकान्त' ने 'जय बजरंगबली' नामक फिल्म बनाई, जिसमें हनुमान की मुख्य भूमिका 'दारा सिंह' ने निभाई। यह हिन्दी भाषा की फिल्म थी। 'विश्वजीत' राम की भूमिका में थे और 'मौसमी चटर्जी' सीता की भूमिका में थी। 'शशिकपूर' लक्ष्मण की भूमिका में थे। 'प्रेमनाथ' रावण की भूमिका में थे। इस फिल्म में भी लव–कुश काण्ड तक की कथा वर्णित है।

1976 ई. में एक बार पुनः 'बापू' के निर्देशन में 'पी. सुब्बाराव' ने 'सीता कल्याणम्' नामक फिल्म तेलुगु भाषा में बनाई। इसकी पटकथा 'मल्लापुड़ी वेंकट रमन' ने तैयार की थी। यह फिल्म लंदन और शिकागो के फिल्म महोत्सव में भी प्रदर्शित हुई थी। 'रविकुमार' राम की भूमिका में थे और 'जयप्रदा' सीता की भूमिका में थी। 'कैकला सत्यनारायण' रावण की भूमिका में थे।

1977 ई. में 'कमलाकर कामेश्वर राव' ने बाल्मिकी रामायण पर आश्रित हिन्दी में एक फिल्म बनाई जिसका नाम 'श्रीराम वनवास' था। जिसमें 'रवि' राम की भूमिका में थे और 'जयप्रदा' सीता थी। 'कैकला सत्यनारायण' रावण की भूमिका में थे। इसमें राम के वनवास को केंद्र में रखकर पटकथा का निर्माण किया गया था।

दिसंबर 1978 ई. में 'जी. अरविंदन' के निर्देशन में 'के. रविंद्रन नायर' ने एक फिल्म बनाई, जिसका नाम 'कंचना सीता' था। यह मलयालम भाषा की फिल्म थी। जो 'सी.एन. श्रीकांतन नायर' के नाटक 'कंचना सीता' पर आधृत थी, जिसे

नायर ने वाल्मीकि रामायण से ग्रहण किया था। इसमें उत्तरकाण्ड की कथा प्रमुख है, जिसमें राम द्वारा सीता के त्याग के पश्चात की कथा को नारीवादी दृष्टिकोण से प्रदर्शित किया गया है, जो आंध्रप्रदेश की एक जनजाति में ख्यात रामकथा का स्वरूप है।

2.5 धारावाहिक की परम्परा और धारावाहिक रामायण

पिछले सारे विवरणों से यह स्पष्ट है कि रामानन्द सागर से पूर्व भी सिनेमा के रूप में रामकथा के रूपान्तरण की सुदीर्घ परम्परा रही है। भारतीय सिनेमा प्रारंभ से ही धर्मकथाओं के आश्रय में विकसित हुआ है। फलतः रामानन्द सागर को एक लम्बी पृष्ठभूमि प्राप्त हुई है। समस्त फिल्म निर्माता एवं निर्देशकों ने अपने–अपने अनुसार कथानकों की सृष्टि की एवं मनोनुकूल प्रसंगों को फिल्म के माध्यम से विस्तार दिया।

यह सच है कि रामानन्द सागर को रामकथा पर आधृत फिल्मों की लंबी परम्परा मिली थी, किन्तु धारावाहिक के रूप में पहली बार रामकथा का रूपान्तरण रामानन्द सागर ने ही किया, इसके कई कारण थे। पहला यह कि 1976 ई. में दूरदर्शन का अस्तित्व में आना, टेलीविजन की सुलभता का अभाव, धारावाहिक संस्कृति का उदय न होना आदि कई परिस्थितियाँ थी, जिसने रामानन्द सागर को यह अवसर प्रदान किया।

हालाँकि मशीनी तंत्र, एवं दृश्य संयोजन आदि की विकासशील परम्परा उन्हें विरासत में मिल चुकी थी। केवल एक सशक्त पटकथा की आवश्यकता थी, जिसे धारावाहिक के रूप में विस्तार दिया जा सके और वह व्यापक जन–जीवन से जुड़ सके। इसमें रामानन्द सागर सफल भी हुए। धारावाहिक निर्माण के क्षेत्र में इस धारावाहिक ने विश्व स्तर पर कीर्तिमान स्थापित किया, जिस पर अंतिम अध्याय में विचार किया जाएगा।

वाल्मीकि 'रामायण' और 'रामचरितमानस' को आधार बनाकर रामानन्द सागर ने 'रामायण धारावाहिक' की पटकथा तैयार की। यूँ तो उन्होंने 'कम्बन' से लेकर 'कृतिवास' तथा 'चकबस्त' तक के रामकथाओं के संयोजन की बात की है किंतु यह पटकथा मूलतः इन्हीं दो रामायणों पर आधृत है। 25 जनवरी 1987 से लेकर 31 जुलाई 1988 ई. के बीच 78 खंडों में प्रसारित इस 'धारावाहिक रामायण' के निर्माता, निर्देशक एवं पटकथा लेखक स्वयं रामानन्द सागर थे। इनके प्रमुख पात्र निम्नलिखित थे।

(1) अरुण गोविल–राम,

(2) दीपिका चीखालिया–सीता

(3) सुनील लाहिड़ी–लक्ष्मण

(4) संजय जोग– भरत

(5) समीर राजदा–शत्रुघ्न

(6) दारा सिंह–हनुमान

(7) बाल धुरी–दशरथ

(8) जयश्री गड़कर–कौशल्या

(9) रजनी बाला–सुमित्रा

(10) पद्मा खन्ना–कैकेयी

(11) ललिता पवार–मंथरा

(12) सुलक्षणा खत्री–माण्डवी

(13) अंजलि व्यास–उर्मिला

(14) पूनम शेट्टी–श्रुतिकीर्ति

इस धारावाहिक के सफल प्रसारण के बाद धारावाहिकों की श्रृंखला चल पड़ी। वर्ष 1988 ई. में ही श्याम बेनेगल के निर्देशन में 'भारत एक खोज' नामक धारावाहिक का निर्माण किया गया, जो जवाहरलाल नेहरू के 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' का धारावाहिक रूपान्तरण था। 53 खण्डों में प्रसारित इस धारावाहिक के एक खण्ड में 'रामायण' की भी प्रस्तुति की गई थी। जो रामकथा की एक सांस्कृतिक व्याख्या थी। बेनेगल के राम एवं सीता सिर्फ मनुष्य हैं, वहाँ रामानन्द सागर की तरह देवत्व की प्रतिष्ठा नहीं है। कर्मकाण्ड की प्रधानता नहीं है। इसी दौरान बी.आर. चोपड़ा ने 'महाभारत' धारावाहिक का निर्माण किया। जो 2 अक्टूबर 1988 ई. से 24 जून 1990 ई. के बीच दूरदर्शन पर 94 खण्डों में प्रसारित हुआ। इसकी

पटकथा 'पंडित नरेंद्र शर्मा' और राही मासूम रजा ने लिखी थी। दोनों धारावाहिकों ने नब्बे के दशक में दूरदर्शन की सफलता के झंडे गाड़ दिए।

'धारावाहिक रामायण' की अभूतपूर्व सफलता के बाद रामकथा को आधार बनाकर कई धारावाहिकों का निर्माण हुआ, जिसमें संजय खान निर्मित 'जय हनुमान' धारावाहिक भी काफी लोकप्रिय हुआ। 178 खंडों में प्रसारित इस धारावाहिक का प्रसारण दूरदर्शन द्वारा लगभग तीन सालों (1997–2000 ई.) तक हुआ। पुनः यही धारावाहिक 2008 ई. में सोनी टेलीविजन पर प्रसारित हुआ।

2008 ई. में एक बार फिर 'सागर आर्ट्स' ने 'धारावाहिक रामायण' को नए सिरे से पुनः प्रस्तुत किया, जिसका प्रसारण एन.डी.टी.वी. (इमेजिन) पर किया गया था। यह धारावाहिक हिन्दी के अलावा तमिल, तेलुगु, गुजराती एवं मलयालम में भी प्रसारित हुआ। सम्प्रति 'स्टार प्लस' चैनल पर 'सिया के राम' नाम से एक धारावाहिक का प्रसारण 16 नवंबर 2015 से किया जा रहा है। इस धारावाहिक में रामकथा को वर्त्तमान सामाजिक परिवेश के अनुसार प्रस्तुत करने का एक प्रयास है। इस धारावाहिक का चित्रण नारीवादी दृष्टि से किया गया है। जिसमें सीता को केन्द्र में रखकर पटकथा का निर्माण किया गया है। आम जीवन में धार्मिक आस्था का वह मुलम्मा शायद छूट चुका है, जो कभी रामानन्द सागर के 'रामायण' के साथ था। इस पर अलग से व्याख्या हो सकती है आदि।

******धारावाहिक एवं फिल्म सम्बन्धी तथ्य विकीपीडिया एवं अन्य स्रोतों से लिए गए है।*

तीसरा अध्याय

रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण का कथानक

3.1 रामकथा का स्वरूप

3.2 वाल्मीकि रामायण बनाम रामचरितमानस

3.3 रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण का कथानक

3.4 धारावाहिक के कथानक का तकनीकी विश्लेषण

तीसरा अध्याय

रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण का कथानक

विगत अध्याय में हमने देखा कि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों एवं फिल्मों में रामकथा की सुदीर्घ परम्परा रही है, जो आज भी स्वरूप परिवर्तन के साथ विद्यमान है। चूँकि रामकथा भारतीय जनमानस के समाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन से जुड़ी कथा है, जो समय दर समय तत्कालीन जीवन से अपना स्वरूप प्राप्त करती आई है। रामकथा की अभिव्यक्ति के इसी स्वरूप परिवर्तन का सबसे बड़ा उदाहरण धारावाहिक रामायण है जो 'रामचरितमानस' एवं 'वाल्मीकि रामायण' की कथाओं का तकनीकी रूपान्तरण है। रामानन्द सागर ने पटकथा के लिए मुख्य स्रोत के रूप में 'रामचरितमानस' एवं 'वाल्मीकि रामायण' का ही उपयोग किया है। हालाँकि उन्होंने अन्य स्रोतों के रूप में कम्ब, कृतिवास, चकवस्त, राधेश्याम, रंगनाथ आदि रामायणों की चर्चा की है, किन्तु कथानक पूर्णरूपेण इन्हीं दोनों महाकाव्यों पर आश्रित है।

रामानन्द सागर ने तुलसीदास से भाव एवं वाल्मीकि से घटना को लेकर कथानक में दोनों का संयोजन किया। यह भी रामकथा का एक स्वरूप परिवर्तन ही है, जिसे रामानन्द सागर ने अपनी समसामयिक परिस्थिति युगबोध के अनुसार कथानक की सर्जना की है, और उसे पटकथा लेखन के शैली में रूपान्तरित कर दिया है। 'वाल्मीकि रामायण', 'रामचरितमानस' एवं 'धारावाहिक रामायण' की त्रयी में रामकथा का स्वरूप किन–किन रूपों में परिवर्तित हुआ है और इस स्वरूप परिवर्तन से उसके कथानक ने क्या साम्य–वैषम्य आया है। इससे कथानक को पूर्णतः में समझा जा सकता है।

3.1 रामकथा का स्वरूप

रामकथा का प्रसंग सामने आते ही, कथाओं की श्रृंखला सामने खड़ी हो जाती है, लेकिन जब रामकथा के मूल स्वरूप की चर्चा होती है, तो कुछ सांस्कृतिक भिन्नताओं एवं प्रक्षिप्त अवतरणों के बाद लगभग एक ही स्वर कथा में विद्यमान होता है। एक श्लोकी रामायण का यह श्लोक अपने आप में पूर्ण रामकथा का दर्शन कराता है –

"आदौ राम तपोवनादि गमनं हत्वा मृगं कान्चनम्,
वैदेही हरणं जटायु मरणं सुग्रीव सम्भाषणम्।
बाली निग्रहणम् समुद्र तरणं लंका पुरी दाहनम्।
पश्चात् रावण कुम्भकर्ण हननं एतद्धि रामायाणम्।।"[1]

इस श्लोक से स्पष्ट है कि राम की वास्तविक कथा महज इतनी है 'राम अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र थे, जो पिता की आज्ञा से पत्नी सीता एवं भाई लक्ष्मण समेत वन गए। जहाँ उन्होंने स्वर्ण मृग को मारा, उसके पश्चात सीता का हरण हुआ। मार्ग में जटायु से भेंट हुई और उसकी मृत्यु के पश्चात वे सुग्रीव से मिले। सुग्रीव से मित्रता हुई, बालि को मारकर सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य प्रदान किया। सीता की खोज हनुमान के माध्यम से हुई। समुद्र पार हनुमान ने सीता का पता लगाया और लंका को जलाया। तत्पश्चात् राम ने लंका तक पहुँचने के लिए वानरों की सहायता से सेतु का निर्माण किया। लंका में राम–रावण युद्ध हुआ, जिसमें रावण, कुम्भकर्ण आदि मारे गए और सीता को जीतकर राम वापस अयोध्या लौट आए।'

कथा तो महज इतनी ही है जिसकी चर्चा वाल्मीकि के 'आदि रामायण' में की गई है। बाद में प्रक्षिप्त काण्डों एवं प्रासंगिक कथाओं के साथ 'प्रचलित रामायण' का स्वरूप जनमानस में आया।

---

[1] EK Shloki Ramayana-The shortest summary of Ramayana, hindulegends.com, 28 Nov. 2013

बहरहाल, कुछ तो कारण रहा होगा कि इस सीधी और सपाट कथा के सैकड़ों कथानक अपने वैभव और संस्कृति के साथ समाज में विद्यमान है। ये कथानक अपनी परम्परा से काफी गहरे रूप में अनुस्यूत हैं। सैकड़ों सालों तक इस कथा में अनेकानेक प्रयोग होते रहे, कुछ जनों द्वारा कुछ अभिजनों द्वारा। जाहिर है अनेकानेक प्रयोगों की इस शृंखला में भी परम्परा की अद्‌भुत शक्ति दृष्टिगोचर होती है। कथा के अंतर्गत घटनाओं में हेर–फेर और परिवर्तन जरूर हुए हैं, पात्रों का वेश बदला है, उनकी वाणी बदली है। प्रकृति और जन–परिवेश परिवर्तित हुआ है। काव्य के स्वरूप एवं उससे जुड़े शिल्पों में भी नवीनता आई है। परन्तु उनमें अन्तर्निहित राम का जो राग है, वह नहीं बदला है, उनकी कथा वही है। 'नरेश मेहता' ने 'संशय की एक रात' की भूमिका में लिखा है ''जिस प्रकार कुछ प्रश्न सनातन होते हैं, उसी प्रकार कुछ प्रज्ञा–पुरुष भी सनातन प्रतीत होते हैं। राम ऐसे ही प्रज्ञा प्रतीक हैं, जिनके माध्यम से प्रत्येक युग अपनी समस्याओं को सुलझाता रहा है।''[2]

'नरेश मेहता' का यह कथन बिल्कुल सटीक है। रामकथा हर युग की सभ्यता एवं संस्कृति को संबल प्रदान करती आई है। साथ ही साथ अपने तत्कालीन सामाजिक मूल्यों का भी वहन करती रही है। रामकथा ने समय–दर–समय अपने समाज को जितना संपोषित किया है, उतना ही समाज ने भी उसे संपोषित किया है।

रामकथा को वर्तमान स्वरूप प्राप्त करने में सैकड़ों वर्ष लगे हैं। इन सैकड़ों वर्षों में लगातार कथानकों का स्वरूप लोकाभिरुचि के अनुसार परिवर्तित होता रहा है। रामकथा का संयोजन वैदिक युग से ही प्रारम्भ हो चुका था। अगर हम 600 ई. पूर्व से लेकर 400 ई. पूर्व तक के कालखण्ड का अध्ययन करें तो इस कथा से जुड़े कई आरम्भिक स्रोत हमें प्राप्त होते हैं। 'रोमिला थापर' लिखती हैं ''आरम्भिक काल के वीरों के बारे में कहानियाँ लम्बी कविताओं के पूर्व रूप में रची गई थी। इन्हें गाया जाता था। ये बहुत लोकप्रिय हो गई थी। इनमें से कुछ कहानियों को

---

[2] नरेश मेहता, संशय की एक रात, भूमिका

एक साथ रखकर एक बड़ी कविता की रचना हुई और इन्हें ही हम महाकाव्य के नाम से जानते हैं। जैसे–रामायण और महाभारत।''[3]

इसी रामायण का परिष्कृत रूप हमें गुप्त काल में प्राप्त होता है। इसी समय में शिव और विष्णु की उपासना लोकप्रिय हो गई थी फलतः उसका प्रभाव इन ग्रंथों पर भी पड़ा ये ग्रंथ इसी काल में जोड़े एवं पुनः लिखे गए। जिसमें विष्णु के अवतार के रूप की झाँकी दिखाई गई। विष्णु के अवतार रूप की भी कल्पना इसी समय से प्रारम्भ हुई। यही रामायण का प्रचलित रूप है।

रामकथा का यह प्रसार समीप के देशों में भी हुआ। ईसा की सातवीं शताब्दी तक भारत का सम्बन्ध दक्षिण पूर्व एशिया से काफी बढ़ गया था। इस सम्बन्ध की शुरुआत उन व्यापारियों ने की थी, जो अपना माल लेकर दक्षिण पूर्व के द्वीपों में पहुँचते थे और बदले में वहाँ मसाले की चीजे लाते थे और फिर इन्हीं मसालों को पश्चिम एशिया के देशों में बेच देते थे। इन व्यापारियों में कुछ भारतीय व्यापारी दक्षिण पूर्व एशिया में बस गए, और कुछ ने वहाँ की स्त्रियों से विवाह कर लिया। फलतः धीरे–धीरे हमारे रीति–रिवाज उन देशों तक पहुँचे। धीरे–धीरे दक्षिण पूर्व एशिया के लोगों ने भारतीय संस्कृति और परम्पराओं को स्वीकार करना शुरू किया। इसका प्रभाव अधिकांशतः नगरों तक ही रहा। क्योंकि इन व्यापारियों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नगर तक ही था। यहाँ इस पर चर्चा करना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जहाँ–जहाँ रामकथाओं का प्रचार–प्रसार हुआ, वहाँ भी राम की मूल कथा तो सुरक्षित रही किन्तु उससे जुड़ी प्रासंगिक कथाओं की सृष्टि अपने संस्कृति के अनुरूप की गई। कथा वाचकों एवं रचयिताओं ने अपने–अपने अनुभवों के आधार पर भी इन कथानकों में व्यापक फेर–बदल किया। 'रोमिला थापर' लिखती हैं ''सबसे पहले भारत का सम्बन्ध वर्मा (सुवर्ण भूमि), मलाया (सुवर्ण द्वीप), कंबोडिया (कंबोज), और जावा (यवद्वीप) से स्थापित हुए। इन देशों में भारतीय मंदिरों की तरह भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ; जैसे, कंबोडिया में अंकोरवाट का मंदिर। साथ ही, अनेक भारतीय प्रथाओं का प्रचलन हुआ। पुरोहितों एवं राज–परिवार के लोगों ने संस्कृत सीखी और उन्हें रामायण, महाभारत तथा पुराणों

[3] रोमिला थापर, प्राचीन भारत (कक्षा 6), पृ. 45

की कथाओं की जानकारी मिली। एक नए प्रकार के साहित्य का विकास हुआ जिसमें भारतीय कथाएँ स्थानीय आख्यानों के साथ घुल मिल गई। जावा में जिस रामायण का पाठ होता है, वह दोनों परम्पराओं का अद्भुत मिश्रण है।''[4]

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि रामकथा का प्रचार–प्रसार जिस–जिस प्रदेश में हुआ, वहाँ की संस्कृतियों और वहाँ के आख्यान उससे जुड़ते चले गए। युग–युगांतर से पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होती हुई यह कथा संरक्षित होती गई और जनमानस को तुष्ट करती रही। रामकथा की इसी व्यापकता को देखते हुए 'डॉ. राम मनोहर लोहिया' ने लिखा है ''राम, कृष्ण और शिव ये कोई एक दिन के बनाए हुए नहीं हैं। इनको आपने बनाया। इन्होंने आपको नहीं बनाया। आमतौर से तो आप वही सुना करते हो कि राम–कृष्ण और शिव ने हिन्दुतान और हिन्दुस्तानियों को बनाया। किसी हद तक, शायद, यह बात सही भी हो, लेकिन ज्यादा सही यह बात हो कि करोड़ों हिन्दुस्तानियों ने, युग–युगान्तर के अन्तर ने हजारों बरस में राम, कृष्ण और शिव को बनाया। उनमें अपनी हँसी और सपने के रंग भरे और तब राम और कृष्ण और शिव जैसी चीजें सामने है।''[5]

उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट है कि रामकथा का कथानक लोक आख्यानों से पीढ़ी–दर–पीढ़ी विभिन्न भाषाओं एवं संस्कृतियों में निर्मित होती रही है। 'रामायण सत् कोटि अपारा' के तर्ज पर सैकड़ों रामकाव्य हजारों वर्षों में गढ़े गए। हालाँकि रामानन्द सागर ने अपने धारावाहिक की कथानक के अन्य प्रेरणा स्रोतों के रूप में विभिन्न भारतीय भाषाओं में रचित रामायणों का जिक्र किया है। जिनमें तमिल का कम्ब रामायण, मराठी का भावार्थ रामायण, बंग्ला का कृतिवास रामायण, तेलुगु का रंगनाथ रामायण, कन्नड़ का रामचंद्रचरितपुराणम्, मलयालम का आध्यात्म रामायण, उर्दू का चकबस्त रामायण, हिन्दी का राधेश्याम रामायण का उल्लेख किया है। परन्तु धारावाहिक का कथानक पूर्णरूपेण 'रामचरितमानस' एवं 'वाल्मीकि रामायण' पर आधृत है।

---

[4] वही, पृ. 101–102
[5] राममनोहर लोहिया, भारतमाता धरतीमाता, संपा. ओमकार शरद, पृ. 49

3.2 वाल्मीकि रामायण बनाम रामचरितमानस

'रामायण' और 'रामचरितमानस' दोनों चरित काव्य हैं। यह अनायास नहीं है बल्कि भारतीय साहित्य की प्रवृत्ति ही चरितोन्मुख रही है, जिसमें जीवनगाथा और चरित्र का सामंजस्य होता है। प्रधानता हमेशा चरित्र या आचरण की होती है जबकि जीवनगाथा महज उपलब्ध के रूप में होती है। चरित्र में भी कार्यकलाप की जगह उसमें छिपी भावना और आदर्श की ही प्रधानता रहती है। इस दृष्टि से हम देखें तो तुलसीदास और वाल्मीकि दोनों का काव्य प्रमुख है।

'रामायण' और 'रामचरितमानस' दोनों ही रामकथा पर ही आधृत काव्य है, परन्तु दोनों के चरित्र एवं उस चरित्र की जीवनगाथा में भिन्नता परिलक्षित होती है और यह भिन्नता तत्कालीन सामाजिक जीवन के प्रभाव स्वरूप दृष्टि गोचर होती है। जिस प्रकार 'रामायण' का समाज प्राचीन भारतीय जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार 'मानस' का समाज मध्यकालीन भारतीय जीवन की। वाल्मीकि का युग सभ्यता और संस्कृति के निर्माण का युग था जबकि तुलसी का युग भारत के भौतिक वैभव और संस्कृति दोनों के ह्रास का युग था। आलोचकों का मानना है कि उनके समय में न वह राजकीय प्रभुत्व था और न वह सांस्कृतिक उत्कर्ष, न चारित्रिक गरिमा और न साहित्यिक स्वच्छंदता नारी की स्थिति दयनीय थी। जीवन का वास्तविक आदर्श खत्म हो चुका था। उसके स्थान पर कृत्रिम जीवन था। समाज में अनेक मत–मतांतर प्रचलित थे। तुलसी का युग एक बँधे और घुटे हुए जीवन का युग था, जिसे उन्होंने मुक्ति और प्रवाह देने का प्रयत्न किया है। युग–जीवन के प्रभाव से उनके काव्य का कथानक, पात्रों का चरित्र प्रकृति–चित्रण और वस्तु वर्णन परिवर्तित हुआ है। 'मानस' में भी वही भारतीय आत्मा अर्थात भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व है, जो रामायण में है, पर उन्हें भिन्न परिवेश में प्रस्तुत किया गया है। 'रामायण' में अनार्य जातियों के परिष्कार और सुधार का संकेत है तो 'मानस' में इस सांस्कृतिक समन्वय के साथ धार्मिक समन्वय का भी प्रयत्न है, जो उस युग की आवश्यकता है।

'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' ने 'वाल्मीकि रामायण' और 'रामचरितमानस' के मूलभूत अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है। ''वाल्मीकि ने राम के नरत्व और नारायणत्व, इन दो पक्षों में से नरत्व की पूर्णतः प्रदर्शित करने के लिए उनके चरित्र का गान किया है। पर गोस्वामी जी ने राम का नारायणत्व लिया है और अपने 'मानस' को भगवद्भक्ति के प्रचार का साधन बनाया है। इसमें कहीं–कहीं उन्होंने उनके नरत्वसूचक लक्षणों को दृष्टि के सामने से हटा दिया है। जैसे बनवास का दुःसंवाद सुनाने जब राम कौशल्या के पास जाने लगे हैं। तब वाल्मीकि ने उनके दीर्घ निःश्वास और कंपित स्वर का उल्लेख किया है, सीता को अयोध्या में रहने के लिए समझाते समय उन्होंने कहा है कि भरत के सामने मेरी प्रशंसा न करना; इसी प्रकार मृग को मारकर लौटते समय आश्रम पर सीता के न रहने की आशंका उन्हें होने लगी है तब उनके मुँह से निकल पड़ा है 'कैकेई अब सुखी होगी।' ऐसे स्थलों पर राम में इस प्रकार का क्षोभ गोस्वामी जी ने नहीं दिखाया है।''[6] इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि वाल्मीकि के यहाँ राम का स्वरूप ईश्वरीय नहीं है वह है किन्तु तुलसी की भाँति वहाँ प्रतिपादन का प्रयास एवं आग्रह नहीं है।

वाल्मीकि के राम जहाँ नर चरित्र में स्थापित हैं, वहीं तुलसीदास ने राम में नरत्व के साथ–साथ ईश्वरत्व का भी समावेश किया है, जिसके लिए तुलसीदास को कथा निर्माण में कई प्रवृत्तियों का भी सहारा लेना पड़ा है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती विविध वाङ्मयों का सहारा लिया है, साथ ही कथा की अनुभूति और अभिव्यक्ति में भी परिवर्तन किया है। इसकी घोषणा उन्होंने मंगलाचरण में भी स्पष्ट रूप से की है।

> ''नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
> रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
> स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा –
> भाषा निबन्धमति मंजुलमातनोति।।''[7]

[6] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 65
[7] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 2

तुलसीदास ने वाल्मीकि से इतर जिस मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का सहारा लिया है, उस पर प्रकाश डालते हुए डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं – ''रामकथा के पुनर्विधान में जिस मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों ने कार्य किया है, वे कुछ इस प्रकार की हैं – विभिन्न घटनाओं का कारण निर्देश, राम के चरित से संबंधित अनेक जिज्ञासाओं का समाधान, अनेक पात्रों के जीवन–वृतांत का विस्तार, चमत्कारिकता एवं अलौकिकता की वृद्धि, अवतारवाद, भक्ति में धार्मिक साधनाओं का समन्वय, विविध ज्ञान सामग्री का समावेश, लोक–गाथाओं और लोकतत्त्वों का सन्निवेश, आदि।''[8]

मानस में वक्ता–श्रोता चरित (शिव–पार्वती, काकभुशुण्डि–गरुड़, याज्ञ्यवल्क्य–भारद्वाज) और उसकी हेतु कथाएँ, मुख्य कथा के साथ अनुस्यूत है। राम की अनन्त कथाओं या कथा परम्पराओं के समन्वय का प्रयास इस आरम्भिक कथाओं के माध्यम से किया गया है। जिसमें हर कथा का अपना हेतु है और वह एक दूसरे से सम्बद्ध है। इनमें प्रमुख कथा हैं – 'शिव–चरित', 'काक–चरित', 'जय–विजय चरित', 'जलंधर–वृंदा चरित', 'नारद–चरित', 'मनु–शतरूपा–चरित' और 'प्रताप–भानु चरित'। ये सारी प्रासंगिक कथाएँ तुलसी की कथा निरूपण की कला को वाल्मीकि से पृथक करती है।

जहाँ तक 'वाल्मीकि रामायण' के कथानक का प्रश्न है वह रामवनगमन से लेकर अयोध्या प्रत्यावर्तन तक की ही मुख्य कथा है। कथा महज अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक वर्णित है। बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त रूप से जोड़े गए हैं, जिस पर पीछे चर्चा की जा चुकी है। यह भी स्पष्ट है कि तुलसीदास एवं वाल्मीकि की रामकथा में अपने युग के धार्मिक–सांस्कृतिक वातावरण, लोककथाओं एवं ऐहिासिक आख्यानों का योगदान रहा है। दोनों कवियों ने अपनी काव्य क्षमता के अनुरूप इन कथाओं को पिरोया है। 'डॉ. नगेन्द्र' के शब्दों में कहें तो 'वाल्मीकि रामायण' की कथा के वातावरण में इतिहास, यथार्थता, भौतिकता और राजनीतिक की प्रधानता है। जबकि मानस में पौराणिकता, आलौकिकता, नैतिकता एवं दार्शनिकता का। इसके पीछे दोनों कवियों की तत्कालीन परिस्थिति ही प्रमुख थी। इसलिए तुलसीदास ने सगुण–निर्गुण एवं शैव–वैष्णव आदि दार्शनिक मतों के

---

[8] रामचरितमानस तुलनात्मक अध्ययन, संपा. डॉ. नगेन्द्र, पृ 29

समन्वय का प्रयास किया। ह्रास होती सामाजिक नैतिकता को कथा के माध्यम से पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। धार्मिक दृष्टि से हताश होती जनता को राम के ईश्वरत्व का दर्शन कराकर उनके जीवन को संबल प्रदान किया इस दृष्टि से यदि दोनों कवियों की रामकथा को देखें, तो वाल्मीकि के रामायण में राज्यों, प्रदेशों और प्राकृतिक दृश्यों का विस्तृत एवं चित्रात्मक वर्णन मिलता है जबकि तुलसी के यहाँ दार्शनिक चर्चा एवं भक्ति का उपदेश अधिक है। तुलसी के यहाँ घटना से अधिक भाव की प्रधानता है। 'रामायण' और 'रामचरितमानस' की आधिकारिक कथा लगभग समान है किन्तु कुछ प्रासंगिक कथाएँ, उन कथाओं के अभिप्राय एवं वातावरण निर्माण में अन्तर है। यह अन्तर मुख्यतः बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड में तथा शेष काण्डों की कथा थोड़ी बहुत हेर–फेर के साथ लगभग समान है। कुछ कथाओं का स्थान्तरण अन्य काण्डों में हो गया है। जैसे–सीता–अनुसूया प्रसंग तुलसी के यहाँ अरण्यकाड के प्रारम्भ में है जबकि वाल्मीकि के यहाँ अयोध्याकाण्ड में। 'रामायण' की तुलना में 'मानस' का बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड अधिक व्यवस्थित है। जिसमें तुलसीदास ने अपने प्रबन्ध कौशल एवं विचारों को पूरी स्वतंत्रता प्रदान की है। बालकाण्ड की प्रासंगिक कथाएँ हमें ऊब अवश्य पैदा करती है, परन्तु कथा के साथ उसकी अनुस्यूतता उसकी रसमयता को बनाए रखती है। 'रामायण' के अयोध्याकाण्ड एवं युद्धकाण्ड की कथा अपनी पूर्णता मे संयोजित है किन्तु बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड की कथा पृथक मालूम पड़ती है जिसका मुख्य कारण इसका बाद में कथावाचकों द्वारा जोड़ा जाना है। जिस पर पिछले अध्याय में चर्चा की जा चुकी है।

'वाल्मीकि रामायण' और 'रामचरितमानस' दोनों की अधिकारिक कथा वनगमन से लेकर रावण–वध तक है। ऐतिहासिक रूप से रावण का वध, आर्यों के राज्य एवं संस्कृति की स्थापना है, किन्तु पौराणिक दृष्टि से इसका उद्देश्य अधर्म का नाश एवं धर्म की संस्थापना है। इसकी झलक भारतीय संस्कृति के दोनों महाकाव्यों में दिखाई देती है। चाहे रामायण हो या महाभारत।

वाल्मीकि राम की विशेषता बताते हुए कहते हैं –

''प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता।।''[9]

अर्थात राम प्रजापति के समान पालक, श्री संपन्न, शत्रुओं का नाश करने वाले तो हैं, ही साथ ही वे जीवों एवं धर्म के रक्षक भी हैं।

भगवद्गीता के अनुसार –

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।''[10]

अर्थात जब–जब धर्म की हानि एवं अधर्म की वृद्धि होती है, तब–तब ईश्वर साधु–पुरुषों के उद्धार के लिए, पापियों के विनाश के लिए और धर्म की स्थापना के लिए हर युग में अवतार लेते हैं इसी अवतार एवं दुखों के शमन के लिए तुलसीदास ने भी स्पष्ट घोषण की –

जब–जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
तब–तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु।।[11]

तुलसीदास के भी राम तभी अवतार लेते हैं जब–जब धर्म की हानि होती है। असुरों का उत्पात बढ़ जाता है, ऐसी स्थिति में वे आसुरों को मारकर देवताओं को स्थापित करते हैं। वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं और जगत में अपना निर्मल यश फैलाते हैं। इसी उद्देश्य से 'रामचरितमानस' की सम्पूर्ण कथा का वितान रचा

---

[9] महर्षि वाल्मीकि, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, पृ. 54, भाग 1
[10] श्रीमदभगवतगीता (सटीक, मोटा टाइप), पृ. 62–63
[11] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ 110

गया है। वाल्मीकि के रामायण में भी 'मानस' की भाँति पुत्रेष्टि यज्ञ एवं पायस वितरण का प्रसंग है। इसके पूर्व देव, गंधर्व, ऋषि, सिद्ध आदि की परिषद द्वारा रावण–वध के उपाय पर भी विचार का प्रसंग है, किन्तु कथा के साथ उसकी समरसता नहीं है। इसी के साथ पुत्रेष्टि यज्ञ कराने वाले श्रृंगी ऋषि की भी कथा है, जो दो सर्गों में 64 श्लोकों में कही गई हैं। पुत्रेष्टि यज्ञ के बीच में श्रृंगी ऋषि की कथा मुख्य कथा को बाधित करती है।

तुलसीदास ने इसे एक ही चौपाई में निपटा दिया है –

> ''सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्र काम सुभ जग्य करावा।।
> भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरु कर लीहैं।।''[12]

इससे अधिक श्रृंगी ऋषि की कोई चर्चा मानस में नहीं मिलती है। जिस प्रकार पुत्रेष्टि यज्ञ के कथा में वाल्मीकि ने श्रृंगी ऋषि की कथा को विस्तार देकर आधिकारिक कथा को अनावश्यक रूप से विषयांतर कर दिया है, उसी प्रकार विश्वामित्र के साथ वनगमन से लेकर जनकपुर प्रस्थान मार्ग में कई प्रासंगिक कथाओं का सन्निवेश कर दिया है, जिससे कथा अनेक वृतांतों में उलझता प्रतीत होता है। जैसे – सरयू, गंगा तट पर रात्रि विश्राम में विश्वामित्र द्वारा कामदेव के आश्रम एवं उसके दहन की कथा, मलद, करुष एवं ताटकावन का परिचय, वामन विश्वामित्र से संबंधित कुशिक वंश का प्रसंग, शिव–पार्वती का विवाह और कार्तिकेय का जन्म, राजा सागर और गंगावतरण की कथा, विश्वामित्र का वृहत जीवन वृतांत और वशिष्ठ के साथ उनका द्वंद्व, त्रिशंकु का प्रसंग आदि समाविष्ट है। तुलसीदास ने इन कथाओं को काफी संक्षेप और सुरुचिपूर्ण ढंग से चित्रित किया है। 'मानस' में विश्वामित्र के साथ वनगमन एवं मिथिला प्रस्थान का प्रसंग काफी संक्षेप में है। राम–लक्ष्मण के अयोध्या से चलते ही ताड़का वध का प्रसंग एक चौपाई में वर्णित है –

---

[12] वही, पृ. 163

''चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।।
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।।''[13]

तत्पश्चात अहिल्या उद्धार की कथा महज एक दोहे और चौपाई में वर्णित है। 'गंगावतरण की कथा महज एक अर्द्धाली में है –

''गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।।''[14]

उसके बाद मिथिला आगमन हुआ।

इस तरह 'रामायण' के बालकाण्ड की अपेक्षा 'मानस' की कथा व्यवस्था अपनी समस्त हेतु कथाओं के साथ भी अन्विति युक्त है। हालाँकि तुलसी ने इस काण्ड के अधिकांश प्रसंगों को वहीं से ग्रहण किया है परन्तु उसे अपने प्रबन्ध और काव्य–कौशल के साथ पिरोया है। धनुषयज्ञ और स्वयंवर की कथा तुलसीदास के काव्य कौशल का सुंदर उदाहरण है।

'मानस' में बालकाण्ड का समापन अयोध्या में नववधुओं के स्वागत, सास–ससुर द्वारा उनका वात्सल्यमय स्नेह एवं इस मांगलिक अवसर पर समस्त राजप्रसाद एवं अयोध्या नगरी का उल्लासपूर्ण वर्णन है।

''जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए।।
रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई।।
मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली।।
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होई देखि सुनिराऊ।।[15]

जबकि 'वाल्मीकि रामायण' में युधाजित द्वारा भरत–शत्रुघ्न की विदाई के साथ बालकाण्ड का समापन होता है।

''युधाजित प्राप्य भरतं सशत्रुघ्नं प्रहर्षितः।।

---

[13] वही, पृ. 179
[14] वही, पृ. 182
[15] वही, पृ. 308

स्वपुरं प्राविशद् वीरः पिता तस्य तुतोषह।।''[16]

इसका प्रभाव अयोध्याकाण्ड के आरम्भिक वातावरण पर भी पड़ा है। दोनों को यदि सम्मिलित रूप से देखें तो 'मानस' में अयोध्याकाण्ड का प्रारम्भ चारों पुत्रों के मधुर गार्हस्थ्य जीवन एवं एक पिता का वानप्रस्थ आश्रम की ओर प्रस्थान, साथ ही इस उल्लासपूर्ण घड़ी में पिता द्वारा पुत्र को युवराज पद देने की चिंता से होता है, जबकि 'रामायण' के अयोध्याकाण्ड में भरत–शत्रुघ्न की विदा–कथा की आवृत्ति हुई। जो वस्तु विन्यास में अवांछित है।

'रामायण' और 'रामचरितमानस' दोनों में वनवास के कारणों की सृष्टि भिन्न तरीके से हुई है। वाल्मीकि के यहाँ मंथरा का प्रसंग राजनीतिक कूटनीति का आभास कराता है, किन्तु मानस में यह प्रसंग भगवत लीला से प्रेरित है। रामायण में यह स्पष्ट है कि दशरथ ने कैकेयी के साथ छल किया है, जिससे मंथरा उसकी रक्षा करती है। मंथरा के अंदर यह विचार तब आता है, जब वह राम की दासी को सुंदर पीली रेशमी साड़ी पहने हुए देखती है। मंथरा स्वयं इस सम्मान का अधिकारी न पाकर ईर्ष्यावश, वह कैकेयी को दशरथ के विरुद्ध भड़कती है और अपनी निरपेक्षता भी सिद्ध करती है। लगभग तीन सर्गों में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन है। मानस में मंथरा की बुद्धि सरस्वती द्वारा फेर दी जाती है।

''नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।।''[17]

अर्थात् मंथरा नाम की कैकेयी की एक मंदबुद्धि दासी थी, जिसे अपयश की पिटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि फेरकर चली गई। भगवान राम की इस नर लीला के लिए ऐसे ईश्वरीय विधानों का सहारा तुलसीदास ने अध्यात्म रामायण आदि से लिया है। छाया–सीता का हरण इसका दूसरा उदाहरण है क्योंकि असली सीता को अरण्यकाण्ड में तुलसीदास अग्नि में समाहित करवा देते हैं।

---

[16] महर्षि वाल्मीकि, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, भाग 1, पृ. 218
[17] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, (मझला साइज), पृ. 319

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला।।
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा।।[18]

राम कहते हैं – हे प्रिये, अब मैं कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा। इसलिए जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ तब तक तुम अग्नि में निवास करो। इसी प्रकार रावण–वध भी तुलसीदास की इसी भगवतलीला की परिणति है जिसमें राम रावण का वध न कर मोक्ष प्रदान करते हैं।

मंथरा प्रसंग के अतिरिक्त वनगमन आदि का शेष कथानक दोनों ही काव्यों में मनोवैज्ञानिक चित्रण और संवादों की थोड़ी–बहुत भिन्नता के साथ लगभग समान रूप से वर्णित है। 'मानस' में वनगमन के सम्पूर्ण प्रसंग में कवित्व और भक्ति का तुलसीदास ने अद्‌भुत संगम कराया है। जहाँ भक्ति कवित्व के रंग में रंगी है, वहीं कवित्व भक्ति के शिखर तक पहुँच गया है। हालाँकि 'रामायण' में भी वनमार्ग के इन पथिकों (राम, लक्ष्मण, सीता) का मर्म उद्‌घाटित हुआ है परन्तु दोनों के स्वरूप में भिन्नता है।

वाल्मीकि लिखते हैं –

''अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना।
पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह।।''[19]

अर्थात् आगे–आगे राम चल रहे हैं बीच में परम सुंदरी सीता चल रही थीं औ उनके पीछे हाथ में धनुष लिए लक्ष्मण चलने लगे। इसी स्थिति का वर्णन तुलसीदास इन शब्दों में करते हैं –

''आगे राम अनुज पुनि पाछें। मुनिबर बेष बने अति काछें।।
उभय बीच श्री साहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।''[20]

[18] वही, पृ. 518
[19] महर्षि वाल्मीकि, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, भाग 1, पृ. 574
[20] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला, साइज), पृ 575–574

अर्थात आगे श्रीरामजी हैं औ उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं। दोनों ही मुनियों का सुंदर वेष बनाए अत्यंत सुशोभित हैं। दोनों के बीच में श्री जानकी जी कैसी सुशोभित हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया हो।

दोनों के वर्णन में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि वाल्मीकि के यहाँ जो वर्णन सरल एवं सहज है, वहीं तुलसीदास उसे आध्यात्मिकता में लपेट कर प्रस्तुत करते हैं। वाल्मीकि से ही रामकथा लेकर तुलसीदास अपनी लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार की भावना को कथा में जगह–जगह रूप, और रंग में चित्रित करते हैं। तुलसीदास की इन दोनों भावनाओं को इन प्रसंगों के माध्यम से देखा जा सकता है। ग्राम वधुएँ जब सीता से पूछती है –

''कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।।[21]

हे सुमुखि 'अपनी सुंदरता' से करोड़ों कामदेवों को लज्जित करने वाले ये तुम्हारे कौन हैं? इस प्रश्न का उत्तर तुलसीदास ने सीता के जिस व्यवहार के साथ दिया है, वह तुलसी की लौकिक दृष्टि का ही परिचायक है।

''बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकि। पियतन चितइ भौंह कर बाँकि।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि।।''[22]

यहाँ तुलसीदास ने श्रृंगार रस की अद्भुत छटा बिखेरी है। वहीं केवट प्रसंग भक्ति रस में सराबोर है।

तुलसीदास कहते हैं –

''पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारू करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार।।''[23]

---

[21] वही, पृ. 319
[22] वही, पृ. 319
[23] वही, पृ. 386

वनगमन और वन–प्रवेश के मध्य अयोध्याकाण्ड अंतर्गत सबसे महत्त्वपूर्ण प्रसंग चित्रकूट है। दोनों ही महाकाव्यों में घटना का विशेष कोई अन्तर नहीं है, परन्तु भावनात्मक रूप से अन्तर अवश्य है। आदर्श दोनों ही जगह विद्यमान है। घटना महज इतनी है कि भरत राम को मनाने आते हैं कि वे अयोध्या लौट चलें और राजगद्दी संभालें। दोनों भाइयों में राज्य जैसी वस्तु को ग्रहण करने की अपेक्षा उसके त्याग का आग्रह है। इसी भावना एवं आदर्श की खींचतान तुलसी के यहाँ अधिक दिखाई देती है। तुलसीदास ने पूरे प्रसंग को ही नई उद्‌भावना से पूरित कर दिया है। 'रामायण' के भरत सत्याग्रह करते हैं, मानस में बोलते हुए भी सकुचाते हैं। 'रामायण' में जाबालि राम को जीवन में सुख–भोग का महत्त्वपूर्ण समझाते हुए राज्य लेने को प्रेरित करते हैं, जबकि मानस में तुलसीदास ने ऐसे किसी पात्र या विचार की सृष्टि नहीं की है। 'रामायण' की चित्रकूट सभा में जनक अनुपस्थित हैं। किन्तु 'मानस' में उनकी मुख्य भूमिका है। जो वरिष्ठतम सम्बन्धी के रूप में है। चित्रकूट के कोल–किरोतों में भी अवध समाज के सानिध्य से चार दिनों में ही धर्म–बुद्धि जागृत हो गई है। 'मानस' में अभिषेक जल की स्थापना के लिए भरत–कूप की कल्पना कर तुलसीदास ने एक तीर्थ की ही स्थापना कर दी। 'मानस' के आयोध्याकाण्ड का समापन नंदिग्राम के तपस्वी की झाँकी से होता है। किन्तु 'वाल्मीकि रामायण' में सीता–अनुसूया भेंट प्रकरण के साथ। इसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। हालाँकि अयोध्याकाण्ड की समाप्ति भरत के अयोध्या प्रत्यावर्तन के साथ ही हो जानी चाहिए थी, किन्तु वाल्मीकि ने उन्हें अरण्य में भी प्रवेश करा दिया और अनूसूया प्रसंग तक ले गए। तुलसी का काण्ड संयोजन इस हिसाब से उपयुक्त है। वैसे मेरा उद्देश्य दोनों रामकथाओं का विश्लेषण या मूल्यांकन नहीं है बल्कि इन कथाओं के मूलभूत अन्तरों को स्पष्ट करना है।

अरण्यकाण्ड में तुलसीदास ने 'रामायण' की कथा से इतर चार तरह के परिवर्तन किए है। दो नए प्रकरणों को भी जोड़ा है। इनमें पहला है 'जयंत प्रकरण', जो वाल्मीकि के यहाँ नहीं है। दूसरा 'राम द्वारा राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा' है। वाल्मीकि के राम ऋषियों द्वारा अनुनय विनय करने पर राक्षसवध की

प्रतिज्ञा लेते हैं किन्तु तुलसी के राम अस्थि–समूह देखकर स्वयं ही रोष से प्रतिज्ञा लेते हैं –

''अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया।।
निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।''[24]

वाल्मीकि के यहाँ अगस्त्य ऋषि राम को दिव्य अस्त्र–शस्त्र भी प्रदान करते हैं, किन्तु 'मानस' में अगस्त्य ऋषि श्रद्धा भक्ति के रूप में शुभकामनाएँ ही प्रदान करते हैं। चौथा प्रकरण छाया सीता का है, जिसमें राम स्पष्ट रूप में नर–लीला के उद्देश्य को प्रकट करते हैं –

''सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला।।''[25]

इतना ही नहीं, तुलसीदास ने जिन दो नए प्रकरणों को जोड़ा है वे हैं – पंचवटी में राम द्वारा लक्ष्मण की ब्रह्म–जीव–माया विषयक जिज्ञासा के समाधान का संवाद और काण्ड के अंत में नारद से भेंट। नारद से इस भेंट को तुलसीदास ने बालकाण्ड के नारद मोह प्रसंग से भी जोड़ दिया है। नारद राम के वन–विचरण की इस दशा का जिम्मेदार स्वयं को बताते हैं, जहाँ उन्हें अपने द्वारा विष्णु को दिया गया श्राप याद आता है। –

''मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी।।''[26]

तुलसीदास ने कथा की इस अंतर्धारा को जीवित रखते हुए इस सम्पूर्ण कथानक में अवतार के वातावरण की व्याप्ति दिखलाने की कोशिश की है।

कुछ प्रसंग ऐसे हैं, जिनका विचारगत समाधान दोनों ही रामकथाओं में नहीं है। दोनों ही जगह यह प्रसंग अपनी ऐतिहासिकता के साथ ही दर्ज है, जिसमें न लौकिकता है और न ही अलौकिकता। शूर्पनखा प्रसंग में निहित राम–लक्ष्मण के चरित्र के प्रति किए गए आक्षेपों का उचित समाधान न रामायण में मिलता है और

---

[24] वही, पृ. 577
[25] वही, पृ. 598
[26] वही, पृ. 122

न मानस में। बालि बध के औचित्य को न रामायण में सिद्ध किया जा सका है और न ही मानस में। हालाँकि मानसकार ने राम–बालि संवद के माध्यम से अपनी धारणा निर्मित करने की कोशिश की है। बालि राम से प्रश्न करता है –

''मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।।''[27]

राम उत्तर देते हैं –

''अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।।''[28]

इतना ही नहीं दोनों ही रामकथा के राम एक ही वाण से बाली को मारने का प्रण करते हैं।

सुंदरकाण्ड अंतर्गत मैनाक, सुरसा, सिंहिका, लंकिनी का प्रसंग, त्रिजटा का स्वप्न आदि प्रसंग लगभग तुलसीदास ने वाल्मीकी से ही ग्रहण किया है। परन्तु काण्ड का समापन एवं आरम्भ भिन्न तरीके से किया गया है। मानस में सागर निग्रह, विभीषण की सरणागति आदि प्रसंग सुंदरकाण्ड में ही सम्मिलित है, किन्तु वाल्मीकि रामायण में ये प्रसंग युद्धकाण्ड में सम्मिलित है। तुलसीदास ने लंकाकाण्ड की शुरूआत नल–नील द्वारा सेतु–बंध की दृश्यात्मक घटना से किया है। मानस में हनुमान का परिचय विभीषण से लंका प्रवेश के समय ही रात्रि में हो जाता है।

''बिप्ररूप धरि बचन सुनाए। सुनत विभीषण उठि तहँ आए।।
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई।।''[29]

जबकि वाल्मीकि के यहाँ विभीषण रावण के दरबार में दूत की अबध्यता की राजनैतिक मर्यादा का भान रावण को कराते हैं, और हनुमान का पक्ष लेते हैं –

[27] वही, पृ. 635
[28] वही, पृ. 635
[29] वही, पृ. 663

''राजन् धर्मविरुद्धं च लोकवृत्तेश्च गर्हितम्।
तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम्।।''[30]

हे राजन, इस वानर को मारना धर्म के विरुद्ध और लोकाचार की दृष्टि से भी निंदित है। आप जैसे वीर के लिए यह कदापि उचित नहीं है। रामायण में इंद्र का सारथी मातलि राम को रावण–वध के लिए ब्रह्मास्थ का प्रयोग करने का परामर्श देता है, जबकि 'मानस' में विभीषण उन्हें नाभि में अमृत होने का रहस्य बताते हैं। इस प्रकार तुलसीदास ने चरित्र के निर्माण में नवीनता लाने के लिए भी कथा–प्रसंगों की कल्पना या परम्परागत प्रसंगों की नई योजना की है।

वाल्मीकि ने जिसे 'युद्धकाण्ड' का नाम दिया है तुलसी ने उसे 'लंकाकाण्ड' नाम दिया है, जाहिर है तुलसी के राम युद्ध नहीं करते, वो तो भगवान की क्रीड़ा है। तुलसी के राम पापियों का उद्धार करते हैं। स्वयं अरण्यकाण्ड में रावण शूर्पनखा प्रसंग में खर–दूषण की मृत्यु के पश्चात सोचता है –

''खर–दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारई बिनु भगवंता।।
सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तौ मैं जाइ बैरू हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।।''[31]

इस प्रकार रावण का यह सोचना कि खर–दूषण जो मेरे समान बलवान थे, उन्हें भगवान के सिवा कौन मार सकता है? इतना ही नहीं यदि देवताओं को आनंद देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान ने ही यदि अवतार लिया है, तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक बैर करूँगा और प्रभु के बाण से प्राण त्यागकर भवसागर से तर जाउँगा। यह तुलसीदास का नियोजित विचार है। यहाँ रावण युद्ध नहीं करता है, वरन अपने लिए मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। तुलसीदास ने यहाँ भी युद्ध का वर्णन परम्परा पूर्ति के लिए कर दिया है।

[30] महर्षि वाल्मीकि, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, भाग 2, पृ. 182
[31] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 597

इसके अतिरिक्त लंकाकाण्ड के अन्य प्रसंगों को भी देखा जा सकता है। जिनमें एक प्रसंग 'रामायण' में गोपुर की घटना है और 'मानस' में संगीत–गोष्ठी की घटना। 'रामायण' में सुग्रीव लंका के गोपुर पर रावण को देखकर उछलते और हाथापाई करके लौट आते हैं। जबकि मानस की घटना इस प्रकार है कि लंका के एक शिखर पर रावण की संगीत–गोष्ठी होते देख राम एक बाण छोड़ते हैं, जो मन्दोदरी के ताटक और रावण के मुकुट को गिराकर लौट आता है। दूसरा प्रसंग अंगद–रावण संवाद का है, जिसमें अंगद जोर से भुजाएँ पटककर रावण का किरीट गिरा देता है और राम के पास फेंक देता है –

> गिरत सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुंदर।।
> कुछ तेहिं लै निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पबारे।।[32]

इतना ही नहीं अंगद सभा में पाँव रोपकर सभासदों सहित रावण को हदप्रभ करता है। वाल्मीकि रामायण में यह समस्त प्रसंग राजकीय मर्यादा के साथ हुआ है। तुलसीदास की भक्ति एवं अपने नायक के प्रति पक्षपात की भावना उस वक्त मर्यादा लाँघती प्रतीत होती है जब रावण के शव पर विलाप करती मन्दोदरी के मुख से यह कहलवा दिया कि राम–विमुख होने के कारण तुम्हारे सिरों और भुजाओं का गीदड़ों द्वारा खाया जाना उचित ही है –

> ''तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा। समय दिसिप नित नावहिं माथ।।
> अब तवसिर भुज जंबुक खाहीं। राम बिमुख यह अनुचित नाहीं।।[33]

'वाल्मीकि रामायण' का उत्तरकाण्ड मूलरूप से प्रक्षिप्त अंश है, जो कथावाचकों द्वारा जोड़ा गया है। इस पहले भी चर्चा की गई है। जिस प्रबन्धपटुता एवं कथा–प्रसंगों के माध्यम से तुलसीदास ने इस काण्ड की सृष्टि की है उसका सर्वथा अभाव वाल्मीकि रामायण में है। मानस में जहाँ कथा रामराज्य की झाँकी के साथ ज्ञान–भक्ति के सागर में डूब जाती है, वहीं रामायण को पढ़कर ऐसा ज्ञात

[32] वही, पृ. 734
[33] वही, पृ. 808

होता है मानों सम्पूर्ण महाकाव्य का प्रभाव ही लुप्त हो गया है। रामाश्वमेध, लव–कुश जन्म और राम के निज–धाम गमन की कथा को संक्षेप एवं संकेत में कहकर तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की अंतश्चेतना को सुरक्षित रखा है।

इस प्रकार एक ही कथानक को आधार बनाकर रचित इन दोनों प्रबन्ध काव्यों में समानता अवश्यंभावी है किन्तु समय एवं परिस्थिति के अनुकूल नवीनता भी जाहिर है। दोनों महाकवियों ने इस कथा को अपने कवित्त्व, विवेक एवं तत्कालीन युग बोध से अनुप्राणित होकर रचा है, फलतः समानता एवं नवीनता स्वाभाविक है।

3.3 रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण का कथानक

इस अध्याय के अंतर्गत 'रामचरितमानस' एवं 'धारावाहिक रामायण' के कथानक के साम्य–वैषम्य पर विचार किया जाएगा। रामानन्द सागर ने धारावाहिक निर्माण में इन कथानकों का किस प्रकार उपयोग किया है। यह हमारा ध्येय है। इन कथानकों की तुलना से पूर्व यह स्पष्ट करना आवश्यक है, कि एक प्रबन्ध काव्य एवं धारावाहिक के कथानक के बीच कई मूलभूत अन्तर होते हैं। कथा प्रसंगों के मानसिक विस्तार की जितनी स्वतंत्रता प्रबन्ध काव्य में होती है, उतनी धारावाहिक में नहीं होती। दोनों भिन्न विधाएँ हैं, जो क्रमशः पाठकों एवं दर्शकों के निमित्त रची जाती है। जाहिर है लेखक की भावभूमि पाठकों एवं दर्शकों के हिसाब से सर्वथा भिन्न होगी। धारावाहिक के कथानक में काव्य की भाँति कथा एवं उसके चरित्रों को धीरे–धीरे विस्तार न देकर शीघ्र ही दिया जाता है। कम एवं निश्चित अवधि के कारण उनका संधर्ष शीघ्र प्रारम्भ हो जाता है। इसमें किसी उत्तेजक घटना के देर से आने की कोई गुंजाइश नहीं होती। इसमें सूक्ष्मता के साथ विवरण देते हुए जीवन के महत्त्वपूर्ण क्षणों को दिखाया जाता है।

बहरहाल हमारा उद्देश्य यहाँ धारावाहिक के तकनीकी भागों का विश्लेषण करना नहीं है वरन् इन दृष्टियों से धारावाहिक रामायण के कथानक पर विचार करना है। एक प्रबन्ध काव्य के कथात्मक के रूपान्तरण में रामानन्द सागर कितने

सफल हुए है और उन्होंने किन–किन बिंदुओं को विस्तार दिया है, इस पर विचार किया जाएगा।

तुलसीदास ने 'मानस' में राम जन्म से पूर्व एक लम्बी पृष्ठभूमि की रचना की है। तमाम देवी–देवताओं एवं राम की वंदना के साथ–साथ राम जन्म की पृष्ठभूमि के रूप में सात चरित कथाओं की भी सृष्टि की है। ये कथाएँ हैं – 'शिव–चरित', 'काक–चरित', 'जय–विजय चरित', 'जलंधर–वृंदा चरित', 'नारद–चरित', 'मनु–शतरूपा चरित' और 'प्रतापभानु चरित'। तुलसीदास ने इसे रामकथा में लोगों की जिज्ञासा एवं रुचि जगाने के उद्देश्य से किया है जिसे उन्होंने रामकथा में काफी बारीकी से अनुस्यूत कर दिया है। जबकि रामानन्द सागर ने कथा का प्रारम्भ पृथ्वी एवं देवतादि की करुण पुकार के प्रसंग से की है। रामानन्द सागर ने रामजन्म के कारण के रूप में रावण द्वारा पृथ्वी पर होने वाले अत्याचार को आधार बनाया है। रावण के आतंक से त्रस्त पृथ्वी इंद्र एवं अन्य देवताओं के साथ भगवान ब्रह्मा की शरण में जाती है, फिर सभी देवता विष्णु के पास पहुँचते हैं। विष्णु सभी देवताओं समेत पृथ्वी को रावण के आंतक से मुक्त कराने का संकल्प लेते हैं और सत्य एवं धर्म की रक्षा हेतु स्वयं को अयोध्या नरेश दशरथ के घर जन्म लेने की प्रतिज्ञा करते हैं। यह समस्त कथा मानस को आधार बनाकर रची गई है। इसी प्रतिज्ञा को तुलसी इन शब्दों में व्यक्त करते हैं –

> ''जानि समय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
> गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह।।
> कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा।।
> ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नर भूपा।
> तिन्ह कें गृह अवतरिहऊँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।।''[34]

आगे की पटकथा भी उसी प्रकार रची गई है जैसा तुलसीदास ने रचा है। वशिष्ठ द्वारा पुत्रेष्ठि यज्ञ की सलाह पर दशरथ श्रृंगी ऋषि को मनाने जाते हैं, इस प्रसंग

---

[34] वही, पृ. 161

को रामानन्द सागर ने अपने अनुसार विस्तार दिया है और इसे गीत के माध्यम से चित्रित करने का प्रयास किया है। इसी गीत की कड़ी में पटकथा लेखक ने जन्म के समस्त वृतांत का वर्णन कर दिया, जहाँ संवाद की कोई भूमिका नहीं है। दृश्यों के चित्रांकन एवं संगीत द्वारा ही समस्त घटनाओं का वर्णन कर दिया गया है। इस गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

"चला एक राजा जोगी को मनाने।
जोगिया मनाने, जोगिया मनाने।
जोगी के चरणों में शीश नवाने। चला एक...।
आँसू से पग धोए–धोए, हर भाँति मनावे राजा।
हुए प्रसन्न तथास्तु कहा फिर यज्ञ–कर्म शुभ काजा।।
अग्निदेव फिर प्रकट भए, इक पात्र खीर का लेकर।
पूरन होगी इच्छा तेरी, कहा दशरथ को देकर।
इक खीर का भाग राजा ने कौशल्या को दीन्हा।
दूजा भाग प्रियतमा कैकेयी ने हँस कर लीन्हा।
फिर दोनों रानियों ने इक–इक भाग निकाला।
रानी सुमित्रा को दोनों ने इक–इक दिया निवाला।
गर्भवती भई तीनों रानी, सुख का मौसम आया।
जिस दिन राम गर्भ में आए अबध में आनंद छाया।"[35]

इस प्रकार जन्म के बाद नामकरण की पूरी घटना एवं भाव मानस से ही ग्रहण किया गया है। पटकथा के निर्माण में कहीं–कहीं ऐसा प्रतीत होता है मानो मानस की पंक्तियों का सरलार्थ कर संवाद की शैली में ढाल दिया गया है। तुलसीदास की भाँति रामानन्द सागर ने धारावाहिक के बीच–बीच में शिव पार्वती संवाद की भी सृष्टि की है, जो परस्पर राम की लीलाओं को देखकर मुग्ध होते रहते हैं।

---

[35] रामानन्द सागर, रामायण धारावाहिक पटकथा, पृ. 13, एपिसोड 1

आगे की बाल–क्रीड़ा, यज्ञोपवीत एवं गुरुकुल के प्रसंग को रामानन्द सागर ने दो एपिसोड में काफी मनोयोग से रचा है, जो उनकी अपनी निजी कल्पना है। राम भाइयों सहित अमराई में आम तोड़ने जाते हैं, और कौन अपने वाणों से कितना आम तोड़ता है, इसकी प्रतियोगिता होती है। किन्तु रामानन्द सागर ने जिन रूपों में इस दृश्य की सृष्टि की है वह नितांत ही लौकिक है, वहाँ अलौकिकता के लिए कोई जगह नहीं है। एक सामान्य बालक के मन की सहज भावनाओं को उन्होंने क्रीड़ाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। इस घटना को यदि तुलसीदास के भाव से देखें, तो यह सर्वथा अनुचित है कि रामानन्द सागर के लक्ष्मण की तरह तुलसीदास के लक्ष्मण आम के लिए भरत को मारे। यहाँ धारावाहिक का यह संवाद द्रष्टव्य है।

''शत्रुघ्न – राम भैया। उस ढेरी में भरत भैया का आम था। और लक्ष्मण भैया, भरत भैया को मार रहा है।''[36]

तुलसीदास के राम भाइयों समेत आम नहीं तोड़ते वरन् हर रोज हिरण का शिकार करते हैं और लाकर अपने पिता को दिखाते हैं।

''बंधु सखा संग लेहि बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई।।
पावन मृग मारहिं जियँ जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी।।''[37]

आगे चारों भाइयों के यज्ञोपवीत का वर्णन है, और शिक्षा हेतु सभी गुरुकुल प्रस्थान करते हैं गुरुकुल की पूरी संरचना गुरूकुल परम्परा के अनुकूल रची गई है। जहाँ उन्हें सिर्फ वेद–पुराणों का अध्ययन कराया जाता है बल्कि पशु–पक्षी एवं प्रकृति से प्रेम करना भी सिखाया जाता है। महर्षि वशिष्ठ की पत्नी अरुंधती द्वारा मातृवत प्रेम की कथा भी वर्णित है। जो स्नेह के साथ–साथ संगीत का भी ज्ञान देती है। रामानन्द सागर ने वशिष्ठ द्वारा शिक्षा प्रदान किए जाने के क्रम में षट्चक्र भेदन समेत ज्ञान योग की महत्ता का विस्तार से वर्णन किया है। लेकिन तुलसीदास सिर्फ एक चौपाई में यज्ञोपवीत एवं गुरूकुल की कथा का पटाक्षेप कर देते हैं –

[36] वही, पृ. 25, एपिसोड 2
[37] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ 175

''भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरू पितु माता।।
गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल विद्या सब आई।।''[38]

आगे भी राम के अलौकिक स्वरूप का वर्णन इन रूपों में करते हैं।

''जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।।''[39]

आगे विश्वामित्र द्वारा राम–लक्ष्मण के माँगने से लेकर जनकपुर पहुँचने और विवाह तक की कथा मानस के तर्ज पर ही बुनी गई है। अयोध्या से चलते समय गंगा के तट पर पहुँचकर विश्वामित्र ने राम–लक्ष्मण को गंगावतरण की कथा संक्षेप में सुनाई है। जिसे रामानन्द्र सागर ने दृश्यों के माध्यम से दिखाया है। तुलसीदास ने गंगावतरण की कथा एक अर्द्धाली में समाप्त कर दी क्योंकि उनका उद्देश्य चरित नायक की कथा को विस्तार देना है न कि उसके निमित्त प्रासंगिक कथाओं को। तुलसीदास लिखते हैं –

''गाधि सूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।।''[40]

रामानन्द सागर ने इस प्रसंग को वाल्मीकि से लेकर थोड़ा रोचक बनाया है, ताकि आम जन भी इस कथा को जान सके, उसी प्रकार अहिल्या की कथा भी कही गई है। क्योंकि तुलसीदास ने सिर्फ 'गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर' कहकर पटाक्षेप कर दिया है। श्राप के इसी कारण का रामानन्द सागर ने संक्षेप में वर्णन किया है। सीता के जन्म की कथा भी संक्षेप में बताई गई है। इन तमाम प्रासंगिक कथाओं के उद्‌भेदन का एक मात्र कारण यह है कि रामानन्द सागर दर्शकों की हर एक जिज्ञासा का शमन करते हुए आगे बढ़ते हैं क्योंकि उनके दर्शकों में हर वर्ग की जनता है जिस तक रामकथा का हर पहलू सम्प्रेषित हो सके आदि। शेष बालकाण्ड से जुड़ी कथाओं में ताड़का वध, विश्वामित्र द्वारा राम को दिव्य–अस्त्र प्रदान करना, सुबाहु–मारीच से राम–लक्ष्मण का युद्ध, मिथिला यात्रा, मिथिला की

---

[38] वही, पृ. 175
[39] वही, पृ. 175
[40] वही, पृ. 182

गलियों में दोनों भाइयों का भ्रमण, राम–लक्ष्मण की गुरू सेवा, पुष्प–वाटिका प्रसंग आदि पूर्णरूपेण 'मानस' आधृत हैं।

पुष्पवाटिका एवं धनुष प्रसंग को धारावाहिक में विशेष रूप से दर्शाया गया है। पुष्पवाटिका प्रसंग में पटकथा लेखक ने संवाद से अधिक गीतों एवं मानस की चौपाइयों के माध्यम से राम और सीता के बीच प्रेमपूरित भावों को अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। संवाद हीनता तुलसी के यहाँ भी है, वहाँ भी भाव ही प्रधान है। प्रेम का सांकेतिक रूप दोनों जगह वर्णित है। परन्तु रामानन्द सागर ने इस प्रसंग में घरेलू हास–परिहास को भी अपने संवादों में स्थान दिया है। जैसे –

''उर्मिला – उनके मुखारबिंद की ऐसी शोभा है कि उसके आगे बेचारा चंदा फीका लगता है। क्यों जीजी?

सखी – अरी! जीजी से क्या पूछती है? वह यहाँ हो, तब न। तन यहाँ है और मन पुष्पवाटिका में चोरी हो गया है।

उर्मिला – उँ–ऊँ जब मन ही अपना न रहे, तब मन की सुध–बुध कहाँ रहती है?''[41]

इस तरह के संवाद कथानक को सीधे आम–जीवन से जोड़ते हैं, जहाँ हर व्यक्ति इन भावनाओं से अपने आप को साधरणीकृत कर लेता है। धनुषयज्ञ के सम्पूर्ण प्रसंग को एक एपिसोड में विस्तृत एवं भावपूर्ण ढंग से दिखाया गया है। स्वयंवर, राजाओं द्वारा शिव–धनुष उठाने की स्पर्धा, राजा–जनक की निराशाजनक उक्ति, लक्ष्मण का क्रोध, विश्वामित्र द्वारा राम को धनुष भंग की आज्ञा देना आदि प्रसंग काफी नाटकीय तरीके से रचा गया है। बीच–बीच में संगीत की मधुर योजना पटकथा को संबल प्रदान करते हैं। परशुराम और लक्ष्मण संवाद का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। हालाँकि धनुषयज्ञ और लक्ष्मण–परशुराम संवाद में तुलसीदास का भी मन रमा है। लक्ष्मण–परशुराम संवाद को रामानन्द सागर ने काफी मनोयोगपूर्वक लिखा है। विवाह की पद्धति का जो सांस्कृतिक वर्णन तुलसी के यहाँ है, वह रामानन्द सागर के यहाँ नहीं है। तुलसीदास ने मिथिला की संस्कृति

[41] रामानन्द सागर, रामायण धारावाहिक पटकथा, पृ. 90, एपिसोड 6

का विशद वर्णन किया है किन्तु रामानन्द सागर ने 'मानस' की पंक्तियों, यजुर्वेद के मंत्रों, विष्णु सहस्त्रनाम स्त्रोतम की पंक्तियों के माध्यम से समस्त वैवाहिक पद्धति का वर्णन कर दिया है। दृश्यों की भावुकता कथानक को दर्शकों से जोड़े रखती है, इसमें कोई संशय नहीं है।

विवाहोपरान्त अयोध्याकाण्ड की कथा प्रारम्भ होती है। तुलसीदास ने विवाहोपरान्त राज्याभिषेक की कथा प्रारम्भ की है, परन्तु धारावाहिक लेखक ने दाम्पत्य के कुछ सुखद पलों एवं पारिवारिक उल्लास का भी वर्णन किया है। विवाह के बाद नेग का यह रस्म उल्लेखनीय है –

"कैकेयी – सीता बेटी! अपने हाथ से दूध–भात राम को खिलाओं और घुल–मिल के एक हो जाओ। लो, खिलाओ। राम। अब तुम बहु को खिलाओ।

लक्ष्मण – अब बेटों से बढ़कर बहुएँ हो रही हैं भैया।

कैकेयी – क्या बहू–बहू लगा रखा है? अरे, हमारी तो बेटियाँ है। – राम! हाथ बढ़ाओ। खिला बहू को। दीदी! अब भरत से कहो वह खिलाए। – चलो, अब तुम दोनों कंगन ढूँढो। जो पहले ढूँढ कर निकालेगा वही जीतेगा। देखें कौन निकालता है? चलो जल्दी से ढूँढ के निकालो।"[42]

इस पारिवारिक उल्लास के बीच राम अपनी पत्नी सीता के साथ एक सफल दाम्पत्य की नींव इन शब्दों में रखते हैं –

"तो पहली आज्ञा यह है कि मेरी दासी बनकर नहीं रहना। मेरी अर्द्धांगनी, मेरी मित्र, सखा, साथी बनकर मेरे साथ चलना। मेरे हर अच्छे काम में मेरा साथ देना और कभी मुझे पथ–भ्रांत होते देखो तो मुझे भटकाने से रोकना। एक अच्छे मित्र, एक अच्छे साथी का यही कर्तव्य है।"[43] इन प्रसंगों के माध्यम से धारावाहिक प्रस्तोता अपने सामाजिक सरोकार को अभिव्यक्त करते हैं। जाहिर है रामानन्द सागर एक आदर्श पत्नी की जो रूपरेखा खींच रहे हैं, वहीं वाल्मीकि के यहाँ हो या फिर तुलसीदास के यहाँ हो यह आवश्यक नहीं है क्योंकि हर लेखक की

[42] वही, पृ. 147, एपिसोड 11
[43] वही, पृ. 148, एपिसोड 11

अपनी एक जीवन दृष्टि होती है और साथ ही वह अपने युगबोध से भी गहरे रूपों में जुड़ा होता है। तीनों के लेखन का समय भिन्न है, तीनों की युगानुरूप परिस्थितियाँ भी भिन्न हैं। इसलिए सफल दाम्पत्य में जिस मित्रवत भाव की कल्पना रामानन्द सागर ने की है, वह उनका अपना सामाजिक सरोकार है।

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, रामानन्द सागर छोटी–छोटी उपकथाओं को भी मुख्य कथा के साथ जोड़ते हुए चलते हैं, जिससे दर्शकों को रामकथा से जुड़े किसी भी प्रसंग हेतु अन्य स्रोतों का सहारा न लेना पड़े और वह पूर्णरूपेण न सही अंशतः भी उससे परिचित हो। जैसे मामा युद्धाजित के साथ भरत का ननिहाल गमन ऐसी ही कथा है, जिसका वर्णन वाल्मीकि के यहाँ है किन्तु तुलसीदास के यहाँ नहीं है। इस प्रकार युद्धाजित की कथा, विश्वामित्र का मेनका द्वारा तप भंग की कथा आदि वाल्मीकि रामायण से प्रेरित है। रामानन्द सागर ने मंथरा प्रसंग को भी वाल्मीकि की भाँति काफी सहजता से रचा है। यहाँ भी मंथरा किसी दैवीय शक्ति से प्रभावित होकर नहीं, बल्कि राम की दासियों एवं नगरवासियों को प्रफुल्लित देखकर स्वभाववश ईर्ष्या करती है और अपने प्रति की गई उपेक्षा का बदला लेने के लिए कैकेयी को भड़काती है।

''दासी : एक – अरी कुबड़ी! क्यों भभक रही है? आज तो खुशी का दिन है।

मंथरा – काहे की खुशी? काहे की खुशी?

दासी : एक – अरी बुढ़िया! आज हमारे राम राजा बनेंगे, राजा।

मंथरा – राम राजा बनेगा। अरी यही तो दुःखड़ा है। साँप लोट रहा है छाती पर।''[44]

आगे कैकेयी द्वारा वर माँगे जाने की कथा है किन्तु धारावाहिक प्रस्तोता ने इसमें दोनों वर के निमित्त देवासुर संग्राम का भी संक्षिप्त परिचय दिया है, जिसका मानस में वर्णन नहीं है। तुलसीदास ने सिर्फ संकेत किया है –

---

[44] वही, पृ. 170–171, एपिसोड 13

"सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका।।
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी।।"[45]

कैकेयी दशरथ संवाद एवं राम–कैकेयी संवाद को भी धारावाहिककार ने काफी मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। न सिर्फ इन प्रसंगों को बल्कि समस्त वनगमन प्रसंग ही मार्मिक बन पड़ा है। राम और निषादराज गुह का प्रसंग भी काफी रोचक एवं दृश्यस्पर्शी है। पूरी आँचलिकता के साथ इन दृश्यों का चित्रांकन रामानन्द सागर ने किया है, परन्तु केवट प्रसंग का जैसा भाव एवं उसकी जिस प्रकार की भावपूर्ण अभिव्यक्ति तुलसीदास ने की है वैसी अभिव्यक्ति धारावाहिक में दिखाई नहीं पड़ती। तुलसीदास के केवट की जो छवि मानस एवं लोक में है, वैसी धारावाहिक में नहीं जान पड़ती। सामान्य संवादों एवं गीतों के माध्यम से भावुकता उपजाने की कोशिश अवश्य की गई है।

"केवट – अइसन नादान न बनो कृपानिधान। ई चरनन का बखान हमऊँ सुनै। इन्हीं चरनन की रज से पत्थर की सिला सुंदर नारी बन गई। इन्हीं चरणों के जादू–टोना से हमरी काठ की नैया न जाने का से का बन जाए और एक बार नैया गई तो केवट की हो गई जै गंगा मैया की। न भगवन् न। हम आप कै नाव में नाहीं चढ़ावेंगे।

केवट – यदि इन चरणों की रज माँह जादू है तो पहिले हम आपके चरन पखारेंगे। खूब मल–मल कर चरन–रज धोएंगे। फिर ऊ चरन–रज वाला पानी पीकर देखेंगे। यदि हमें ऊका जादू–टोना से कुछ न हुआ तो नाव पर पाँव रखने देंगे। बस! सोच लेयो। स्वीकार होय न मँगाऊँ गंगा जल। अरे ओ पर्वतिया! ई सोचत हैं तब तक कठौत में गंगा जल भरि लया।"[46]

इस प्रकार के संवादों की अदायगी, प्रसंग का उल्लेख तो करते हैं लेकिन तुलसीदास की उस पात्रानुकूल निष्ठा को प्रदर्शित नहीं कर पाते। आगे के प्रसंगों में भारद्वाज मुनि से भेंट से लेकर दशरथमरण तक की कथा पूर्णरूपेण 'रामचरितमानस' पर आधृत है सिर्फ दशरथमरण के समय पूर्वाभास के रूप में

---

[45] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 329
[46] रामानन्द सागर, रामायण धारावाहिक पटकथा, पृ. 242–243, एपिसोड 18

श्रवण कुमार एवं उसके माता–पिता द्वारा राजा दशरथ को श्राप की कथा अलग से अनुस्यूत की गई है, जो वाल्मीकि रामायण से गृहीत है। राम–वाल्मीकि प्रकरण, चित्रकूट वास, कोल–किरातों द्वारा सेवा आदि प्रकरण पूर्णरूपेण मानस से ग्रहण की गई है। अयोध्याकाण्ड की सबसे प्रमुख घटना है – चित्रकूट प्रसंग। चित्रकूट सभा का वर्णन धारावाहिक के दो एपिसोड में हुआ है। दृश्यों के भावपूर्ण संयोजन एवं संवादों की अदायगी से पूरा प्रसंग जीवंत हो उठा है। थोड़ी बहुत तथ्यात्मक उलटफेर के इतर प्रसंग लगभग समान हैं। जैसे – रामचरितमानस में वशिष्ठ राम को दशरथ के स्वर्गगमन की बात बताते हैं और धारावाहिक में भरत। संवादों में लंबे–लंबे उपदेशों एवं नीति–वचनों ने प्रसंग की गंभीरता को और भी बढ़ा दिया है। कुछ जीवनानुभव से कुछ नीति–सूक्तों से और कुछ मानस का भावानुवाद, पटकथा में प्रस्तुत किया गया है। पिता की मृत्यु से दुखी चित्रकूट में राम से वशिष्ठ कहते हैं –

''राम! लक्ष्मण! राजा हो या रंक सभी मानव अपने–अपने कर्मानुसार इस मृत्युलोक में आते हैं और अपने भाग्यानुसार सुख–दुःख का भोग पूरा करके परलोक में चले जाते हैं, यही विधि का विधान है। हानि–लाभ, जीवन–मरण, यश–अपयश विधि हाथ है।''[47]

संवाद के अंत में प्रयुक्त इसी सूक्ति का प्रयोग रामचरितमानस में वशिष्ठ दशरथमरण से संतप्त भरत के लिए अयोध्या में करते हैं –

''सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु विधि हाथ।।''[48]

नीति और धर्म के लंबे–लंबे संवाद रामानन्द सागर ने काफी बारीकी से रचा है। पात्रानुकूल संवादों की अदायगी ने पटकथा को विश्वसनीय एवं गंभीर बनाया है। भरत के नंदीग्राम प्रवास के प्रसंग का भी वर्णन किया गया है, जो मानस में संक्षेप में वर्णित है।

---

[47] वही, पृ. 324, एपिसोड 24
[48] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 441

सीता–अनुसूया प्रसंग भी सामान्य रूप से ही वर्णित है फर्क इतना है कि धारावाहिक में अनुसूया मानस के आधार पर नहीं बल्कि वाल्मीकि रामायण के अनुसार नारी धर्म की शिक्षा देती है –

''नगरस्थों वनस्थों वा शुभो वा यदि वाशुभः।
यासं स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः।।
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः।।''[49]

अर्थात पति राजमहल में रहता हो या कुटिया में, वह भाग्यविहीन हो अथवा धनहीन ही क्यों न हो, उत्तम स्वभाव वाली नारियों के लिए वह सर्वश्रेष्ठ देवता के समान है। इस प्रकार भाव दोनों ही जगह लगभग समान है सिर्फ संवाद बदल दिए गए हैं।

दण्डकारण्य में ऋषि–मुनियों की अस्थियाँ देखकर राम द्वारा राक्षस संहार का संकल्प, सुतीक्ष्ण मुनि से मिलन आदि कथा 'मानस' से ली गई है किन्तु अगस्त्य मुनि का प्रसंग 'वाल्मीकि रामायण' पर आधृत है। धारावाहिक में अगस्त्य राम को दिव्य अस्त्र प्रदान करते हैं जो मानस में नहीं है। आगे अगस्त्य से जुड़ी छोटी–छोटी उपकथाएँ जैसे – विंध्याचल एवं शिव–विवाह से जुड़ी कथा, जोड़ी गई है। आगे जटायु की कथा परिचय स्वरूप में कही गई है। बीच–बीच में अयोध्या की कथा भी स्मृति के रूप में चलती रहती है। शूर्पणखा प्रसंग से लेकर सीताहरण तक की कथा भी 'मानस' आधारित कथा है किन्तु बीच–बीच में रावण अकंपन संवाद, नल कुबेर की कथा आदि प्रासंगिक कथाओं को 'वाल्मीकि रामायण' से ग्रहण किया गया है। कबंध उद्धार एवं शबरी को नवधा–भक्ति का उपदेश भी मानसाधृत है। 'मानस' की चौपाइयों के माध्यम से पटकथा बुनी गई है।

---

[49] महर्षि वाल्मीकि, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, भाग 1, पृ 546

किष्किन्धाकाण्ड की समस्त कथा मूलरूप से 'वाल्मीकि रामायण' से ली गई हैं मुख्य कथा के साथ जिन–जिन उपकथाओं को जोड़ा गया है, वे समस्त उपकथाएँ भी 'वाल्मीकि रामायण' में वर्णित हैं जैसे – सुग्रीव द्वारा बालि के पराक्रम का वर्णन करते समय बालि का दुंदुभि दैत्य को मारकर उसकी लाश को मतंग वन में फेकना, मतंग मुनि से बालि का शापित होना, राम द्वारा दुंदुभि के अस्थिसमूह को दूर फेंकना, और सुग्रीव का उनसे साल–वृक्षों का भेदन के लिए आग्रह करना आदि वाल्मीकि रामायण से ली गई उपकथाएँ हैं। सुग्रीव द्वारा हनुमान को राम का भेद लेने हेतु भेजने पर हनुमान इन शब्दों में परिचय प्राप्त करते हैं –

''किं प्रयोजनम्? किं प्रयोजनम्?
''इमां नदी शुभजलां शोभयंतो तरस्विनौ।।
प्रभया पर्वतेंद्रो ऽसौ युवरोवभासितः।
श्री मंतौ रूपसंपन्नौ वृषभश्रेष्ठ विक्रमौ।''
एवं मा परिभाषितं कस्माद्वै नाभिभाषितः।[50]

अर्थात इस सुंदर जलवाली नदी सरीखी पम्पा को सुशोभित करते हुए आप दोनों वेगशाली वीर कौन है? आप दोनों की प्रभा से गिरिराज ऋष्यमूक जगमगा रहा है। आप कांतिमान तथा रूपवान है। आप विशालकाय वृषभ के समान मंदगति से चलते हैं हे वीरों! इस तरह मैं बारम्बार आपका परिचय पूछ रहा हूँ, आपलोग मुझे उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं, आगे ऋष्यमूक पर्वत पर आभूषण परीक्षण के वक्त लक्ष्मण कहते हैं –

''नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुंडले नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवंदनात्

[50] रामानन्द सागर, रामायण धारावाहिक पटकथा, पृ 471, एपिसोड 35

भैया! मैंने तो भाभी के मुख पर कभी दृष्टि डाली ही नहीं। इसलिए उनके कुंडलों और बाजुबंद की मैं नहीं पहचानता। हाँ, प्रतिदिन उनके चरणों पर वंदना करने के कारण मैं उनके नूपुरों को पहचानता हूँ।''[51]

इस प्रकार के समस्त संवादों एवं पटकथाओं की सृष्टि वाल्मीकि से गृहीत हैं। बालि और सुग्रीव की शत्रुता के कारणों को भी धारावाहिक प्रस्तोता ने संक्षेप में वर्णित किया है। बालि वध की समस्त कथा 'वाल्मीकि रामायण' से ली गई है किन्तु पटकथा निर्माता ने बीच–बीच में मानस का भी उपयोग किया है किन्तु गीतों के माध्यम से।

''धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाई।।
मै बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।।''[52]

या

''अनुज बधु भगिनी सुतनारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।।''[53]

आदि चौपाइयों का उपयोग संवादों की रिक्तता को भरने के लिए किया गया है। जबकि राम बालि को उपदेश संस्कृत में वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही देते हैं।

आगे सुग्रीव के राज्याभिषेक को यजुर्वेद एवं ऋग्वेद की पंक्तियों के माध्यम से गीतों द्वारा चित्रित किया गया है। वर्षा ऋतु में राम–सीता की मनःस्थिति का चित्रण गीतों के माध्यम से बड़े मार्मिक ढंग से किया गया है। गीतों में जीवन के राग–रंजित क्षणों को पूर्वाभास के रूप में दिखाया गया है।

इधर सुग्रीव राज्याभिषेक के उपरांत राग–रंग में व्यस्त हो जाते हैं, उन्हें राम से की गई सीता के खोज की प्रतिज्ञा का ध्यान नहीं रहता। फलतः राम सुग्रीव को याद दिलाने के लिए लक्ष्मण को भेजते हैं कोप–आवेश में लक्ष्मण

[51] वही, पृ. 485, एपिसोड 36
[52] वही, पृ. 514, एपिसोड 38
[53] वही, पृ 516, एपिसोड 38

किष्किन्धा में प्रवेश करते हैं। सुग्रीव क्षमा माँगते हैं। समस्त वानर भू–पतियों द्वारा सीता की खोज का अभियान प्रारम्भ होता है। दक्षिण दिशा में हनुमान–अंगद आदि यूथपति खोज हेतु जाते हैं। स्वयंप्रभा मनोबल से वानर दल को सिंधु तट पर पहुँचाती है और सभी को निर्देश देकर बदरीकाश्रम चली जाती है। वहीं सिंधु तट पर सबकी भेंट जटायु के भाई संपाति से होती है। ये समस्त कथाएँ 'रामचरितमानस' में भी वर्णित है किन्तु कथा विस्तार हेतु रामानन्द सागर ने 'वाल्मीकि' का सहारा लिया है। जैसे विनन्द और आचिष्यमान जैसे पात्रों की सृष्टि एवं सम्पाति की आत्मकथा आदि वृतांत पूर्णरूपेण वाल्मीकि से ली गई है। हनुमान का जामवंत द्वारा बल स्मरण की चर्चा 'मानस' में की गई है किन्तु इसके हेतु कथाओं को धारावाहिक प्रस्तोता ने जामवंत के माध्यम से कहलवाया है। इस प्रकार रामानन्द सागर कथा की छोटी–छोटी हेतु कथाओं को भी प्रकट रूप में हो या फिर पूर्वाभास के रूप में, प्रस्तुत करते हुए चलते हैं।

सुंदरकाण्ड की कथा दोनों ही महाकाव्यों में लगभग समान है, थोड़े बहुत कथा विस्तार एवं प्रासंगिक कथाओं के। आधिकारिक कथा लगभग समान है। धारावाहिक निर्माण की पृष्ठभूमि में पटकथा निर्माता ने 'वाल्मीकि रामायण' को ही केंद्र में रखा है। जामवंत द्वारा हनुमान को विस्मृत बल याद दिलाने के पश्चात हनुमान का विराट रूप धारण करना, सागर पार करते समय सूरसा एवं सिंहिका के साथ संघर्ष एवं बुद्धि एवं चातुर्य से हनुमान का बच निकलना, लंका में सीता की खोज आदि वृतांत 'रामचरितमानस' में भी वर्णित है, किन्तु रामानन्द सागर ने उनको वाल्मीकि रामायण के आधार पर विस्तार दिया है।

'मानस' में जामवंत हनुमान को विस्मृत बल की याद इन शब्दों में दिलाते हैं –

''कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं।''[54]

किन्तु पटकथा निर्माता ने अंगद, जामवंत एवं अन्य वानरों समेत हनुमान को विस्मृत बल के स्मरण के लिए प्रेरित किया है। इसके लिए हनुमानष्टक की पंक्तियाँ समेत लम्बी गीत की श्रृंखला प्रस्तुत की गई है, जिसने कथा को कल्पना

[54] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ 654

से जोड़ दिया है। फलतः दर्शक भी कल्पना को साकार रूप में देखता है। यह पटकथा निर्माता की बड़ी सफलता है। हनुमान–विभीषण भेंट का दृश्य भी काफी मार्मिक है। यह 'रामचरितमानस' की कथा पर आधृत है। पटकथा हेतु संवाद भी दोनों महाकाव्यों को ही केंद्र में रखकर लिखा गया है, किन्तु कुछ चीजें भारतीय संस्कृति के अनुकूल भी गढ़ी गई है। हनुमान जब विभीषण से मिलते हैं, उस समय हनुमान रामभक्त होने की पहचान इन वाक्यों में देते हैं।

''आकाश मार्ग से जा रहा था। इस आँगन में तुलसी का चौरा देखकर, प्राचीर में शंख तथा चक्र का चिह्न देखकर समझ गया कि यह किसी नारायण–भक्त का घर है।''[55]

आगे रावण–सीता संवाद एवं रावण–मन्दोदरी संवाद आदि, दोनों महाकाव्यों से तथ्य लेकर रचे गए हैं। त्रिजटा का स्वप्न में राक्षसों के विनाश एवं राम के विजय की सूचना, पूर्णरूपेण 'वाल्मीकि रामायण' से अंकित की गई है। आगे हनुमान द्वारा वृक्ष से सीता को राम कहानी सुनाना भी वहीं से प्रेरित है। सम्पूर्ण राम की कहानी गीतों के माध्यम से कही गई है। अक्षयकुमार का वध, मेघनाथ द्वारा हनुमान को बाँधकर रावण दरबार में लाना, हनुमान को दण्डस्वरूप पूँछ में आग लगाना, लंकादहन आदि वृतांत 'वाल्मीकि' से प्रभावित है। विभीषण द्वारा रावण को दूत की अबध्यता की बात समझाने एवं धर्म और नीति का उपदेश देने की घटना का वर्णन भी धारावाहिक में किया गया है। 'रामचरितमानस' में सीता द्वारा हनुमान को आशीर्वाद देने का प्रसंग अशोकवाटिका में लंकादहन से पूर्व होता है किन्तु धारावाहिक में यह प्रसंग लंकादहन के पश्चात वर्णित है, साथ ही आशीर्वाद हेतु पटकथा में निर्माता ने 'मानस' की पंक्तियों का उपयोग किया है –

''आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना।
होहु तात बल सील निधाना।।
अजर–अमर गुन निधि सुत होहू।
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।

[55] रामानन्द सागर, रामायण धारावाहिक पटकथा, पृ. 585, एपिसोड 43

बार बार नाएसि पद सीसा।

बोला वचन जोरि कर कीसा।।

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता।

आसिष तब अमोघ विख्याता।।''[56]

आगे चूड़ामणि की कथा मानस के अनुसार वर्णित है। हनुमान का लंका से लौटकर आना और सीता की पूरी व्यथा सुनाना भी मानस से प्रेरित है।

आगे की कथा दो सामान्तर रूपों में चलती है। एक ओर राम लंका पार जाने हेतु सभी सहयोगियों से विचार विमर्श करते हैं, दूसरी ओर रावण अपने दरबार में परिषदों के साथ विचार–विमर्श करता है। विभीषण रावण को सीता को लौटाने की सम्मति देता है, परन्तु रावण पद–प्रहार कर उसे दरबार से बहिष्कृत कर देता है। विभीषण राम की शरण में आता है और राम इधर वरुण पूजन हेतु सागर तट पर बैठते हैं। विभीषण की शरणागति का प्रसंग हालाँकि तुलसीदास ने संकेत में ही निपटा दिया है किन्तु पटकथा निर्माता ने इसे पूरे पारिवारिक घटनाओं एवं निर्णयों के साथ इसकी कल्पना की है। जिसमें विभीषण न सिर्फ रावण से वरन अपनी माँ से भी अन्तर–व्यथा प्रकट करता है। यह पूरा प्रसंग एक एपिसोड में रचा गया है। कथा दोनों ही रामायणों से ली गई है। जहाँ–जहाँ नीति एवं धर्मोपदेश की बात है, वहाँ प्रसंगानुसार दोनों महाकाव्यों का उपयोग किया गया है। विभीषण द्वारा रावण को धर्म और नीति का यह कथन द्रष्टव्य है –

''सचिव वैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राजधर्म तन तीनि कर होई बेगिहीं नास।।''[57]

यह मानस के सुंदरकाण्ड की उक्ति है। जबकि राम अपने शरणागत विभीषण के बारे में धर्म एवं नीति की बात हनुमान को वाल्मीकि के युद्धकाण्ड से देते हैं –

''आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणागतः।

अरिः प्राणान्परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना।।

[56] वही, पृ. 628, एपिसोड 47
[57] वही, पृ. 653, एपिसोड 49

यदि शत्रु भी शरण में आए और दया की याचना करे तो उसे भी निराश नहीं करना चाहिए। शत्रु दुःखी हो या दुरात्मा, यदि वह विपक्षी की शरण में आ जाए तो निर्मल मन वाले श्रेष्ठ पुरुष को अपने प्राणों का मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिए।''[58]

इस प्रकार रामानन्द सागर दोनों ही महाकाव्यों से धर्म एवं नीति विषयक वृतांतों का चयन करते हैं।

राम द्वारा विभीषण का राज्याभिषेक, शार्दूल के कहने पर रावण का शुक को दूत बनाकर सुग्रीव के पास संदेश भेजना वहाँ वानरों द्वारा पेरशान किया जाना, राम के कहे जाने उसका छोड़ा जाना और सुग्रीव द्वारा शुक के माध्यम से रावण को संदेश प्रेषित करना आदि वृतांत वाल्मीकि रामायण से प्रेरित हैं। पटकथा का आधार अवश्य ही 'वाल्मीकि रामायण' है किन्तु रामानन्द सागर के विचार एवं उनकी सामाजिक दृष्टि का दर्शन पटकथाओं में सर्वत्र दिखाई देता है। उदाहरण स्वरूप विभीषण का राज्याभिषेक प्रसंग देखा जा सकता है, जहाँ रावण का संवाद पूर्णरूपेण पटकथा लेखक की अपनी व्यंग्य दृष्टि है –

''रावण – एक भिखारी ने दूसरे भिखारी से कहा – मैं तुम्हें संसार का सबसे बड़ा राज्य प्रदान करता हूँ और दूसरे भिखारी ने पहले से कहा – मैं तुम्हें तीनों लोकों का भगवान बना देता हूँ एक दर–दर भटकते हुए कंगाल ने दूसरे कंगाल को झूठा सपना दिखाकर निहाल कर दिया। सूखी रेत पर बैठकर माथे पर पानी का तिलक लगाने से लंका नरेश का राजतिलक हो गया? वाह राम! वाह!''[59]

सेतुबंध का दृश्य कई वतांतों में रचा गया है। एक ओर रावण का उपहास है, दूसरी ओर सीता की मनःस्थिति है, तीसरी तरफ कौशल्या की मनोदशा है। इन सबके मध्य पटकथा को बुना गया है। राम शिव–पूजन के पश्चात सेतु बाँधने का शुभारम्भ करते हैं। समस्त वानर सेना समुद्र पार करती है। आगे सीता के समक्ष रावण राम का कटा हुआ मस्तक लाता है। सीता शोक–विह्वल हो उठती है।

---

[58] वही, पृ. 667, एपिसोड 50
[59] वही, पृ. 673, एपिसोड 51

आगे मन्दोदरी द्वारा रावण को समझाना, रावण का गुप्तचरों को श्रीराम के शिविर में भेजना, उनका पकड़ा जाना और राम द्वारा क्षमादान आदि समस्त कथाएँ 'वाल्मीकि रामायण' से ली गई हैं। बीच–बीच में 'मानस' की चौपाइयों को प्रसंगानुसार भरा गया है। यजुर्वेद के मंत्रों का उपयोग किया गया है। गीतों के लंबे–लंबे अन्तरों से कथा की रिक्तता एवं दृश्यों को बारीकी से भरा गया है। रावण के संगीत गोष्ठी की घटना 'मानस' के आधार पर रची गई है। रावण का मुकुट एवं मन्दोदरी के कर्णफूल का गिरना 'रामचरितमानस' के लंकाकाण्ड में वर्णित है लेकिन आगे शुक और सारन का गुप्त रूप में राम की सेना में प्रवेश का वृतांत 'वाल्मीकि रामायण' पर आधारित है।

तत्पश्चात राम द्वारा लंका का सर्वेक्षण करना, विभीषण द्वारा इस क्रम में राम और लक्ष्मण को समस्त लंकानगरी की जानकारी प्रदान करना, सुग्रीव का उत्तेजित होना और रावण के साथ मल्ल–युद्ध आदि वृतांत पूर्णरूपेण वाल्मीकि से गृहीत है। अंगद प्रकरण दोनों ही महाकाव्यों का प्रसंग है, इसे पटकथा लेखक ने दो एपिसोड में रचकर विस्तार प्रदान किया है। आधार 'वाल्मीकि' ही हैं किन्तु बीच–बीच में गायन द्वारा 'मानस' की पंक्तियों का उपयोग कर रामानन्द सागर ने जनता की भावनाओं को परखने का काम किया है। अंगद–रावण संवाद में रावण से जुड़ी कई घटनाओं का उल्लेख भी पटकथा में वर्णित है, जिसे व्यंग्य स्वरूप अंगद द्वारा कहलवाया गया है।

''अंगद – रावण–रावण। कितनी बार इस नाम को दोहराएंगे महाराज? मैं यह जानना चाहता हूँ कि जगत में कितने रावण हैं? मैंने कितने ही रावणों के नाम अपने कानों से सुन रखे हैं। महाराज इनमें से आप कौन से रावण हैं? एक रावण तो मैंने सुना है कि वह राजा बालि को जीतने पाताल में गया था। वहाँ बच्चों ने उसे घुड़साल में बाँधकर पीटा था। तब बालि ने ही उसे दया करके छुड़वा दिया। और एक रावण के विषय में मैंने सुना है कि सहस्त्र बाहु ने एक जंतु की भाँति कीड़ा समझकर उसे पकड़ लिया था। तब पुलत्स्य मुनि उसे छुड़वा लिया था। एक और रावण की बात कहने में संकोच लगता है क्योंकि कहते हैं कि मेरे पिताश्री उसे अपनी काँख में दबाकर अपनी पूजा करते रहे। ऐसे–ऐसे वीरों में से

आप कौन से रावण हैं महाराज?''[60] इस प्रकार की व्यंग्यपूर्ण उक्तियों से कथा में सरसता तो आती ही है, साथ ही कथा से जुड़े तथ्यों की भी जानकारी मिलती है। रामानन्द सागर ने पटकथा निर्माण में संवादों के दौरान पात्रों एवं घटनाओं से जुड़े तथ्यों को प्रसंगों के साथ विस्तार दिया है। जैसे – माल्यवान और मन्दोदरी के पिता मय का रावण को सीता लौटाने की सम्मति देना, साथ ही रावण की माता कैकसी द्वारा रावण को समझाने का प्रयास आदि तमाम तथ्य वाल्मीकि रामायण से जुटाए गए हैं।

आगे मन्दोदरी रावण से सीता को लौटाने हेतु अनुनय–विनय करती है और रावण अपने हठ पर अटल रहता है। यह प्रसंग तुलसीदास के यहाँ भी है लेकिन पटकथा के निर्माण की पृष्ठभूमि 'वाल्मीकि' से प्रभावित है। युद्ध के प्रथम दिन प्रहस्त और मकराक्ष आदि के युद्ध का वर्णन है। अगले दिन रावण स्वतः राम से युद्ध करता है और शस्त्र–विहीन होकर हताश पैदल ही लंका लौट जाता है। बीच में शिव, ब्रह्मा, इंद्र अगस्त्य आदि देवता एवं ऋषि राम को विजयी होने की शुभकामना देते हैं। कुम्भकर्ण का वृतांत दो एपिसोड में रचा गया है निद्रा भंग से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक की कथा काफी मनोयोग से रची गई है। सेनापति विरूपाक्ष द्वारा कुंभकर्ण को जगाया जाता है। कुंभकर्ण और रावण में संवाद होता है। रणभूमि में विभीषण भी कुंभकर्ण को समझाने का प्रयास करते हैं। अंततः राम के हाथों कुंभकर्ण की मृत्यु होती है। तत्पश्चात अतिकाय, नरांतक, देवांतक अपने पिता रावण को आश्वासन देकर युद्ध के लिए कूच करते हैं अंगद द्वारा नरांतक का वध होता है। लक्ष्मण द्वारा अतिकाय का वध होता है। अतिकाय की माता धन्यमालिनी विलाप करती है और फिर मेघनाद युद्ध हेतु प्रेरित होता है। यह पटकथा 'वाल्मीकि रामायण' से प्रेरित है। आगे भी मेघनाद के पराक्रम की कथा एवं राम–लक्ष्मण को नाग–पाश में बाँधने की घटना, नाग–पाश बाँधे जाने का समाचार मिलने पर सीता का शोकाकुल होना, हनुमान द्वारा गरुड़ को लाना और राम–लक्ष्मण का नाग–पाश से मुक्त होना ये तमाम प्रसंग 'वाल्मीकि रामायण' से बुने गए हैं।

---

[60] वही, पृ. 757, एपिसोड 57

लक्ष्मण के शक्ति–बाण का प्रसंग तुलसीदास के 'रामचरितमानस' से ग्रहण किया गया है। शक्ति–प्रहार से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना और उपचार हेतु हनुमान का लंका से सुषेण वैद्य को लाना, हनुमान का संजीवनी बूटी हेतु प्रस्थान, कालनेमि उद्धार, भरत के बाण से हनुमान का अयोध्या की सीमा पर गिरना, आदि समस्त कथाएँ 'रामचरितमानस' से प्रभावित हैं संवादों के माध्यम से राम के विलाप एवं कथा की भावुकता को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। उसी प्रकार बीच–बीच में गीतों का प्रयोग कर न सिर्फ पटकथा की भावुकता को बढ़ाया गया है बल्कि कथा को गति भी प्रदान की गई है।

> ''पल–पल व्याकुलता बढ़े छिन–छिन छीजे रैन।
> करें विलाप हरि मनुज–सम कहत बंधु से बैन।
> मेरे लखन दुलारे, बोल कछु बोल।
> मत भैया को रूला रे, बोल कछु बोल,
> भैया–भय्या कह के,
> भैया–भैया कहके रस प्राणों में घोल।''[61]

धारावाहिक में लक्ष्मण के शक्तिबाण का प्रसंग कुम्भकर्ण के बाद वर्णित है, जबकि तुलसीदास के यहाँ यह प्रसंग पूर्व में वर्णित हैं।

मेघनाद का निकुम्भला मंदिर में यज्ञ आरंभ करना और यज्ञ–विध्वंस के लिए लक्ष्मण द्वारा महासंग्राम की कथा दोनों ही महाकाव्यों में वर्णित है। तुलसीदास ने मेघनाद द्वारा यज्ञ एवं वानरों द्वारा ध्वंस की कथा संक्षेप में वर्णित की है। किन्तु 'वाल्मीकि' के यहाँ यह कथा विस्तार से वर्णित है। पटकथा निर्माता ने इसी के आधार पर कथा की सृष्टि की है। मेघनाद–वध के पश्चात रावण का युद्ध हेतु उद्धत होना आदि भी इसी पृष्ठभूमि रचे गए हैं किन्तु अगस्त्य मुनि का श्रीराम को आदित्य मंत्र देना और रावण का असुर–सेना को अंतिम संबोधन करना पटकथा लेखक की अपनी सृष्टि है, जिसे उन्होंने प्रसंगानुसार चित्रित किया है।

---

[61] वही, पृ. 898, एपिसोड 69

पटकथा के अंतिम भाग में राम–रावण युद्ध का वृतांत भी वाल्मीकि से गृहीत है। युद्ध के प्रथम दिन रावण का मूर्च्छित होना एवं सारथी का युद्ध क्षेत्र से रथ ले जाना, पुनः रावण की फटकार सुन सारथी का युद्ध क्षेत्र में लौटना, युद्ध की अंतिम रात को मन्दोदरी का रावण को समझाना, रावण का महाकाल के सम्मुख उद्‌गार प्रकट करना, इंद्र द्वारा श्रीराम की सेवा में दिव्य रथ भेजना आदि कथा मुख्य रूप 'वाल्मीकि' से ली गई हैं किन्तु इनमें अधिकांश घटनाओं का वर्णन तुलसीदास के यहाँ भी है। दोनों महाकाव्यों के सामंजस्य का प्रयास पटकथा निर्माता ने किया है। बीच–बीच में 'रामचरितमानस' की चौपाइयों का उपयोग कर कथा को 'मानस' से जोड़ने का प्रयास किया गया है। रावण की मृत्यु के कारणों को दोनों ही महाकाव्यों से ग्रहण किया गया है। जैसा कि पीछे के उपअध्याय में कहा जा चुका है कि 'रामायण' में इंद्र का सारथी मातलि राम को रावण पर ब्रह्मास्त्र चलाने का परामर्श देता है किन्तु 'मानस' में विभीषण उन्हें नाभि में अमृत होने का रहस्य बताते हैं। रामानन्द सागर ने रावण–वध के दोनों कारणों का उपयोग पटकथा में किया है।

''विभीषण – ''प्रभु! ब्रह्माजी के वरदान से दशानन की नाभि में अमृत है। कुंडलाकृति से युक्त अमृततत्त्व का मूल है वह। उसके प्रभाव से एक शीश कटते ही दूसरा शीश उत्पन्न हो जाता है। प्रभु! आप पहले आग्नेय शस्त्र का उपयोग करके नाभि–विवर में मूल का अमृत सुखा दीजिए तभी उसका अंत हो सकेगा।

मातलि – ''प्रभु! इस राक्षस का वध करने के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कीजिए। देवताओं ने जो इसके विनाश का समय बताया था। अब वह आ पहुँचा है प्रभु!''[62]

रावण की मृत्यु के पश्चात विभीषण के राज्याभिषेक की कथा है। सीता की अग्नि–परीक्षा, ब्रह्मा, इंद्र आदि देवता का श्रीराम की स्तुति करना, दशरथ का आशिर्वचन के लिए प्रकट होना, पुष्पक विमान पर राम का विदा होना, मार्ग में भारद्वाज आश्रम पर रुकना, निषादराज से भेंट तत्पश्चात अयोध्या पहुँचना, अयोध्या में सर्वत्र हर्षोल्लास आदि वृतांत भी 'वाल्मीकि रामायण' से ली गई है। आगे राम

---

[62] वही, पृ. 972, एपिसोड 75

का नंदीग्राम में आगमन, राम–भरत मिलाप और अंततः राम के राज्याभिषेक की कथा भी इसी से प्रेरित है। इस प्रकार रामजन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा धारावाहिक में वर्णित है। रामानन्द सागर ने बालकाण्ड एवं अयोध्या काण्ड को छोड़कर आगे की कथा का अधिकांश भाग वाल्मीकि रामायण से ग्रहण किया है। इसके कई कारण हो सकते हैं एक दोनों महाकाव्यों के प्रमुख प्रसंगों की लगभग समानता और दूसरा वाल्मीकि रामायण का रामचरितमानस की अपेक्षा अधिक घटना प्रधान होना। घटनाओं एवं तथ्यों के संग्रह में रामानन्द सागर को वाल्मीकि रामायण से अधिक सहायता मिली है और उन्होंने इसका भरपूर उपयोग किया है। धारावाहिक की भूमिका में जिस प्रकार उन्होंने कई रामायणों का जिक्र किया है उसका दर्शन न के बराबर है। यह धारावाहिक मूलतः या पूर्णतः 'वाल्मीकि रामायण' एवं 'रामचरितमानस' पर आधृत है।

3.4 धारावाहिक के कथानक का तकनीकी विश्लेषण

किसी भी कृति चाहे वह साहित्यिक हो या मिथकीय उसके रूपान्तरण की अपनी पद्धति होती है, साथ ही उसकी कुछ समस्याएँ भी होती है। मान लिया जाए कि रूपान्तरण के लिए अगर कोई शॉर्ट स्टोरी है, तो उसके उपलब्ध संकेतों के आधार पर कथा को विस्तार दिया जाता है। अगर कोई बड़ा, घटना प्रधान महाकाव्य हो, तो उसमें पटकथा निर्माता को संवाद एवं कथा गढ़ने में थोड़ी सहूलियत होती है। रामायण धारावाहिक की पटकथा लिखते समय रामानन्द सागर के समक्ष दो–दो महाकाव्य थे, जो पौराणिक कथाओं पर आधारित थे। फलतः उन्होंने उनका महत्त्वपूर्ण पहचानते हुए लोककथाओं एवं अपने मन पर उन मिथक पुराणों के प्रभाव को मिलाकर, एक लम्बी पटकथा का निर्माण कर दिया। पटकथा के रूपान्तरण की मुख्य जरूरतों की ओर इशारा करते हुए 'मनोहर श्याम जोशी' लिखते हैं – ''पहला यह कि उसमें जो भी घटनाएँ घटित होती हुई दिखाई देती है। अथवा जिनके घटित हो चुकने का उल्लेख हो, उन्हें अपनी कल्पना से ज्यादा से ज्यादा विस्तार और नाटकीयता प्रदान करनी होगी। दूसरा यह कि अगर उसमें

सहायक पात्र हों और उनकी भी अपनी कुछ कहानियों का जिक्र हो तो उनके इर्द–गिर्द उपकथानक बुन डालने होंगे। तीसरा काम आपको यह करना होगा कि मुख्य कथानक और उपकथानक की सभी घटनाओं को एक ऐसे क्रम में पिरोना होगा कि नाटकीयता उत्तरोत्तर बढ़ती हुई नजर आए।''[63] जाहिर है धारावाहिक एक प्रवाहमान दृश्यांकन की विधा है। जिसमें निर्माता को एपिसोड दर एपिसोड आगे कथा की सृष्टि करनी पड़ती है। साथ ही उसे नाटकीयता को भी कथानुसार बढ़ाना पड़ता है। ऐसे में उसे कथा–विस्तार एवं नाटकीयता के लिए कथानक के साथ उपकथानकों की सृष्टि भी करनी पड़ती है। रामायण धारावाहिक की पटकथा के निर्माण में जो भी उपकथाएँ रामानन्द सागर ने तुलसीदास से ग्रहण की है, उसे विस्तार 'वाल्मीकि रामायण' के आधार पर दिया है। क्योंकि तुलसीदास के यहाँ ये प्रसंग संक्षेप एवं संकेतों में वर्णित हैं कबंध की कथा, जटायु की कथा आदि कई उप–कथाएँ हैं जिसके तथ्यों को वाल्मीकि से लेकर पटकथा में पिरोया गया है।

पटकथा के रूपान्तरण की सबसे प्रमुख शर्त यह है कि रूपान्तरण के बाद मूल कथानक का भाव रूपांतरित विधा में सुरक्षित रहे। मूल कथानक, रूपान्तरित विधा में पूर्णरूपेण ध्वनित हो। पटकथा की इसी महत्ता को रेखांकित करते हुए 'शैलेंद्र' कहते हैं – ''रूपान्तर के लिए आवश्यक है कि पटकथा लेखक की मूल रचना के प्रति पूरी–पूरी निष्ठा हो। चूँकि टी.वी. साहित्य से भिन्न माध्यम है, इसकी एक अलग भाषा है, इसलिए रूपांतर की प्रक्रिया में पटकथा में परिवर्तन आना स्वाभाविक है लेकिन उस स्थिति में भी मूलकृति की आत्मा सुरक्षित रहनी चाहिए। अच्छा रूपांतर वह कहा जा सकता है जहाँ पटकथा लेखक एक रचना के कलात्मक रूप से टी.वी. (अथवा फिल्म) माध्यम की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर एक नई कलाकृति को जन्म देता है।''[64]

'शैलेंद्र' का यह कथन महत्त्वपूर्ण है क्योंकि माध्यम की विशेषताओं के अनुरूप कुछ परिवर्तन आवश्यक हो जाते हैं। पटकथा के रूपान्तरण में यदि कथानक को हू–ब–हू संवादों में उतार दिया जाए तो वह महज एक अनुवाद

[63] मनोहर श्याम जोशी, पटकथा लेखन एक परिचय, पृ 24–25
[64] उद्धृत, गौरीशंकर रैणा, टेलीविजन नाटक की पटकथा, पृ 108

बनकर रह जाएगा। इसलिए लेखक का यह दायित्त्व है कि वह कथानक की मूल भावना को सुरक्षित रखते हुए, उसके इर्द–गिर्द उपकथाओं को बुनकर नाटकीयता का सृजन करे। राम के बाल्यकाल का प्रसंग, गुरूकुल का प्रसंग, राम–सीता विवाह का प्रसंग आदि प्रसंगों में रामानन्द सागर ने उपकथाओं की सृष्टि कर पटकथा को नाटकीयता प्रदान की है। जिसका वर्णन अध्याय में किया जा चुका है।

चूँकि रामायण एक ऐसा उच्चस्तरीय सांस्कृतिक साहित्य है जिसमें मिथक, रहस्य, संघर्ष और समान्तर कथाएँ चलती रहती हैं। ऐसे पाठ के रूपान्तरित रूप फिल्म, टेलीविजन तथा रंगमंच पर भिन्न हो सकते हैं किन्तु प्रश्न सबमें समान हैं। वस्तुतः रूपान्तरण मूल कृति में उठाए गए प्रश्न को बरकरार रखता है और नई विधा में उसे एक निश्चितता प्रदान करता है। फिर वह नए प्रारूप के साथ प्रस्तुत होता है। जब रामायण टी.वी. पर दिखाया गया तो उसे उन दर्शकों ने भी देखा जिन्होंने इसके बारे में केवल सुन रखा था। न कभी पढ़ा था और न कभी पढ़ने की इच्छा थी। ऐसे दर्शक भी ऐतिहासिक समय को आगे देखते हुए अपने समय को अलग नजरिए से आँकने लगते हैं। हालाँकि उनका उद्देश्य मनोरंजन होता है, परन्तु इस प्रक्रम में वे दृश्यमय अनुभवों से गुजरते हैं, जो दर्शक एवं प्रदर्शक के बीच एक रिश्ता कायम करता है। पारम्परिक साहित्य, स्क्रीन लेखन व फिल्म तकनीक का एकीकरण, कृति को रूपान्तरित रूप में नए भाव और नए आयाम के साथ, दोबारा प्रस्तुत करता है। उसका पुनर्सृजन करता है। इस रूप में रामानन्द सागर को पटकथा निर्माण में सफलता मिली है।

धारावाहिक की पटकथा के निर्माण में दृश्य–संयोजन का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि पटकथा भी नाटक की भाँति दृश्यों को तोड़कर पेश करती है। जहाँ घटना स्थल बदलता है, वहाँ दृश्य भी बदलता है। किसी–किसी पटकथा में एक ही घटना स्थल पर कई–कई दृश्य हो सकते हैं। वनवास के प्रसंग को दिखाते समय बीच में अयोध्या के प्रसंग को दिखाना, एक ही युद्धभूमि में कई दृश्यों को दिखाना, एक ही प्रसंग में राम की मनःस्थिति के साथ सागर पार लंका में सीता की

मनःस्थिति को दिखाना, इतना ही नहीं पूर्वाभास के रूप में पूर्व के प्रसंगों को भी दिखाना आदि के चित्रण में रामानन्द सागर सफल हुए हैं।

सबसे बड़ी बात यह कि वे दृश्य जो अलग–अलग स्थानों पर घटने के बावजूद क्रम से एक के बाद एक आते हैं और विशिष्ट प्रसंग से जुड़ जाते हैं। 'मनोहर श्याम जोशी' के शब्दों में कहें तो ''शूटिंग करने वालों के लिए भले ही एक ही स्थल पर अलग–अलग समय पर घटे दृश्य एक ही माला के मनके होते हैं, लेखक के लिए तो वे दृश्य एक ही माला के मनके होते हैं।''[65] अर्थात लेखक के लिए वह सम्पूर्ण दृश्य ही एक मनका है जिसे वह पटकथा रूपी माला में प्रसंग–दर–प्रसंग पिरोता चलता है। इससे यह पता चलता है कि दृश्य किस क्रम में आएंगे? किस दृश्य में कौन सी घटना घटेगी और आगे की क्या सूचना मिलेगी? इन तमाम तकनीकों का प्रयोग कर रामानन्द सागर ने कथा को एक सूत्रता में पिराने का प्रयास किया है। हालाँकि 'रामचरितमानस' या 'रामायण' के कथाक्रम के अनुसार धारावाहिक में कथाक्रम की थोड़ी बहुत भिन्नता अवश्य है किन्तु अपने तमाम तकनीकी प्रयोगों के माध्यम से पटकथा लेखक ने कथाक्रम को टूटने नहीं दिया है।

पटकथा के निर्माण में नाटकीयता पैदा करने के लिए पात्रों एवं चरित्रों का आपस में द्वंद्व प्रतिद्वंद्व दिखाया गया है। क्योंकि किसी भी धारावाहिक की पटकथा के दृश्यों में जान डालने के लिए पात्रों का आपस में मतभेद जरूरी है ताकि इसका भावनात्मक प्रभाव दर्शकों पर पड़े। दर्शक भी पटकथा एवं चरित्रों के हिसाब से अपने आपको उससे जोड़ लेता है। जैसे राम के चरित्र से जुड़ी जनता उसके जीवन के तमाम संघर्षों को अपना संघर्ष समझती है और विपरीत पात्रों के प्रति उसके अंदर आवेश की भावना पैदा होती है। जीवन के सुखद क्षणों में वह सुखी होती है, जबकि सीता वियोग में राम के मानसिक द्वंद्व से दुखी होती है। इस प्रकार पटकथा निर्माण में रामानन्द सागर ने चरित्रों के आपसी द्वंद्व को बखूबी दिखाया है। चाहे वह स्वभावगत द्वंद्व हो, सम्बन्धगत टकराहट हो, सामाजिक द्वंद्व हो या फिर अंतर्द्वंद्व।

---

[65] मनोहर श्याम जोशी, पटकथा लेखन एक परिचय, पृ. 20

अंततः यह कहा जा सकता है किसी भी धारावाहिक की सफलता का एक प्रमुख कारण उसकी पटकथा है। धारावाहिक की अभूतपूर्व सफलता ने यह साबित कर दिया कि पटकथा का व्यापक प्रभाव जनमानस पर पड़ा। हालाँकि रामानन्द सागर को कथानक निर्माण के लिए आधार ग्रंथ के रूप में 'रामचरितमानस' एवं 'वाल्मीकि रामायण' जैसा महाकाव्य मिला किन्तु उसका धारावाहिक के रूप में सृजन एक नई रचना है। महज तथ्यों एवं घटनाओं के आधार पर पटकथा का निर्माण संभव नहीं है। इसमें रचनाकार की वैचारिकी एवं सामाजिक दृष्टि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है जिसके आधार पर पटकथा की रचना की जाती है। रामानन्द सागर ने इन महाकाव्यों से सूक्तियों एवं विचारों को ग्रहण कर उसे आधुनिक तरीके से प्रस्तुत किया, जिसमें लेखक के निजी विचार भी अनुस्यूत है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण चीज है भाषा। सामान्य जन–मानस की भाषा एवं भाव को कथा में पिरोकर इसे और भी प्रभावोत्पादक बनाया गया है। संस्कृत एवं अवधी में लिखे ग्रंथों का सामान्य बोलचाल की हिन्दी में आधुनिक तरीके से प्रस्तुतीकरण ने भी कथानक को लोकप्रिय बनाया है।

पात्रों की संवाद अदायगी ने भी पटकथा को महत्ता प्रदान की है। पौराणिक पात्रों की समस्या यह होती है कि उनके संवाद भी काफी धीर, गम्भीर एवं जीवन–दृष्टि से भरपूर होते हैं। ऐसी परिस्थिति में लम्बे–लम्बे संवादों की अदायगी एक चुनौतीपूर्ण काम है। ये चरित्र आम इंसानों से हटकर काम करते हैं। इन पात्रों के प्रति जनमानस में विस्मयपूर्ण श्रद्धा के संस्कार पड़े होते हैं। इसलिए इन पात्रों के लिए संवाद रचते समय वास्तविकता से अलग विराट रूप रचनाकार को हृदयंगम करना पड़ता है।

चौथा अध्याय

रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण के पात्र

4.1 रामचरितमानस के पात्रों द्वारा चित्रित तुलसीदास के सामाजिक सरोकार

4.2 रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण के पात्रों के चरित्र का तात्त्विक विवेचन

4.3 रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण के प्रमुख पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

चौथा अध्याय

रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण के पात्र

किसी भी कथानक की सफलता उसके पात्रों पर निर्भर करती है क्योंकि पात्र ही कथानक में अभिव्यक्त विचारों का वहन करते हैं। चाहे 'रामचरितमानस' हो या 'धारावाहिक रामायण' का कथानक दोनों ही कथानकों के रचनाकार में अपने–अपने अनुसार पात्रों की सृष्टि की है, जो रचनाकार के विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। क्योंकि पात्रों के निर्माण में विचारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जिसके माध्यम से वह अपने विचार को आम–जनमानस तक प्रेषित करता है। चूँकि 'रामचरितमानस' एक पौराणिक आख्यान है इसलिए उसके पात्र एवं उससे जुड़े विचार जनमानस में मौजूद हैं, अतः उन पात्रों को उसी चारित्रिक विशेषताओं के साथ धारावाहिक में प्रस्तुत करना चुनौतीपूर्ण काम है।

विधान्तरण के कारण न सिर्फ कथानक बल्कि पात्र एवं पात्रों के चरित्र एवं मनोविज्ञान में भी परिवर्तन होता है। पात्रों की दृष्टि से 'रामाचरितमानस' एवं 'धारावाहिक रामायण' की तुलना करें तो दोनों पात्र निर्माण के अपने–अपने अलग प्रतिमान है। दोनों दो विधाएँ हैं, एक महाकाव्य है तो दूसरा दृश्यकाव्य। जाहिर है उनके पात्रों की संगति अलग होगी क्योंकि रूपान्तरित विधा में पात्रों की योजना मूल विधा से भिन्न होती है। जिससे पात्रों के चरित्र में अन्तर स्वाभाविक है। इस प्रकार मूल कथानक एवं रूपान्तरित कथानक में न सिर्फ रूपान्तरण के कारण पात्रों के चरित्र में भिन्नता आती है बल्कि लेखकों के सामाजिक सरोकार एवं उनके विचार की भी महती भूमिका होती है।

4.1 रामचतिमानस के पात्रों द्वारा चित्रित तुलसीदास के सामाजिक सरोकार

कोई भी रचना या रचनाकार समाज सापेक्ष होता है। फलतः यह संभव है कि रचनाकार के कुछ सामाजिक सरोकार भी होंगे। उसकी अपनी सामाजिक दृष्टि भी होगी, जो उस रचना के माध्यम से अभिव्यक्त होगी। क्योंकि समाज की अवधारणा का संकोच और विस्तार दृष्टिकोण के स्वरूप पर निर्भर करता है। किसी मानव–समाज की जीवन–शैली, चारित्रिक–आदर्श, सांस्कृतिक–निष्ठा, धार्मिक भावना, राजनैतिक व्यवस्था, संगठनात्मक शक्ति, रीति–नीति आदि के सम्बन्ध में निर्मित दृष्टिकोण को ही सामाजिक दृष्टिकोण कहा जाता है। तुलसीदास के इसी सामाजिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हमें 'रामचरितमानस' में दिखाई देती है।

तुलसीदास की तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ उतनी प्रतिकूल नहीं थी, जितनी अन्य शासकों के समय में थी। अकबर की उदारता का प्रभाव समाज पर अवश्य था किन्तु तुलसीदास जिस आन्तरिक प्रेरणा और प्रवृत्ति के परिवर्तन की आकांक्षा समाज में कर रहे थे, उसका सर्वथा अभाव था। इसलिए वे समाज के सम्मुख, एक उदात्त और रचनात्मक विकल्प प्रस्तुत करना चाहते थे। जिसके लिए रामराज्य का उत्तम आदर्श ही एक विकल्प था। जिसके माध्यम से वे भारतीय समाज और संस्कृति के पुनरुत्थान हेतु आशान्वित थे। इसके लिए उन्होंने एक ऐसे समाज की कल्पना की, जहाँ दैहिक, दैविक एवं भौतिक किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। जनता वर्णाश्रम के अनुकूल आचरण करे। स्वप्न में भी कोई किसी से वैर न करे, जहाँ हर व्यक्ति त्याग एवं आदर्श की पराकाष्ठा हो। स्वाभाविक है ऐसे समाज के निर्माण के लिए इस प्रकार के पात्र भी रचने होंगे, जो लेखक की दृष्टि एवं सामाजिक सरोकारों का वहन कर सके। तुलसीदास के सामाजिक सरोकार उनके पात्रों के जीवन–दर्शन में दिखाई देता है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से लोक के भीतर रहने वाले व्यक्तियों, विचारों और आनन्द प्रदान करने वाले तमाम प्रकारों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का कार्य किया। उन्होंने रामकथा के माध्यम से ने केवल शैवों और वैष्णवों के मध्य बल्कि लोक में व्याप्त विभिन्न मत–मतान्तरों के मध्य भी समन्वय

का काम किया। व्यक्ति की सामाजिक स्वच्छंदता, उसकी मर्यादा का सच्चा स्वरूप जनमानस में रखा। तुलसीदास ने इन सभी विचारों की स्थापना के लिए सबसे पहले जनता की प्रकृति को समझने का प्रयास किया, फिर इन मार्गों का निर्धारण किया। वे जिस आदर्श समाज की परिकल्पना कर रहे थे, उसके लिए उन्हें भारतीय संस्कृति में राम से उपयुक्त चरित्र नहीं मिला। जिस मर्यादा पुरुषोत्तम की कामना उन्होंने की थी, उसकी झाँकी उन्हें राम के चरित्र में दिखाई दी। राम के इसी चरित्र को अवलम्ब बनाकर उन्होंने 'रामचरितमानस' की सृष्टि की। व्यक्ति साधना से इतर समष्टिगत साधना, धर्म और जातीयता का सुन्दर समन्वय, लोकनीति और मर्यादा का कल्याणकारी रक्षण, शील और सदाचार का मुग्धकारी आदर्श आदि के लिए तुलसीदास के पास रामचरित ही सर्वाधिक उपयुक्त चरित था। इसी उद्देश्य से तुलसीदास ने जनता के नस–नस में राम के चरित्र को भरने का प्रयास किया। वे जनमानस के हर उद्यम में राम और उनके जीवन को देखना चाहते थे। उन्हीं के शब्दों में कहें तो सम्पूर्ण जगत को 'सियाराममय' देखना चाहते थे।

तुलसी के राम का चरित्र ऐसा है, जो प्रजा की पुकार कानों में पड़ते ही उसकी रक्षा के लिए दौड़ पड़ते हैं। ज्ञानी महात्माओं को देख सिंहासन छोड़ उठ जाते हैं, उनका यथायोग्य सम्मान करते हैं। प्रतिज्ञापालन हेतु अनेक कष्ट झेलते हैं। प्रजाजनों की रक्षा के लिए रणभूमि में सबसे आगे दिखते हैं। प्रजा के सुख–दुःख में सहभागी होते हैं। ईश्वरांश होते हुए भी मनुष्यता नहीं छोड़ते हैं। प्रजा अपने सब प्रकार के उच्च भावों का (त्याग, शील, पराक्रम, सहिष्णुता) प्रतिबिम्ब राम में देखती है। राम के इसी लोक–स्थापित स्वरूप का वर्णन करते हुए 'विश्वनाथ त्रिपाठी' लिखते हैं –

''तुलसी के राम का यह सामान्य और सबसे लोकप्रिय रूप सबसे अधिक आकर्षक है। वाल्मीकि और भवभूति के राम सभी परिस्थितियों में कुछ–न–कुछ विशिष्ट बने रहते हैं। तुलसी के राम–सूचित राम नहीं, चित्रित राम–सामान्य जनों में बिल्कुल घुल मिल जाते हैं, यही नहीं राजा राम भी प्रतापी, असाधारण नहीं, संकोची, शीलवान और परदुःखकातर सामान्य जन के रूप में चित्रित किए गए

हैं।''[1] कहने का अर्थ यह कि माता–पिता, सेवक और सखा आदि के साथ जो व्यवहार राजा का हो, वह समस्त गुणों को तुलसीदास ने राम में स्थापित करने का प्रयास किया है। राजा का ऐसा व्यवहार हो कि जनता धन्य–धन्य कह उठे। जिस प्रेम और दृढ़ता के साथ राम ने सुग्रीव, विभीषण, निषाद आदि को विदा किया, वह सम्पूर्ण प्रसंग ही द्रष्टव्य है –

''ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे।
अनुज राज सम्पति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही।।
सब मम प्रिय नहीं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना।।''[2]

आगे निषाद राज को विदा करते समय राम कहते हैं –

''तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता।।[3]

एक राजा के इस चरित्र को देखकर जनता धन्य–धन्य कह उठी –

''रघुपति चरित देखि पुर बासी। पुनि–पुनि कहहिं धन्य सुख रासी।।''[4]

जब हम मानस के पात्रों का अध्ययन करते हैं तो लोक–मानस के निर्माण के लिए कवि की सजगता और सतर्कता का स्पष्ट प्रमाण पाते हैं। रामचरितमान के पात्रों को हम मुख्य रूप से दो भागों में बाँट सकते हैं। एक तो वे हैं जो राम के प्रेमी हैं और भक्त हैं। उनका सारा जीवन राम की सेवा में अर्पित है। दूसरी श्रेणी में वो लोग हैं, जो खल–पात्र हैं। जो रावण के संसर्गी हैं, और कुटिल, कामी एवं पापरत हैं। वे राम के व्यक्तित्त्व से अपरिचित हैं। एक तीसरा वर्ग भी है, जो राम के व्यक्तित्त्व से परिचित है। किन्तु रामाभिमुख होने में असमर्थ है। जिसमें तारा, मंदोदरी, त्रिजटा आदि पात्र हैं। इन सब पात्रों ने रामविमुख पात्रों को यथायोग्य समझाने का प्रयत्न किया है और उनसे वैर मोल न लेने की सलाह दी है। तारा बालि को समझाती हुई कहती है –

---

[1] विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, पृ. 30
[2] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 849–50
[3] वही, पृ. 853
[4] वही, पृ. 853

"सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा।।
सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सीवा।।
कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा।"[5]

तारा ने बालि को समझाते हुए कहा कि हे नाथ! सुग्रीव जिनसे मिले हैं वे दोनों भाई तेज और बल की सीमा हैं। वे अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण हैं उनसे युद्ध में साक्षात काल भी नहीं जीत सकता। इसी प्रकार मन्दोदरी ने भी रावण को कई बार समझाया था –

"अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे।।
जेहिं बालि बाँधि सहज भुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा।।
तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाकें हाथा।।"[6]

इस तरह मन्दोदरी भी राम के व्यक्तित्त्व से परिचित है और रावण से उसने राम के विराट रूप का भव्य वर्णन किया है।

राम के भक्त पात्र अपने हृदय की पात्रता एवं उदारता, विचारों की शुद्धता, अपने आचरण की उदात्तता के कारण जनमानस में पूज्य हैं। तुलसीदास ने उन्हें उच्च भावभूमि प्रदान की है, जिसके कारण वे स्थायी आदर्श–वातावरण की सृष्टि कर सकने में सामर्थ्यवान होते हैं। वे अपनी उत्कृष्ट सम्मतियों एवं विशेषताओं के कारण सभी युगों को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। इनमें ऐसी सुशीलता है, जो औरों का हृदय आकर्षित करती है। ऐसी निष्पृहता है, जो दूसरों का आदर प्राप्त करती है। उनमें ऐसी अनुग्रहशीलता है, जो पारस्परिक सद्भाव की सृष्टि करती है, और इन सबमें राम की भक्ति की प्रियता, जो पात्रानुकूल रूप धारण करके सबको समान धरातल पर उपस्थित करती है। एक युवराज होकर भी स्वयं राम सुमंत्र का सम्मान इस रूप में करते हैं –

"राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरू कीन्ह पिता सम लेखा।।"[7]

---

[5] वही, पृ. 633
[6] वही, पृ. 712
[7] वहीं, पृ. 338

ऐसे राम के, भक्त पात्रों का इस प्रकार का चरित्र होना आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि स्वामी के व्यवहार से भी भक्त के व्यवहार का पता चल जाता है। इस प्रकार राम भक्त पात्रों का अपना निराला संसार है। जहाँ हर तरफ आचरण में साधुता–सहृदयता निवास करती है। जहाँ श्रद्धा और प्रेम, सदाशयता, सत्यप्रियता एवं धर्मभीरूता का विजयगान होता है।

ऐसे ही राम भक्त पात्रों में एक चरित्र दशरथ का है। जो प्रेम, त्याग एवं कर्तव्य के आदर्श हैं। फिर भी पुत्र–प्रेम में विश्वामित्र से यह कहते हुए भी नहीं सकुचाते हैं –

''चौथेपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी।।''[8]

परन्तु लोकानुग्रह के लिए वे राम के राज्याभिषेक की भी तैयारी करते हैं किन्तु जब विषम परिस्थिति आती है, तब सत्य की रक्षा के लिए अपने प्रिय पुत्र को वनवास जाने की आज्ञा देते हैं, और पुत्र–प्रेम में प्राण तक त्याग देते हैं –

''राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम।।''[9]

कौशल्या के समान माता भी है, जो अपनी सौत की आज्ञा को बड़ा मानकर अपने एक मात्र पुत्र को वन जाने के लिए प्ररित करती है –

''तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका।।''[10]

कौशल्या का यह कहना कि पिता की आज्ञा का पालने करना ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है, यह उसके असीम धैर्य, संयम एवं धर्म प्रेम का परिचय देता है। सुमित्रा के समान विमाता है, जो अपने पुत्र को भाई की सेवा के लिए वन जाने की सहर्ष अनुमति देती है। यह उनकी उदारता, त्याग एवं सहिष्णुता का प्रमाण है।

---

[8] वही, पृ. 178
[9] वही, पृ. 429
[10] वही, पृ. 351

भरत एवं लक्ष्मण जैसे भाई हैं जो भायप भक्ति में सर्वस्व त्याग की कामना रखते हैं भायप भक्ति से भरे भरत जब चित्रकूट की तरफ जा रहे हैं, उसका वर्णन तुलसीदास ने बड़े ही भावुकतापूर्ण तरीके से किया है –

"राम बास थल बिटप बिलोकें। उर अनुराग रहत नहिं रोके।।"[11]

मार्ग में श्रीराम जहाँ–जहाँ रुके, उन स्थलों को देखकर भरत के हृदय में प्रेम रोके नहीं रुकता है। भरत की श्रेष्ठता का राम स्वयं इन शब्दों में वर्णन करते हैं –

"लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना।।"[12]

आगे राम यह भी कहते हैं –

"करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुर बचन लघु बंधु गुन कुसमयँ किनि कहि जात।।"[13]

भरत के विवेक का लोहा वशिष्ठ जैसे ऋषि तथा जनक जैसे तत्त्वज्ञानी भी मानते हैं। चित्रकूट प्रसंग में जहाँ तत्कालीन सभी श्रेष्ठ दार्शनिक, तत्त्वज्ञ, धर्मज्ञ एवं ज्ञानी महानुभाव एकत्र थे, जब "राम सपथ सुनि मुनि जनक सकुचे सभा समेत"[14] और फिर किसी से 'बनइ न उतरू देत' की स्थिति थी तब भरत का विवेक जटिल समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है। इतना ही नहीं मोह–विमूढ़ देवताओं को आश्वस्त करने के लिए देवगुरू वृहस्पति इन शब्दों में भरत की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं –

"देखु देवपति भरत प्रभाउ। सहज सुभायँ बिबस रघुराऊ।।
मन थिर करहु देव उरु नाहीं। भरतहिं जानि राम परिछाहीं।।"[15]

देवगुरू कहते हैं – हे देवराज! भरत जी का प्रभाव तो देखो। श्री रघुनाथ जी सहज स्वभाव से ही उनके वशीभूत हैं। इसलिए हे देवताओं भरत को राम की

[11] वही, पृ. 477
[12] वही, पृ. 489
[13] वही, पृ. 584
[14] वही, पृ. 541
[15] वही, पृ. 516

परछाई जानकर मन स्थिर करो, और डरने की कोई बात नहीं है। भरत के शील की प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं – ''भरत का चरित्र जितना अंकित है, उतना सबसे उज्जवल, सबसे निर्मल और सबसे निर्दोष है। पर साथ ही यह भी है कि वह उतना अंकित नहीं है। राम से भी अधिक जो उत्कर्ष उनमें दिखाई देता है, वह बहुत कुछ चित्रण की अपूर्णता के कारण उतनी अधिक परिस्थितियों में उसके न दिखाए जाने के कारण, जितनी अधिक परिस्थितियों में राम–लक्ष्मण का चरित्र दिखाया गया है। पर इसमें भी सन्देह नहीं कि जिस परिस्थिति में भरत दिखाए गए हैं, उससे बढ़कर शील की कसौटी हो ही नहीं सकती।''[16]

लक्ष्मण के चरित्र द्वारा गोस्वामी जी ने जो सेवा और त्याग की सजीव मूर्ति जनमानस में स्थापित की है, वह भातृ–प्रेम का जीवन्त उदाहरण है। एक ऐसा भायप चरित्र जो जीवन और यौवन के सुखों का त्यागकर अपने स्वामी की एकनिष्ठता से सेवा करते हैं, जो पुरुषार्थ के तथा अन्याय के संदेश पर अपने भाई को भी दण्ड देने के लिए उद्धत हो उठते हैं –

> ''तैसेहिं भरति सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता।।
> जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई।।''[17]

कैकेयी का चरित्र राम विरोधी होते हुए भी राम प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है। कैकेयी एक ऐसा चरित्र है जो जीवन के उतार–चढ़ाव का प्रतिनिधि चित्र प्रस्तुत करती है। प्रारम्भ की कैकेयी 'प्रान ते अधिक रामु प्रिय मोरे' की भाँति अतिशय प्रेम करने वाली विमाता है। जो आगे चलकर यह कहती है –

> ''सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बार भरतहि टीका।।
> तापस बेष विसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी।।''[18]

---

[16] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 95
[17] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 488
[18] वहीं, पृ. 329–30

किन्तु कैकेयी के आचरण का दोष तुलसी देवताओं के षड्यंत्र को मानते हैं जिसने उसके जीवन को अव्यवस्थित एवं कलंकित कर दिया है। भरद्वाज मुनि भरत से इन शब्दों में कैकेयी के निर्दोष होने का प्रमाण देते हैं –

''तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति।।[19]

इस तरह कैकेयी की बुद्धि सरस्वती द्वारा फेर दी गई थी, साथ ही 'गरइ गलानि कुटिल कैकेयी' कहकर तुलसीदास ने कैकेयी के तमाम पापों का प्रक्षालन कर दिया है।

राम का चरित्र परमब्रह्म होते हुए भी श्रेष्ठ मानव का आदर्श प्रस्तुत करता है। वे आदर्श पुत्र के रूप में अन्यन्य आज्ञापालक, पिता के सभी उत्तरदायित्व का कुशलतापूर्वक वहन करने वाले हैं। आदर्श भाई के रूप में स्नेह के असीम आगार हैं। भाइयों में रुचि रखने वाले एवं उनके हित–चिंतक हैं। मित्र के रूप में आदर्श मित्रता की परिभाषा है। 'मित्रक दुखरज मेरु समाना' समझने वाले परम रक्षक एवं सहायक हैं। वे शरणागतों के लिए शरणागत वत्सल हैं। शरण आने वालों को वे करोड़ों ब्राह्मणों का वध लगने पर भी नहीं छोड़ते हैं।

इन चरित्रों के अतिरिक्त ऐसे भी भक्ति–निष्ठ, भाव–विह्वल एवं नीति कुशल पात्र हैं, जिनका प्रभाव आम जनों को संस्कारित करता है। जिनका व्यवहार आचरण का सुधार करता है। साथ ही उनका कर्म हमारी भावनाओं को प्रभावित भी करता है। इन पात्रों में जहाँ एक ओर वशिष्ठ जैसे मुनि तथा जनक के समान राजा एवं ज्ञानी हैं, वहीं दूसरी ओर निषाद राज गुह एवं केवट हैं। इनकी 'जासु छाँह छुइ लेअइ सींचा' जैसी स्थिति है। भीलनी शबरी है जो 'अधम ते अधम अधम अति नारी' है, जो स्वयं राम से कहती है –

''केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।[20]

[19] वही, पृ. 469
[20] वही, पृ. 611

इन पात्रों में सुमंत्र के समान नीतिज्ञ सचिव एवं भरद्वाज जैसे तपस्वी भी हैं और सुग्रीव, हनुमान, गीधराज जटायु आदि हैं। इन असमान चरित्रों के घालमेल से तुलसी एक अलग समाज की रचना करते हैं, किन्तु इन सबको तुलसीदास ने एक समान धरातल पर अवस्थित किया है वह है 'राम की भक्ति'। इनके चरित्रों की तमाम असमानताएँ इनकी भक्तिजन्य समानता के सामने असहाय प्रतीत होती है। इन चरित्रों में न ऊँच–नीच का भाव है, न छोटे–बड़े की कटुता। न सामाजिक कटुता पारस्परिक सम्बन्ध को अप्रिय बनाती है, न व्यैक्तिक वैमनस्य समाज को विषाक्त करता है। सर्वत्र सम्बन्ध सरलता से पूर्ण है। यह गोस्वामी जी के समन्वय भाव की चरम सिद्धि है जो भारतीय जन–जीवन एवं लोकमानस पर अपना स्थायी प्रभाव छोड़ गया है।

इनमें दूसरा वर्ग रामविरोधी पात्रों का है जिसे तुलसीदास ने सामाजिक जीवन की जड़ता एवं विकार के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया है। कोई भी दुष्कर्म इनकी क्रियाशीलता की परिधि से बाहर नहीं है। रावण का परिवार इन्हीं पात्रों के साथ समाज विरोधी कृत्यों में लिप्त दिखाया गया है –

> ''जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा।
> आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा।।
> अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
> तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना।।''[21]

इस प्रकार रावण जप, जोग, वैराग्य, तप तथा यज्ञ में देवताओं के शामिल होने की बात सुनते ही स्वयं उठ दौड़ता और सबका विध्वंस कर डालता था। संसार में ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल गया था कि धर्म की कहीं आवाज सुनाई नहीं पड़ती थी, जो कोई वेद–पुराण कहता, उसे बहुविध त्रास दिया करता था। आगे निसाचरी वृत्ति की परिभाषा शिवजी के माध्यम से तुलसीदास कहते हैं –

> ''बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा।।
> मानहिं मातु–पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।।

[21] वही, पृ. 157

जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी।।''[22]

यह स्थिति न सिर्फ रावण कालीन समय का है, बल्कि यह सर्वकालीन स्थिति है। ऐसे तत्त्व समाज में हर समय विद्यमान रहते हैं। सिर्फ इनकी संख्या बढ़ने–घटने से युग–विशेष की अच्छाई–बुराई की मात्रा में भी अन्तर आ जाता है। 'मानस' के इन पात्रों की विशेषता इसलिए अधिक हो गई है क्योंकि ये सभी राम भक्ति के प्रति उन्मुख होते दिखाए गए हैं। जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है तुलसी के 'राम' खल पात्रों का वध नहीं करते, वरन उद्धार करते हैं। चाहे मारीच प्रसंग हो, बालि का प्रसंग हो, कबन्ध उद्धार हो, रावणादि का उद्धार हो। ये सभी पात्र अपने उद्धार हेतु सत का आश्रय धारण करते दिखाई पड़ते हैं। इनमें भी रामाभिमुखता के बीज पड़ गए हैं और यह सूचना देते हैं कि ये समाज के विकासोन्मुख प्राणी हैं, जो अपनी निर्बलताओं के होते हुए भी इतने अप्रिय नहीं रह गए हैं। इनके चित्रण में बुरे लोक मानस को अच्छा बनाने का प्रयत्न तुलसीदास ने किया है। मारीच के प्रसंग को यदि हम उदाहरण स्वरूप देखें –

''उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक सरना।।
उतरू देत मोहि बधब अभागे। कस न मरौं रघुपति सर लागे।।''[23]

जब मारीच ने रावण और राम दोनों के हाथों अपनी मृत्यु देखी तब उसने राम के हाथों अपनी मृत्यु स्वीकार की। यहाँ मारीच की रामाभिमुखता स्पष्ट है साथ ही राम भी उसे दुलर्भ गति प्रदान करते हैं –

''अन्तर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना।।''[24]

इसी प्रकार तुलसीदास का प्रमुख खलपात्र रावण का चरित्र है। रावण के चरित्र–चित्रण में उसे दुराचारी एवं पापों का प्रतिरूप दिखाया गया है। किन्तु तुलसीदास ने अप्रत्यक्ष रूप से उसमें निहित एक भक्त हृदय की भी वत्सलता दिखाई है। शूर्पणखा द्वारा समाचार प्राप्त होने पर रावण सोचता है –

[22] वही, पृ. 158
[23] वही, पृ. 599
[24] वही, पृ. 601

"सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तौं मैं जाई बैरू हठि करऊँ। प्रभुसर प्रान तजें भव तरऊँ।।
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा।।
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ।।"[25]

यदि देवताओं को आनन्द देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान ने अवतार लिया है तो मैं हठपूर्वक उनसे बैर करूँगा और प्रभु के बाण से प्राण त्याग भवसागर से तर जाउँगा। इस तामसी शरीर में अब भजन तो संभव नहीं है। अतः मन, वचन और कर्म से यही दृढ़ निश्चय है। यदि वे मनुष्य रूप में कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनों को रण में जीतकर उनकी स्त्री का हरण कर लूँगा। रावण के इस संकल्प द्वारा तुलसीदास ने एक विकृत मानस को परिवर्तित करने का महान प्रयोग किया है। पात्र–चित्रण के द्वारा मानस (अंतर्मन) को परिष्कृत करना प्रभावशाली होता है। यहाँ संस्कार एवं शिक्षा प्रभाव की मात्रा एवं उसके रूप का निर्धारण करते हैं। मानसकार ने इन पात्रों के माध्यम से प्रत्यक्ष कथनों द्वारा जन–मानस को निर्मल एवं उत्तम बनाने की व्यवस्था भी कर दी। जहाँ भी अनुकूल अवसर मिला है, गोस्वामी जी ने दुष्कर्मों की दुर्दशा दिखालाई है, सत्कर्मों की सुन्दरता प्रदर्शित की है, गुणों का गुणगान किया है, अवगुणों का अनादर किया है, बुराइयों की विभीषिका बतलाई है, और अच्छाइयों का आदर करने की सीख दी है।

गोस्वामी तुलसीदास के यहाँ मर्यादा हमेशा उच्चभाव के साथ विद्यमान है। मर्यादा भंग वे न सिर्फ उस चरित्र के लिए बल्कि परिवार एवं समाज के लिए भी अमंगलकारी समझते हैं। बालि ने मृत्यु के समय जब राम से अपने वध का कारण पूछा तो राम इन शब्दों में लोक–मर्यादा की शिक्षा बालि को देते हैं –

"अनुज बधु भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न, होई।।"[26]

---
[25] वही, पृ. 597
[26] वही, पृ. 638

इस प्रकार तुलसीदास की अपनी एक सामाजिक दृष्टि है, जिससे वे सामाजिक भाव–कुभाव की परिभाषा निर्धारित करते हैं। वर्णाश्रम उनकी दृष्टि का मूल है और इसकी मर्यादा का उल्लंघन अक्षम्य अपराध है। श्रुति प्रतिपादित लोकनीति एवं शिष्टता का भी उल्लंघन उन्हें काम्य नहीं है। कामभुशुण्डि की जन्मान्तर वाली कथा द्वारा गोस्वामी जी ने इस विचार की पुष्टि कर दी है। काकभुशुण्डि अपने शूद्र जन्म की बात कहते हैं –

''एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।
गुरु आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रणाम।।
सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस।।
मंदिर माझ भई नभबानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी।।
जद्यपि तव गुर के नहिं क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक बोधा।।
तदपि साप सठ दैहउँ तोहि। नीति बिरोध सोहाइ न मोही।।
जौं नहिं दण्ड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा।।''[27]

यहाँ शिवजी ने स्वयं श्राप देकर लोकधर्म की रक्षा की है और काकभुशुण्डि के गुरुवर ने कुछ न कहकर अपनी दयाशीलता का परिचय दिया है और साधुमत का अनुसरण किया है। इस तरह लोकमत एवं साधुमत का अनुसरण कर दोनों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न गोस्वामी जी ने किया है। इतना ही नहीं तुलसीदास ब्रह्मण और शूद्र, छोटे और बड़े हर किसी वर्ग के बीच एक मर्यादित व्यवहार की कामना करते हैं। चित्रकूट प्रसंग का यह दृश्य उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है –

''प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरिते दण्ड प्रनामू।।
राम सखा ऋषि बरबस भेंटा। जनु लुठत सनेह समेटा।।''[28]

---

[27] वही, पृ. 929–30
[28] वही, पृ. 418

केवट यहाँ वर्णाश्रम के अनुकूल आचरण करता है। वह अपनी छोटाई जानकर महर्षि वशिष्ठ को दूर से ही प्रणाम करता है परन्तु वशिष्ठ उसे राम का सखा जानकर बार–बार गले लगाते हैं। तुलसीदास यहाँ केवट के इस आचरण को वर्णाश्रम के अनुकूल बताते हैं, वहीं वशिष्ठ के व्यवहार को वर्णाश्रम के ऊपर मानवीयता की उच्चता साबित करते हैं।

इन सब पात्रों के बीच एक प्रमुख पात्र हैं सुमंत्र। जिनकी चर्चा अयोध्याकाण्ड में होती है। राम, सीता, लक्ष्मण को राजाज्ञा के अनुसार शृंग्वेरपुर पहुँचाकर सुमंत्र विवश होकर लौटते हैं क्योंकि वे लौटना नहीं चाहते –

''बरबस राम सुमंत्र पठाए।''[29]

आगे सुमंत्र की ग्लानि को तुलसीदास इन शब्दों में व्यक्त करते हैं –

''मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन रासि गवाँई।।
बिरिद बाँधि बर बीरू कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई।।[30]

सुमंत्र हाथ मलकर और सिर पीट–पीटकर पछता रहे हैं। ऐसा लग रहा है मानों कोई कंजूस धन का खजाना खो बैठा हो। वे इस प्रकार चल रहे हैं मानो कोई बड़ा योद्धा वीर का बाना पहनकर और शूरवीर कहलाकर युद्ध से भाग चला हो। इस मनःस्थिति के साथ तुलसीदास ने तत्काल ऐसे कार्यों की पूरी सूची उपस्थित कर दी, जिसके पश्चात पश्चाताप की आग में जलना पड़ता है।

पिता की मृत्यु से संतप्त भरत को वशिष्ठ इन विचारों की सीख देते हैं –

''सुनहु भरत भावी प्रबल विलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवनु मरनु जसु अपजसु विधि हाथ।।''[31]

इसके पश्चात तुलसी वशिष्ठ के माध्यम से उन कर्मों की सूची प्रस्तुत करते हैं, जिनका कर्त्ता शोचनीय होता है। कौशल्या शोकसंतप्त भरत को समझाती हुई

---

[29] वही, पृ. 385
[30] वही, पृ. 420
[31] वही, पृ. 441

ऐसी कई जीवन सम्बन्धी सदुपदेशों की बात करती हैं; जिसका लाभ उठाकर मनुष्य उचित आचरणों को समझने एवं जीवन–व्यवहार को सुधारने की सीख पाता है। कहने का गरज यह कि तुलसीदास को जहाँ भी मौका मिलता है, उन्होंने पात्रों के माध्यम से अपने सामाजिक विचारों को अभिव्यक्ति दी है। कवि ने स्वयं तो इन मानवीय पात्रों के माध्यम से सदुपदेश देने का प्रयत्न किया ही है साथ ही, प्रकृति के क्रिया–व्यापारों के द्वारा भी मनुष्य के सदाचरण को जोड़कर दिखाया है। किष्किन्धाकाण्ड का शरदऋतु वर्णन इसका सटीक उदाहरण है जहाँ राम, लक्ष्मण से ऋतु का मनोहारी एवं मानवीय वर्णन कर रहे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि न सिर्फ मनुष्य बल्कि मनुष्येतर पात्र भी तुलसीदास के सामाजिक सरोकारों से जुड़े हैं। वे भी मर्यादित व्यवहार से जुड़े हैं, जिसकी अपेक्षा उन्होंने मानव एवं लोक से की है। तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से एक सामाजिक जीवन की व्याख्या की है जो लोक और वेद को साथ लेकर चलता है। दोनों पर सामाजिक जीवन की मर्यादा निर्धारित है। तुलसी इन्हीं सामाजिक मर्यादाओं के माध्यम से समाज को पथभ्रष्टता से बचाने का उद्यम रचते हैं, और उनके राम इन्हीं विचारों की स्थापना हेतु अवतरित हुए हैं।

4.2 रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण के पात्रों के चरित्र का तात्त्विक विवेचन

प्रबंधात्मक साहित्य विशेष रूप से प्रबन्धकाव्य, नाटक एवं कथा साहित्य में पात्रों के चरित्र–चित्रण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। घटनाओं की क्रमबद्धता से कथानक का निर्माण होता है। कथानक मूलतः घटनाओं की श्रृंखला है और इन घटनाओं को बनाने या घटित करने वाला मानव है। अतः मानवीय शक्ति के उपयोग से जो कार्य घटित होते हैं, उनमें मानव की बौद्धिक, आत्मिक और भावात्मक गतिविधि एवं उसके दृष्टिकोण का पता चलता है। इसे ही चरित्र कहा जाता है। यह चरित्र वैयक्तिक, वर्गीय या राष्ट्रीय तीन प्रकार का हो सकता है किन्तु साहित्य में एक

और कोटि का चरित्र है जिसे सार्वभौम या आदर्श चरित्र कह सकते हैं। राम की अवधारणा इसी कोटि पर आधारित है।

चरित्र का महत्त्व साहित्य से अधिक जीवन में होता है क्योंकि साहित्य भी जीवन के विविध दशाओं का ही चित्रण करता है। इसी क्रम में साहित्य व्यक्तियों का तथा उनके माध्यम से वर्गों एवं राष्ट्रों का सामूहिक चरित्र भी चित्रित करता है। एक ही समय में समाज में कई तरह के चरित्र विद्यमान होते हैं। जैसे – वीर और कायर, संत और असंत, महान और क्षुद्र। इसी समाज में व्यक्ति अपनी नैसर्गिक प्रतिभा, पारिवारिक एवं वर्गीय परिवेश, जातीय संस्कृति तथा राष्ट्रीय परम्पराओं को प्रभाव के कारण भिन्न–भिन्न रूपों में अपने चरित्र का विकास करता है। साहित्यकार अपने दृष्टिकोण के अनुसार इन चरित्रों को या तो यथावत स्वीकार कर लेता है या फिर कल्पना के बल पर उन चरित्रों को अधिक उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट बनाकर प्रस्तुत करता है, या फिर उस आदर्श चरित्र को इतना और आदर्श बना देता है कि उसका यथार्थ जगत में कोई मेल ही नहीं होता। तुलसीदास के पात्र भी इसी कोटि के पात्र हैं, जिसकी व्याप्ति साहित्य से इतर जीवन में सम्भव नहीं है।

धारावाहिक में पात्रों का चरित्र कई दृष्टिकोणों पर निर्भर करता है। यदि 'धारावाहिक रामायण' की बात करें तो 'रामचरितमानस' जो पद्य रूप में विद्यमान था, उसे रामनन्द सागर ने संवाद शैली में गद्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। यह एक विधा का दूसरी विधा में विधान्तरण है। यह धारावाहिक एक अर्थ में विधान्तरण है तो वहीं दृश्य माध्यम में इसका रूपान्तरण भी किया गया है। दोनों स्थितियाँ है एक पटकथा हेतु विधान्तरण, दूसरा प्रस्तुति हेतु रूपांन्तरण।

अब सवाल यह उठता है कि पटकथा के रूपान्तरण की इस प्रक्रिया में पात्रों का चरित्र अपने स्वरूप के साथ स्थिर रह पाया है या उसमें परिवर्तन आया है? किसी भी साहित्य का धारावाहिक में रूपान्तरण की कुछ शर्ते होती हैं, उनके कुछ मानदण्ड होते हैं। इन पर धारावाहिक प्रस्तोता कितने खरे उतरे हैं, यह द्रष्टव्य है। चूँकि रामानन्द सागर ने धारावाहिक के माध्यम से अलग पटकथा एवं

चरित्र गढ़ने की कोशिश की है परन्तु यह उनकी मौलिक रचना नहीं है, और न ही चरित्र मौलिक है। सैकड़ों वर्षों से जनमानस में व्याप्त राम की कथा को दृश्य माध्यमों में एवं आम बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत कर प्रयास किया है। अब देखना यह है कि चरित्र निर्माण की इस प्रक्रिया में रामानन्द सागर कितने सफल हुए हैं।

4.2.1 रामचरितमानस के पात्रों के चरित्र का तात्त्विक विवेचन

तुलसीदास के चरित्र–चित्रण को किसी भी शास्त्रीय प्रतिमानों पर नहीं कसा जा सकता है। शास्त्रीय अवधारणाओं के इतर तुलसीदास ने एक आदर्शवादी चरित्र की सृष्टि की जो मध्ययुगीन साहित्य की एक प्रमुख विशेषता रही है क्योंकि इस काल के धार्मिक एवं साम्प्रदायिक (पंथ–विशेष) कवियों ने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुरूप अपने आराध्य का जो चरित्र निर्मित किया है, वह मानवीय से अधिक दिव्य एवं अलौकिक हैं उनका ध्येय इन चरित्रों के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन का था। तुलसीदास ने भी इसका अनुसरण किया और सहर्ष स्वीकार किया –

"कबि न होउँ नहिं बचन प्रवीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू।।
कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे।।"[32]

इस प्रकार तुलसीदास ने काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों की उपेक्षा कर विवेक के अनुरूप राम के चरित्र का गुणगान किया है। उनके लिए काव्य–शास्त्रीय ग्रंथों में निर्दिष्ट चार प्रकार के नायकों (धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित एवं धीरप्रशान्त) की आवश्यकता नहीं थीं इसके विपरीत भी उनके चरित्र धार्मिक विश्वासों एवं सामाजिक आदर्शों की प्रतिमूर्ति प्रतीत होते हैं।

भारतीय प्रबन्ध–काव्यों में जिन चरित्रों की योजना की गई है, वे चार भागों में विभाजित किए जा सकते हैं।

[32] वही, पृ. 12–13

1. **दिव्य–चरित्र** – इसके अंतर्गत वे चरित्र होते हैं जो या तो स्वयं देवता होते हैं या फिर देवांश के साथ अवतरित होते हैं। तुलसीदास ने राम, सीता, शिव, पार्वती, हनुमान और नारद का चित्रण दिव्य–चरित्रों के रूप में किया है। अन्य देवताओं जैसे ब्रह्मा, विष्णु, सनकादिक ऋषि का भी उल्लेख किया गया है किन्तु कथानक की दृष्टि से उनका महत्त्व नगण्य है। राम और परशुराम दशावतारों में मान्य हैं किन्तु तुलसी के राम विष्णु के अवतार नहीं बल्कि स्वयं ब्रह्म हैं। राम जहाँ 'राम ब्रह्म परमारथ रूप' है वहीं सीता साक्षात आद्याशक्ति 'जनकसुता जगजननी जानकी' हैं। शिव एवं पार्वती का चरित्र पुराणों के अनुसार ही चित्रित है। हनुमान वैदिक देवता मारुत के पुत्र एवं एकादश रूद्र के अवतार हैं। इसी प्रकार नारद ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं। ये समस्त चरित्र दिव्य अलौकिकता से पूर्ण हैं।
2. **मानव–चरित्र** – मानव चरित्र उन्हे कहा जाता है, जो मनुष्य योनि में जन्म लेकर मानवीय आचरण में प्रवृत्त होते हैं। वे आदर्श, सामान्य या असामान्य हो सकते हैं बावजूद इसके उनकी गणना मानव–चरित्रों में ही होगी। तुलसी के दशरथ, भरत, लक्ष्मण, जनक, वशिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज, वाल्मीकि, अत्रि, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, शरभंग, शतानंद, सुमंत्र, गुह, केवट, कौशल्या, कैकेयी, अनुसूया, अरुंधती, शबरी आदि पात्र विभिन्न सामाजिक वर्गों के प्रतिनिधि चरित्र हैं। 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' के अनुसार इन मानव–चरित्रों को आदर्श और सामान्य दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। उन्होंने दिव्य–चरित्रों को भी मानव–रूप में अवतरित होने के कारण मानव–चरित ही माना है और उन्हें आदर्श कोटि में रखा है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है – ''आदर्श चित्रण के भीतर सात्विक और तामस दोनों आते हैं। राजस को हम सामान्य चित्रण के भीतर ले सकते हैं। इस दृष्टि से सीता, राम, भरत, हनुमान और रावण आदर्श चित्रण के भीतर आवेंगे तथा दशरथ, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव, कैकेयी सामान्य चित्रण के भीतर। आदर्श चित्रण में हम या तो यहाँ से वहाँ तक सात्विक वृत्ति का

निर्वाह पावेंगे या तामस का। ...सीता, राम, भरत, हनुमान ये सात्विक आदर्श हैं, रावण तामस आदर्श है।''[33]

इस प्रकार शुक्ल जी ने मानव–चरित्रों के साथ दिव्य एवं अति प्राकृत चरित्रों को भी मिलाकर आदर्श एवं सामान्य चरित्रों का विभाजन कर दिया है, जो पूर्व के वर्गीकरण के अनुसार सटीक नहीं है। इन मानव–चरित्रों को अलग करके ही विचार करना चाहिए। इन पर मनोवैज्ञानिक ढंग से विचार करना चाहिए। सात्विक, राजस और तामस को आधार बनाकर यदि इन पात्रों को उत्तम, मध्यम एवं अधम चरित्र में विभाजित किया जाए तो निम्नलिखित चरित्र इन वर्गों में आएँगे।

- **उत्तम चरित्र** – भरत, जनक, वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा अन्य ऋषि–मुनि और नारी पात्रों में कौशल्या, अनुसूया एवं शबरी उत्तम कोटि के मानव चरित्र हैं। क्योंकि वे स्थिरमति, विवेकशील एवं मर्यादावादी हैं।
- **मध्यम चरित्र** – दशरथ, लक्ष्मण, कैकेयी, निषाद राज, गुह आदि मध्यम कोटि के चरित्र हैं। क्योंकि ये परिस्थितियों को अतिक्रमित कर उसके वशीभूत आचरण करते हैं।
- **अधम चरित्र** – मंथरा अधम मानव–चरित्र है क्योंकि वह अपने स्वामी के परिवार एवं सम्पूर्ण राज्य के हितों की उपेक्षा कर केवल अपनी स्वामिनी कैकेयी एवं उसके पुत्र के हितों के बारे में सोचती है।

3. **अतिप्राकृत चरित्र** – भारतीय पौराणिक एवं लोक–विश्वासों के अनुरूप कुछ ऐसी जीवों की कोटियाँ होती हैं, जो कभी मानवीय आचरण करती है और कभी मानव, प्रकृति से भिन्न प्रकार का कार्य करती है। उन्हें न मानव कहा जा सकता है, न देवता और न मानवेत्तर प्राणी। राक्षस, यक्ष, गंधर्व, किन्नर आदि इसी प्रकार के चरित्र हैं रामकथा काव्य में रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, मेघनाद, मारीच, शूर्पणखा, मंदोदरी आदि ऐसे ही पात्र हैं।

[33] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 103

4. **मानवेत्तर प्राणि चरित्र** – तुलसी के मानस में सुग्रीव, बालि, अंगद, नल–नील आदि वानर जाति के तथा जामवन्त भालू जाति के चरित्र हैं, संपाती और जटायु, काकभुशुण्डि, गरुड़ विभिन्न जातियों के पक्षी चरित्र हैं, जिन्होंने राम की विजय में अनेक अवसरों पर अपनी महत्ता प्रतिपादित की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास के पात्र एवं उनका चरित्र विविधताओं से पूर्ण है, किन्तु, कथाक्रम के अद्‌भुत संयोजन ने इनके चरित्रों को कथाक्रम में ढाल दिया है। पात्रों का चरित्र अपनी पूरी व्यापकता के साथ कथानक में अभिव्यक्त होता है। इन पात्रों एवं उनके चरित्रों का विधान्तरण एवं रूपान्तरण धारावाहिक में किस तरीके से किया जाता है इस पर आगे विचार किया जाएगा।

4.2.2 धारावाहिक रामायण के पात्रों के चरित्र का तात्त्विक विवेचन

जनमानस में व्याप्त के पात्रों के चरित्र को उसी भव्यता के साथ दृश्य माध्यमों में रूपान्तरित करना एक चुनौतीपूर्ण काम है। खासकर मिथक पुराण की कथा, लोककथा, परीकथा आदि को। क्योंकि इन कथाओं के संस्कार जनमानस में वर्षों से छाए रहते हैं। इसलिए उन पौराणिक पात्रों को बराबर आत्मसात करते हुए धारावाहिक में इन पात्रों के चरित्र का निर्माण करना पड़ता है। मिथक पुराणों में मिलने वाले इस प्रकार को 'आर्कटाइप' या 'आद्यरूप' कहा जाता है। इन्हीं आर्कटाइप चरित्रों की व्याख्या 'मनोहर श्याम जोशी' रामायण की कथा के माध्यम से देते हैं –

''जहाँ तक चरित्रों का सवाल है, हर अच्छा–बुरा रत्न आपको मिथक पुराण की खदान में मिल जाएगा। उसमें आपको बुढ़ापे में कमसिन पर फिदा होकर अपनी लुटिया डुबोने वाले और प्रण को पूरा करने के लिए प्राण देने वाले राजा दशरथ मिल जाएँगे तो तरुण रानी को भड़काने वाली कुटिल मंथरा भी। कोप–भवन में बैठने वाली कैकेयी मिलेगी तो पति की परछाईं बनकर रहने वाली सीता भी। धीरोदत्त राम मिलेंगे तो बात–बात में भड़कने वाले लक्ष्मण भी। अभिमानी रावण मिलेगा तो विनम्र विभीषण भी। मिथक पुराणों में मिलने वाले इस

तरह के पात्रों को 'आर्कटाइप' यानि 'आद्यरूप' कहा जाता है। क्योंकि बाद के साहित्य में पात्रों के चरित्र उन्हीं के साँचे में ढाले जाते हैं। ये पौराणिक पात्र ऐसी नेकी या ऐसी बदी करते हैं जैसी आम जीवन में औसत इन्सान नहीं करता देखा जाता।''[34]

कहने का अर्थ यह कि पात्रों की इस चारित्रिक विविधताओं को धारावाहिक में रूपान्तरित करना सहज नहीं है। उसके लिए पटकथा निर्माण के कुछ सिद्धान्त अपनाने पड़ते हैं, जिससे रूपान्तरण या विधान्तरण पर कोई प्रभाव न पड़े।

किसी भी धारावाहिक के पात्रों का चरित्र दो रूपों में व्यक्त होता है। एक अंतरंग, दूसरा बहिरंग। अंतरंग का अर्थ यह है कि उस पात्र के भीतर क्या है? वह तीन रूपों में हमारे सामने प्रकट होता है, विचार के माध्यम से, भावनात्मक प्रतिक्रिया द्वारा या फिर अपने कर्मों के द्वारा। चूँकि टेलीविजन एक दृश्य माध्यम है, इसलिए यहाँ विचार एवं भावना के अतिरिक्त कर्म पर जोर दिया जाता हैं कि वह पात्र किस तरह का आचरण करता हैं। किसी भी पात्र के इस कर्म को समझने के लिए मर्म को भी समझना आवश्यक होता है। यहाँ एक उदाहरण द्वारा पात्र के मर्म एवं कर्म को समझा जा सकता है। दशरथ जब राम से राज्याभिषेक की बात कहते हैं तो राम इन शब्दों में अपना भाव व्यक्त करते हैं –

''प्रजा की सेवा करने के लिए राज–पद ग्रहण करके सिंहासन पर बैठना आवश्यक नहीं पिताश्री! जन–सेवा तो मैं आपके चरणों की छाया में रहकर भी करता रहूँगा। भगवान आपको दीर्घ आयु प्रदान करे और मैं आपकी छत्र–छाया में रहकर आपकी और प्रजा की सेवा करता रहूँ। पिताश्री! हमें चरणों की छाया से वंचित न कीजिए।''[35]

यह राम का आंतरिक मर्म है। पात्र इसी मर्म के आधार पर आगे के कर्म की ओर प्रवृत्त होता है। राम का कर्म इस व्यवहार से प्रदर्शित होता है जब वे कौशल्या से वन जाने की अनुमति माँगने जाते हैं।

---

[34] मनोहर श्याम जोशी, पटकथा लेखन एक परिचय, पृ. 52
[35] रामनन्द सागर, धारावाहिक रामायण पटकथा, भाग 1, पृ. 159, एपिसोड 12

"हाँ, माता! पिताश्री ने देवासुर संग्राम में माता कैकेयी को दो वर दिए थे। अब उन्होंने वे दोनों वर माँग लिए। भरत का राज्याभिषेक और मुझे चौदह वर्ष का वनवास मुझे आज इसी क्षण जाना होगा। इसलिए मैं आपसे विदा माँगने आया हूँ माता!"[36]

इस प्रकार पात्र का चरित्र उसके कर्म और मर्म दोनों से अभिव्यक्त होता है।

दूसरा है बहिरंग। बहिरंग, पात्र का बाहरी आवरण है जो दिखाई एवं सुनाई देता है। चरित्र के इस पक्ष में पात्र की भाषा, उसके बोलने का ढंग, उठने–बैठने, चलने–फिरने का ढंग, उसकी दिनचर्या, आदतें आदि शामिल है। जैसे यदि राम के तपस्वी स्वरूप का वर्णन करेंगे तो उसका पहनावा अलग होगा, यदि युवराज का स्वरूप चित्रित करेंगे तो उसका पहनावा अलग होगा। साथ ही चरित्र के अनुसार उसकी भाषा एवं दिनचर्या होगी, जिसमें समस्त चरित्र व्याख्यायित हो।

जैसा कि कहा जा चुका है कि पात्र के कर्म से उसके स्वभाव का पता चलता है। जाहिर है धारावाहिक प्रस्तोता को उस पात्र के जीवन–दर्शन को रेखांकित करना चाहिए, साथ ही उसके स्वभाव को भी स्पष्ट करना चाहिए। वह कायर है या साहसी? चंचल है या धीर गम्भीर, आशावादी है या निराशावादी? इस सिद्धान्त के लिए राम एवं लक्ष्मण के चरित्र को उदाहरण स्वरूप समझा जा सकता है। जहाँ राम एक ओर धीर गम्भीर हैं, वहीं लक्ष्मण चंचल। राम विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य रखते हैं, वहीं लक्ष्मण अधीर हो जाते हैं। इसलिए चरित्र–चित्रण में व्यवहार एवं कर्म का सर्वाधिक महत्त्व है। यह भी देखना आवश्यक हो जाता है किसी परिस्थिति में पात्र क्या फैसला लेता है इसी से चरित्र उजागर होता है। इसलिए पात्र को कभी–कभी निर्णायक परिस्थितियों में डालना आवश्यक होता है कि वह क्या फैसला लेता है? उदाहरण स्वरूप एक तरफ दरबारियों एवं जनता का फैसला है कि राम का राज्याभिषेक हो, दूसरी तरफ कैकेयी का वरदान है। दोनों परिस्थितियों में राजा दशरथ का निर्णय आवश्यक है। वही स्थिति कौशल्या की है, एक तरफ धर्म का निर्वाह करना है दूसरी तरफ पुत्र

---

[36] वही, पृ. 199, एपिसोड 15

का स्नेह है। इन दोनों के बीच उसे निर्णय लेना है। इस तरह की स्थितियाँ चरित्र को उजागर करती ही है साथ ही नाटकीयता एवं दर्शकों की उत्सुकता को भी बढ़ाती है। लेकिन वैसी परिस्थिति में जब इन मिथक पुराणों की छवि आम जीवन में व्याप्त हो, प्रस्तोता के लिए उन चरित्रों को उसी चारित्रिक विशेषताओं के साथ प्रस्तुत करना चुनौतीपूर्ण होता है।

पात्र की भावनाओं एवं उसके स्वभाव की जानकारी भी बहुत जरूरी है। इसकी जानकारी हमें उससे प्राप्त हो सकती है या फिर पात्र की टिप्पणी से उसके स्वभाव के विषय में जानकारी हासिल की जा सकती है। लेकिन जब हम किसी घटना में पात्र को उस स्वभाव को प्रदर्शित करते हुए नहीं देखते हैं तब तक वह हमारे लिए प्रमाणिक नहीं बनती है। इसलिए पटकथा में ऐसे अवसर आने चाहिए, जिनमें पात्रों की प्रतिक्रिया से हमें उसके स्वभाव का परिचय मिले या कोई ऐसी घटना दिखाई जानी चाहिए, जिनमें पात्रों की प्रतिक्रिया से हमें उसके स्वभाव का परिचय मिल सके। इस रूप में हम भरत के चरित्र को देख सकते हैं। रामवनगमन की सूचना मिलने पर वे कैकेयी से इन शब्दों में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं –

''अरे, मेरे भाग्य तो उसी दिन फूट गए जिस दिन मेरे श्रीराम भैया वन को चले गए। वह श्रीराम भैया, जो तुम्हें अपनी माता से भी अधिक स्नेह करते थे। वह कौशल्या माता, जो तुम्हें अपनी बहन से अधिक समझती थीं, उनके इकलौते पुत्र को वन में भेजते हुए तुम्हारी आत्मा ने चीत्कार नहीं किया? तुम्हारा हृदय खण्ड–खण्ड नहीं हो गया? ऐसा क्रूर वरदान माँगते हुए तुम्हारे मुँह में कीड़े क्यों नहीं पड़े? तुम्हारी जिह्वा गल क्यों न गई?''[37]

भरत की इस प्रतिक्रिया से चरित्र उभरकर सामने आता ही है, साथ ही अन्य पात्रों के मुँह से कहलवाकर भी पटकथा निर्माता ने चरित्र को अंतरंगता में चित्रित किया है। राम स्वयं चित्रकूट में लक्ष्मण को समझाते हुए भरत के चरित्र की प्रशंसा करते हैं –

---

[37] वही, पृ. 288, एपिसोड 21

"कभी–कभी आँखों से देखा हुआ भी सत्य नहीं होता। राजपद का प्रमाद साधारण मानव को हो सकता है, इन्द्र जैसे देवता को भी हो सकता है, परन्तु भरत का स्थान देवताओं से भी ऊँचा है। वह एक महामानव के रूप में महानता की परिसीमा है। जिस प्रकार खटाई की एक बूँद से क्षीर सागर का दूध नहीं फट सकता है उसी प्रकार अयोध्या तो त्रिलोक का राज्य भी भरत को दे दिया जाए तो उसे राजमद नहीं हो सकता।"[38] यह राम का विश्वास है जो भरत के चरित्र को दृढ़ता प्रदान कर रहा है। इस प्रकार पात्र के चरित्र को समझने के लिए उसके अंतरंग एवं बहिरंग के विविध आयामों को समझना आवश्यक है।

पात्रों के चरित्र को धारावाहिक में उजागर करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण चीज है, उसकी प्रेरणा, कर्म और लक्ष्य। इन तीन चीजों की महत्ता की ओर इशारा करते हुए 'मनोहर श्याम जोशी' लिखते हैं – "पटकथा लिखते हुए हमेशा यह सोचें कि ऐसी कौन सी घटनाएँ लूँ जिनसे पात्रों के चरित्र उजागर हो सकें। आपको यह जानना चाहिए और दिखाना चाहिए कि आपके अलग–अलग पात्र जो कुछ भी कर रहे हैं किस मनःस्थिति परिस्थिति में वशीभूत होकर कर रहे हैं? किस मंजिल को पाने के लिए क्या करह रहे है? प्रेरणा, कर्म और लक्ष्य यानि मोटिवेशन, एक्शन एण्ड गोल।"[39]

जाहिर है जब तक पात्र का एक लक्ष्य नहीं होगा, तब तक पटकथा की परिणति सम्भव नहीं हैं जैसे राम जन्म का लक्ष्य है रावण के त्रास से पृथ्वी को बचाना। देवताओं के इसी विनय पर ईश्वर ने राम के रूप में अवतार लिया। इस अवतार और रावण–वध के बीच कई घटनाएँ घटेंगी, जो उस लक्ष्य तक पहुँचने में सहायक या बाधक होंगी। फलतः उन घटनाओं के माध्यम से उन पात्रों का चरित्र भी खुलेगा और पात्र अपने लक्ष्य के लिए आगे बढ़ेगा। कभी–कभी प्रेरणाप्रद घटना से जुड़े बिम्ब को बार–बार दिखाया जाता है ताकि नायक को अपने प्रस्तावित लक्ष्य की याद आती रहे। इसलिए जब राम वियोग की दशा में होते हैं, तब बिम्बों

[38] वही, पृ. 318, एपिसोड 23
[39] मनोहर श्याम जोशी, पटकथा लेखन एक परिचय, पृ. 62

के माध्यम से रामनन्द सागर संयोग के दिनों की घटना का चित्रण करते हैं और इन्हीं यादों के सहारे राम सीता की खोज हेतु उन्मुख होते हैं।

दूसरी बात यह कि मुख्य पात्र से जुड़ी हर घटना को धारावाहिक में दिखाना सम्भव नहीं है, इसलिए कथानक की शुरुआत किसी संकट की घड़ी से करनी चाहिए, जिससे एपिसोड–दर–एपिसोड कथा एवं पात्रों का चरित्र खुलता चला जाए और प्रारम्भ में ही कथा को नाटकीय गति मिल जाए। साहित्य में यह सम्भव है कि मुख्य घटना से पूर्व उसकी लम्बी पृष्ठभूमि बनाई जा सकती है किन्तु धारावाहिक या फिल्म में यह दर्शकों को बोझिल कर सकती है। जैसे तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में रामजन्म से जुड़ी कई 'हेतु कथाओं' का वर्णन किया है किन्तु रामानन्द सागर ने सीधा 'रावण के त्रास से भयभीत देवतादि की करुण पुकार' से कथा का प्रारम्भ किया है, और आगे तत्क्षण जन्म की कथा प्रस्तुत की है। इससे कथा एवं नायक का लक्ष्य प्रारम्भ में ही स्पष्ट हो गया है।

धारावाहिक में यह ध्यान रखा जाता है कि मुख्य पात्र के चरित्र में एकरसता न हो, बदलती घटनाओं एवं परिस्थितियों के अनुरूप उसके चरित्र में परिवर्तन होना चाहिए, जिससे धारावाहिक में नाटकीय पैदा हो। साथ ही धारावाहिक में रहस्य एवं कौतूहल पैदा करने के लिए चरित्रों के सामने ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित की जानी चाहिए, जिससे उसके मन को दुविधा एवं असमंजस पैदा हो। पात्र का तनाव दर्शक का तनाव बन जाए। धारावाहिक रामायण में शान्त सुमधुर भाषी राम का समुद्र पर क्रोधित हो उठना या फिर बालि को छिपकर मारना, लक्ष्मण को बाण लगने पर प्रलाप करना आदि प्रसंग मुख्य पात्र के चरित्र की विविधता को दर्शाता है। जहाँ तक रहस्य का सवाल है मिथक–पुराणों की कथा पर चरित धारावाहिक में कहानी के स्तर पर रहस्य न होकर प्रस्तुति एवं पात्रों पर निर्भर होता है।

पिछले अध्याय में भी पात्रों के द्वन्द्व–प्रतिद्वन्द्व पर चर्चा की गई थी। कथानक में नाटकीयता पैदा करने के लिए पात्रों के लक्ष्य, चरित्र एवं दोनों को आपस में टकराना पड़ता है और यह तभी सम्भव है जब मुख्य पात्र के विपरीत

एक ऐसा पात्र हो, जो स्वभाव में उससे ठीक विपरीत हो। लक्ष्य प्राप्ति में दोनों में टकराहट अवश्यम्भावी है। यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि मुख्य पात्र एवं विरोधी पात्रों से जुड़े जितने पात्र हैं वे सभी एक स्वभाव के न हों, जिनसे चरित्रों में तनाव पैदा किया जा सके। उदाहरणस्वरूप राम के साथ यदि मंथरा, कैकेयी है, तो रावण के साथ विभीषण एवं मंदोदरी भी है। इन सबका संयोजन धारावाहिक प्रस्तोता ने बखूबी किया है।

धारावाहिक में पात्रों के चरित्र–चित्रण में सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई है 'पात्रों की भूमिका'। यह पटकथा लेखक को तय करना होता है कि किस पात्र की कब और क्या भूमिका होगी। टेलीविजन धारावाहिक में कितने पात्र मुख्य भूमिका में होंगे, इसकी संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती है क्योंकि एपिसोड के अनुसार उसकी भूमिका तय होती है। लेकिन उसमें यह ध्यान रखना पड़ता है कि सारी मुख्य भूमिकाएँ एक साथ न शुरू हो जाएँ। धारावाहिक के अलग–अलग भागों में उनमें से कुछ का ही विशेष महत्त्व होना चाहिए कि इस भाग में किस पात्र से क्या काम लेना है। छोटी भूमिका के पात्र भी कभी–कभी मुख्य भूमिका में चित्रित किए जाते हैं। चाहे मंथरा का प्रसंग हो, निषाद राज का प्रसंग हो, अत्रि मुनि का प्रसंग हो, हर पात्र की भूमिका को धारावाहिक में उसके प्रसंग के साथ प्रमुखता प्रदान की गई है।

इन मुख्य भूमिकाओं के अतिरिक्त कुछ सहायक भूमिका वाले पात्र भी होते हैं, जो कहानी के विकास में सहायक होते हैं। सहायक भूमिका में आए पात्र मुख्य भूमिका वालों की बात सुनते हैं। उन्हें सलाह देते हैं । कोई महत्त्वपूर्ण सूचना देते हैं। जैसे – जनकपुर में शतानन्द, कुशध्वज, बालि की पत्नी तारा, रावण की माँ कैकसी, माल्यवान और मय दानव आदि इसी प्रकार के सहायक पात्र हैं। इन सहायक भूमिकाओं में कुछ पात्र ऐसे होते हैं जिनके द्वारा दी गई सूचना से अथवा कर्मों से मुख्य पात्र हरकत में आ जाता है और कहानी आगे बढ़ जाती है। इसे शूर्पणखा के माध्यम से समझा जा सकता है। शूर्पणख अपनी कटी नाक लेकर ज्यों ही रावण के पास पहुँचती है और कहती है –

''वही तो मैं कह रही हूँ। उसका भेद केवल इतना ही है जब मैंने उस स्त्री को देखा तो मैंने सोचा, जिस प्रकार संसार की हर उत्तम वस्तु महाराजा रावण के पास है, उसी प्रकार नारी को भी लंकेश्वर के राजकमहल की शोभा होनी चाहिए। यह सोचकर ही मैं उस नारी को आपके लिए उठाने गई कि दोनों भाइयों ने मुझ पर आक्रमण करके मेरी यह दुर्दशा कर दी। जब मैने कहा कि मैं लंकापति रावण की बहन हूँ, मेरी हँसी उड़ाई गई। इतना ही नहीं, मेरी नाक को काटकर आपको चुनौती भेजी है और कहा है कि जाकर अपने भाई से कह दो कि अपनी वीरता पर इतना अभिमान है तो स्वयं आकर ले जाए इस सुन्दरी को, नहीं तो अपनी नकटी बहन के आँचल में मुँह छुपाकर लंका से भी भाग जाए।''[40] शूर्पणखा के इन वचनों को सुनते ही रावण सीताहरण के लिए उद्धत हो उठता है और वहाँ से कथा अपने लक्ष्य की ओर मुड़ जाती है।

किसी भी धारावाहिक में सारे स्त्री–पात्र यदि बुरे होंगे या अच्छे होंगे, तो इस परिस्थिति में वह पटकथा एकांगी हो जाएगी। ऐसे में लंका में विभीषण एवं अयोध्या में मंथरा की उपस्थिति अनिवार्य होती है।

पटकथा में मुख्य पात्रों के अतिरिक्त गौण पात्रों की भी महत्ता होती है। 'मनोहर श्याम जोशी' लिखते हैं – ''अच्छी पटकथा वह है जो गौण से गौण पात्र तक से कहानी को आगे बढ़ाने के लिए कहीं–न–कहीं कोई काम ले लेती हैं अब यहाँ यह दोहरा देना आवश्यक है कि कहानी को आगे बढ़ाने के लिए पात्रों से किस तरह के काम लिए जाते हैं। पहला है कोई महत्त्वपूर्ण सूचना या सुराग देना, कोई राज खोलना, कोई संदेश पहुँचाना वगैरह।''[41] इस रूप में देखें तो अकम्पन, मातलि, अक्षयकुमार, अतिकाय, अग्निदेव, इन्द्र, अहिल्या, अरुंधति, मारीच, बन्दीजन, अयोध्या के स्त्री–पुरुष आदि पात्र इसी श्रेणी के हैं। धारावाहिक में मातलि राम को रावण–वध के लिए ब्रह्मास्त्र चलाने की सलाह देता है, वहीं विभीषण रावण की नाभि में अमृत होने की सूचना राम को देते हैं। इसी प्रकार मारीच सीता–हरण हेतु स्वर्ण मृग बनता है। बन्दीजन जनक दरबार में मिथिला की प्रशंसा में

[40] रामानन्द सागर, धारावाहिक रामायण पटकथा, पृ. 41, एपिसोड 31
[41] मनोहर श्याम जोशी, पटकथा लेखन एक परिचय, पृ. 77

विरूदावली गाते हैं इस तरह के पात्र कहानी को आगे बढ़ाने में सहायता प्रदान करते हैं।

धारावाहिक में कुछ पात्रों की भूमिका मुख्य पात्र के सेवक, सहायक या साथी की होती है, जो समय–दर–समय सूचना एवं सलाह मुख्य पात्र को प्रदान करते हैं। मुख्य पात्र अकेला महसूस न करे और उसका चरित्र वजनी प्रतीत हो इसके लिए भी इन सहायक पात्रों की आवश्यकता होती है। जामवन्त, नल–नील, सुग्रीव, हनुमान आदि इसी प्रकार के पात्र हैं।

4.3 रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण के प्रमुख पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

जैसा कि विदित है रामचरितमानस महज एक धर्मग्रंथ नहीं है, बल्कि वह मध्ययुगीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है। साथ ही उसमें अभिव्यक्त भक्ति आध्यात्मिक प्रक्रिया मात्र न होकर एक आत्म–परिष्कार का साधन है जिसके माध्यम से तुलसीदास अपने परिवेश और प्रकृति से ऊपर उठकर वृहत्तर समाज से जुड़ने का प्रयत्न करते हैं। तुलसीदास की समाज सम्बन्धी अपनी अवधारणाएँ हैं, जिसके माध्यम से उन्होंने पात्रों का संसार रचा है। समस्त पात्र तुलसीदास के आदर्शों से पूरित है। खल पात्र भी सुनियोजित आचरण हेतु संकल्पित हैं, जो अंत में अपनी गति प्राप्त करते हैं। तुलसीदास के ये पात्र उनके आदर्शों को अभिव्यक्त अवश्य करते हैं, परन्तु इन पात्रों को यदि आदर्शों से इतर सहज आदिम वृत्तियों के मनोविज्ञान पर परखा जाए तो कई मनोवैज्ञानिक परतें खुलती प्रतीत होती हैं क्योंकि ये पात्र भी अंततः मानवीय चरित्र की दृढ़ता एवं दुर्बलता से संचालित हैं। यहाँ इन्हीं आदिम वृत्तियों के आधार पर पात्रों के मनोविज्ञान को समझने का प्रयास किया गया है। जाहिर है मानस की मनोवैज्ञानिक संरचना को उसकी पात्र योजना एवं चरित्र–चित्रण के माध्यम से ही समझाया जा सकता है। मानस के पात्रों का चरित्र–चित्रण आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से भी खरा उतरता है। जिसका उपयोग रामानन्द सागर ने धारावाहिक

में किया है। यहाँ हम कुछ प्रमुख पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा दोनों ही माध्यमों में अभिव्यक्त मनोवैज्ञानिक चेतना को समझने का प्रयास करेंगे।

'मानस' की मुख्य कथा में वर्णित प्रारम्भिक पात्रों में दशरथ एक प्रमुख पात्र हैं जो तुलसीदास के अनुसार धर्म–धुरंधर गुणों के खजाना, और हृदय में भक्ति एवं राम की छवि धारण करने वाले हैं। तुलसी लिखते हैं –

> ''अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ।।
> धरम धुरंधर गुन निधि ग्यानी। हृदयँ भगति मति सारँग पानी।।[42]

किन्तु मानस के दशरथ विशुद्ध मानव मन के प्रतिनिधि हैं, जिसके अन्दर तमाम मानवीय गुण एवं दुर्बलताएँ मौजूद हैं उनका मन हमेशा स्नेह का भूखा रहता है और दूसरों पर आश्रित रहता है। पुत्र प्राप्ति और नामकरण से लेकर राज्याभिषेक तक वे वशिष्ठ की ही सलाह एवं अनुमति लेते प्रतीत होते हैं। हर छोटी–बड़ी समस्याओं में उनका मन दुखी एवं विचलित हो उठता है। तत्पश्चात वशिष्ठ की सलाह से ही उनकी समस्याओं का शमन होता है। उनका अपने मन एवं मनोरथ पर अधिकार नहीं रहता है। पुत्र प्राप्ति हेतु चिन्तातुर दशरथ की मनःस्थिति का वर्णन तुलसीदास ने इन शब्दों में किया है –

> ''एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं।।
> गुर गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला।।
> निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ। कहि वसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ।।''[43]

इस मनोदशा से दशरथ राम के राज्याभिषेक की चिन्ता तक मुक्त नहीं हो पाते –

> ''अब अभिलाषु एकु मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें।।''[44]

वशिष्ठ दशरथ की इस चारित्रिक दुर्बलता को भलीभाँति समझते हैं किन्तु संकेत द्वारा समझाने की कोशिश करते हैं –

---

[42] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 162
[43] वही, पृ. 163
[44] वही, पृ. 310

''फल अनुगामी महिप मनि मन अभिलाषु तुम्हार।।''[45]

अर्थात हे राजन! आपके मन की अभिलाषा फल का अनुगमन करती है। परन्तु दशरथ का मन और अभिलाषा पर नियंत्रण न होने के कारण वे बात को सही तरीके से समझ नहीं पाते हैं लालसा प्रधान व्यक्ति के मन में मूल्यों के प्रति चिन्ता से अधिक लालसा की चिन्ता रहती है –

''यह लालसा एक मन माही।।''[46]

महाराज दशरथ को भी केवल यही लालसा के अतिरिक्त कोई चिन्ता नहीं –

''पुनि न सोच तन रहउ कि जाऊ
जेहि न होइ पाछे पछिताऊ।।''[47]

दशरथ के मन में योजना नहीं है वे केवल मनोरथ की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। भूलों के प्रति आग्रह न होने के कारण वे विफल मनोरथ होते हैं। उन्होंने अपनी भूल कैकेयी से स्वीकार की है।

''मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला।।[48]

आगे कहते हैं –

''मैं सबु कीन्ह तोहिं बिनु पूँछे। तेहिं तें परेउ मनोरथु छूछें।।''[49]

मनोरथ के इस प्रबल आग्रह के कारण दशरथ जी के मन में संकल्प की दृढ़ता नहीं है। उनका मन हमेशा डोलता रहता है। स्वयं निर्णय न लेकर दूसरों का सहारा चाहते हैं। वे चाहते हैं राम वन जाएँ पर स्वयं यह निर्णय नहीं देना चाहते –

''हृदयँ मनाव भोरू जनि होई। रामहि जाइ कहैं जनि कोई।।''[50]

---

[45] वही, पृ. 310
[46] वही, पृ. 310
[47] वही, पृ. 310
[48] वही, पृ. 330
[49] वही, पृ. 332

इतना ही नहीं आगे दशरथ सोचते हैं –

''बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं।।

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी।।[51]

वे बार–बार ब्रह्मा, शिव से मन ही मन विनती कर रहे हैं कि किसी तरह राम वन न जाएँ। इस अनिर्णय की स्थिति में उन्हें इसका मूल्य चुकाना पड़ा क्योंकि वे कुल की मर्यादा से बँधे थे।

''रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहुँ बरू बचनु न जाई।।[52]

अंततः पुत्र–प्रेम ही उनकी मृत्यु का कारण बना।

''तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम।।''[53]

'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' लिखते हैं – ''दशरथ के सामने दोनों पक्ष प्रायः समान थे बल्कि यों कहिए कि नियम की ओर पलड़ा कुछ झुकता हुआ था। एक ओर सत्य की रक्षा थी, दूसरी ओर प्राण से भी अधिक प्रिय पुत्र का स्नेह। पर पुत्र वियोग का दुःख दशरथ के ही ऊपर पड़ने वाला था। (कौशल्या के दुःख को भी परिजन का दुःख समझकर दशरथ का ही दुःख समझिए) इससे अपने ऊपर पड़ने वाले दुःख के डर से सत्य का त्याग उनसे न करते बना। उन्होंने सत्य की रक्षा की, फिर अपने ऊपर पड़ने वाले दुःख की परमावस्था को पहुँचकर स्नेह की भी रक्षा की। इस प्रकार सत्य और स्नेह, नियम और शील दोनों की रक्षा हो पाई।''[54]

धारावाहिक में दशरथ का चरित्र कुछ स्थानों पर मानस से थोड़ा भिन्न है। मानस चूँकि एक महाकाव्य है, इसलिए उसके अभिव्यक्ति की सीमा है किन्तु धारावाहिक में संवाद की शैली एवं कथाओं के मनोनुकूल विस्तार ने पात्रों को मनोवैज्ञानिक स्तर पर भिन्नता परिलक्षित होती है। रामचरितमानस में पुत्र–वियोग की चिन्ता माता से अधिक पिता में दिखाई देती है। दशरथ के भावुक हृदय की

---

[50] वही, पृ. 336
[51] वही, पृ. 342
[52] वही, पृ. 329
[53] वही, पृ. 429
[54] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 101

लगातार अभिव्यक्ति तुलसीदास ने दिखाई है किन्तु धारावाहिक में दशरथ एक सामान्य पिता की भाँति गुरू आश्रम में चारों भाइयों को शिक्षार्थ भेजते हैं और कैकेयी को धीरज बँधाते हुए कहते हैं – ''यही अन्तर है माँ और पिता में। माँ केवल अपनी ममता को ही अपना कर्तव्य समझती है लेकिन पिता, पिता अपने बेटे की भलाई के लिए, उसके भविष्य के लिए अपने हृदय पर पत्थर रख लेता है किन्तु अपनी भावना की कमजोरी नहीं दिखाता। जिससे बेटे के अन्दर भावना की कमजोरी नहीं, कर्तव्य की शक्ति पैदा हो।''[55]

यहाँ वर्णित दशरथ तुलसीदास के दशरथ नहीं है बल्कि रामानन्द सागर के दशरथ हैं। इस समस्त प्रसंग को रामानन्द सागर ने रचा है। जाहिर है उन्होंने इस चरित्र को तुलसीदास से इतर अपने समसामयिक एवं सामाजिक परिवेश से जोड़ दिया। इनके दशरथ इस प्रसंग में एक आम पिता के कर्तव्य का निर्वहण करते दिखाई पड़ते हैं, किन्तु यही दशरथ आगे चलकर कहीं–कहीं तुलसीदास के दशरथ में भी परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार कथानक के विविध स्रोतों के संयोजन के कारण भी धारावाहिक में पात्रों का मनोविज्ञान परिवर्तित हुआ है।

यदि कैकेयी के मनोविज्ञान की बात करें, तो वह दशरथ के ठीक विपरीत है। वह मनस्विनी है। वह जो करना चाहती है, उसके लिए दृढ़ संकल्प है। उसके मन में किसी प्रकार की दुविधा नहीं है। वह दृढ़ आत्मशक्ति से भरपूर स्त्री है। बड़े ही सशक्त प्रतीकों के माध्यम से तुलसी ने कैकेयी के मनोविज्ञान को मानस में चित्रित किया है। वह राजा दशरथ के मनोरथ रूपी तरू का विध्वंस करने वाली है। वह कठोरपन की प्रतिमूर्ति है।

कैकेयी के मनोविज्ञान को चित्रित करते हुए तुलसी कहते हैं –

> ''निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी।।
> जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना।।
> जनु कठोरपनु धरें सरीरू। सिखइ धनुषविद्या बर बीरू।।
> सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई।।[56]

[55] रामानन्द सागर, धारावाहिक रामायण पटकथा, पृ. 31, एपिसोड 2
[56] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 339

कैकेयी बेधड़क ऐसी कड़वी वाणी कह रही है जिसे सुनकर कठोरता भी व्याकुल हो उठे। उसके जीभ धनुष के समान हैं और वचन तीर हैं और राजा निशाने पर हैं। इन तमाम उपादानों के साथ ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो कठोरता स्वयं श्रेष्ठ वीर का शरीर धारण कर धनुष विद्या सीख रहा है। इस प्रसंगों को राम से सुनाकर वह ऐसे बैठी है मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किए हुए हो। कैकेयी की इस स्थिति के वर्णन में तुलसीदास ने जिन उपमानों का वर्णन किया है। वह उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व को व्याख्यायित कर रहा है। उसके इस कठोर व्यक्तित्त्व के समक्ष दशरथ का व्यक्तित्त्व ठहर नहीं पाता है। वह क्रोध रूपी नदी बनकर दशरथ रूपी वृक्ष को जड़–मूल से ढहाती हुई विपत्ति रूपी समुद्र की ओर बढ़ चलती है।

''ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला।।''[57]

कैकेयी का चरित्र बड़ा ही सजीव एवं समर्थ है। तुलसीदास ने कैकेयी के मनोविज्ञान को बड़ी स्पष्टता के साथ चित्रित किया है। उसका मनोविज्ञान सहज प्रवृत्तियों में अभिव्यक्त एक आदिम स्तर का मनोविज्ञान है, जो हर स्त्री का मनोविज्ञान है। जिससे प्रेरित होकर वह अपने लिए और अपने पुत्र के लिए अधिकार माँगती है। उसके लिए चाहे जिसे मरना पड़े, चाहे जिसे घर छोड़ना पड़े इसकी चिन्ता उसे नहीं है। कैकेयी की माँग सीधी है, जिसे वह सहजता के साथ दशरथ को कह देती है और वचन के लिए पूरी पृष्ठभूमि रचती है –

''सिबि दधिचि बलि जो कुछ भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा।।''[58]

''तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंघ कहुँ तृन सम बरनी।।''[59]

इस प्रकार कैकेयी के चरित्र को तुलसीदास ने एक नारी चरित्र की आदिम ऊर्जा का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। जहाँ एक स्त्री बिना किसी आदर्श के दबाव में अपने अधिकार की माँग सहज गुण के साथ करती है। यद्यपि तुलसीदास

---

[57] वही, पृ. 334
[58] वही, पृ. 331
[59] वही, पृ. 335

ने बाद में उसे प्रायश्चित की प्रतिमूर्ति बनाकर आदर्श स्थापित करने की कोशिश की है।

रामानन्द सागर ने भी इसी मनोविज्ञान के तहत कैकेयी का चरित्रांकन किया है। धारावाहिक में भी कैकेयी का चरित्र इसी कठोरता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। वह राजा दशरथ से कहती है – ''हाँ महाराज! चौदह वर्ष तक राम तपस्वी की तरह मुनिवेश में वन में रहें। उनका किसी भी नगर में जाना वर्जित हो। अरे, मेरी बात सुनकर आपको यह सन्निपात–सा क्या हो गया? ऐसा तीर–सा क्यों चुभ गया महाराज? मेरे दो वरदान आपके पास धरोहर स्वरूप थे सो मैंने जो मन चाहा माँग लिया। यदि आप न देना चाहें तो मत दीजिए। तोड़ दीजिए अपना वचन। सारे संसार में आपका ही अपयश फैलेगा। फिर धर्म और सत्य का नाम अपनी जिह्वा पर कभी मत लाइएगा।''[60]

रामानन्द सागर ने इस प्रसंग को तुलसी से अधिगृहीत किया है इसलिए मनोवैज्ञानिक आधार पर इसमें भिन्नता न के बराबर है। कहीं–कहीं संवाद मानस का अनुवाद प्रतीत होता है। कैकेयी उलाहना देती हुई कहती है – ''महाराज! राम यदि इतना ही प्यारा था तो उसकी शपथ लेकर मुझे वचन देने की क्या आवश्यकता थी? बड़े उदार बनकर, दानी बनकर किस बल से कहा था – माँग कैकेयी! जो चाहती है दूँगा।''[61] इसी प्रसंग को तुलसी लिखते हैं –

''जौं अंतहुँ करतबु रहेऊ। मागु मागु तुम्ह केहिं बल कहेऊ।।''[62]

इस प्रकार कैकेयी का चरित्र एवं मनोविज्ञान उसी प्रकार है जैसा मानस में व्यंजित है।

जिस आदिम मनोवृत्ति की बात कैकेयी के सन्दर्भ में की गई थी, उसका प्रबल रूप रावण में दिखता है। कैकेयी मनोरथ हेतु सिर्फ पति को मृत्यु की ओर अग्रसर करती है और सौतेले पुत्र को कष्ट पहुँचाती है किन्तु रावण समस्त संसार को कष्ट देकर स्वयं मृत्यु की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार मानस–ऊर्जा के

---

[60] रामानन्द सागर, धारावाहिक रामायण पटकथा, पृ. 184, एपिसोड 14
[61] वही, पृ. 187, एपिसोड 14
[62] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 334

दो रूप हैं पहला काम और दूसरा मृत्यु। मृत्यु विध्वंसक ऊर्जा है। रावण इसी मनेवैज्ञानिक आक्रामक प्रवृत्ति से ग्रस्त होता है। वह समस्त संसार को अपने वश में करना चाहता है।

''होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ।।''[63]

जो वश में न हो उसे जीवित छोड़ना भी नहीं चाहता –

''ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी।।
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता।।
भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र।।''[64]

कहने का अर्थ यह कि रावण दूसरों को वश में करना चाहता है किन्तु वह स्वयं परवश है। आत्मनियंत्रण का उसमें आभाव है। आत्मवश न होने के कारण वह दूसरों को मृत्यु की ओर ढकेलता ही है, साथ ही स्वयं भी खिसकता जाता है। दशरथ भी अपने वश में नहीं है पर वह दूसरे को नहीं मारते, वरन् विरह में स्वयं मृत्यु का वरण कर लेते हैं। कैकेयी आत्मनियंत्रित है, इसलिए दूसरे को मारती है स्वयं नहीं मरती। तीनों ही पात्रों में अहं का प्राधान्य है। किसी का अहं अपने सत्य के लिए है, किसी का अपने वात्सल्य के लिए और किसी का सुख–वैभव के लिए। इस विचार का प्रसार धारावाहिक में भी दिखता है। इसी सुख–वैभव से प्रेरित रावण धारावाहिक में मन्दोदरी से कहता है – ''महारानी मन्दोदरी! एक साधारण पुरुष और राजा के धर्म में अन्तर होता है। एक साधारण पुरुष किसी की सम्पत्ति पर हाथ डाले तो वह पाप हो सकता है परन्तु राजा सारे देश की सम्पत्ति का स्वामी होता है। फिर सीता की बात तो ऐसी है जैसे अंधे भिखारी की गुदड़ी में संसार का सबसे अमूल्य रत्न पड़ा हो, जहाँ उसका कोई उपयोग नहीं। राजा का अधिकार है उस रत्न को भिखारी की झोली से निकालकर अपने मुकुट में सजा ले

---

[63] वही, पृ. 144
[64] वही, पृ. 156

जिससे उस रत्न और राजा दोनों का आदर बढ़े। आज हमने ऐसा ही करने का निर्णय किया है।''[65]

धारावाहिक के रावण के चरित्र में और मानस के रावण के चरित्र में थोड़ी भिन्नता दिखाई देती है क्योंकि रावण से जुड़े अधिकांश प्रसंगों को वाल्मीकि रामायण से लिया गया है। बीच–बीच में कहीं–कहीं मानस के अनुसार चरित्रों को मोड़ दिया गया है जिससे पात्र के मनोविज्ञान में अंतर आ गया है। तुलसीदास का रावण राम से बैर भी भक्ति भाव से करता है –

''सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तौ मैं जाइ बैरू हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।।[66]

वह सोचता है कि पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान ने ही यदि अवतार लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु के बाण से प्राण त्यागकर भवसागर से तर जाऊँगा।

धारावाहिक में चित्रित रावण का मनोविज्ञान इससे भिन्न है, वह इसे देवताओं की साजिश समझता है और अपने अपमान का बदला लेने के लिए सहज मानवीय भाव से उद्धत होता है। वह शूर्पणखा से कहता है – ''हम तुम्हारे अपमान और अपने भाइयों की मृत्यु का बदला लेना हमारा परम कर्तव्य समझते हैं अन्यथा संसार के लोग हमारी हँसी उड़ाएँगे। अकम्पन! कहाँ हैं वे मानव जिन्होंने अपनी मृत्यु का आह्वान किया है, हमारे भयंकर जन–स्थान का विनाश किया है? हमारा अपराध करके इन्द्र, कुबेर, यम और स्वयं विष्णु को चैन से नहीं रह सकते। जो रावण काल का भी काल है, अग्नि को भी भस्म कर सकता है, मौत को भी मार डालने की शक्ति रखता है, उसके रास्ते में आने का साहस किसने किया और क्यों किया?''[67]

---

[65] रामानन्द सागर, धारावाहिक रामायण पटकथा, पृ. 417, एपिसोड 31
[66] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 597
[67] रामानन्द सागर, धारावाहिक रामायण पटकथा, पृ. 412, एपिसोड 31

इस प्रकार दोनों ही चरित्रों का मनोविज्ञान भिन्न है, हालाँकि दोनों एक ही कर्म में प्रवृत्त होते हैं।

तुलसीदास ने न सिर्फ आदिम ऊर्जा के मनोविज्ञान को ही सफलतापूर्वक चित्रित किया है बल्कि ऐसे भी पात्र हैं जो अपनी तपोमयी ऊर्जा से संघर्ष करते दिखाई पड़ते हैं, कभी उनका शमन कर लेते हैं कभी समझौता कर लेते हैं मानस में सीता का चरित्र इस दृष्टि से बड़ा ही मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक है। जीवन की सहज ऊर्जा और नैतिक मन का संघर्ष सीता के चरित्र में सर्वत्र विद्यमान है। मानस में पुष्पवाटिका प्रसंग का समावेश कर तुलसीदास ने नैतिकता, मर्यादा एवं परम्पराओं का मनोवैज्ञानिक स्तर का द्वन्द्व दिखाया है। इस प्रसंग में राम का लक्ष्मण से यह कहना – ''मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व विजय कहँ कीन्ही।।''[68] यह राम के हृदय में व्याप्त मनुष्य की सहज एवं आदिम प्रवृत्ति का परिचायक है। इसी प्रकार सीता के मनोविज्ञान में भी इसकी झलक दिखाई पड़ती है।

''देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि।।''[69]

सीता की यह मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति नारी की सहज आदिम प्रवृत्ति है। धनुष यज्ञ के अवसर पर सीता द्वारा मन ही मन राम को चाहना इसी मनोविज्ञान का द्योतक है। तुलसीदास ने लिखा है –

''मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई।।[70]

धनुष यज्ञ के समय जनक की प्रतिज्ञा मानव–मर्यादा की प्रतिज्ञा है पर इस मर्यादा के समर्थक जनक को पुत्री के मन का पता नहीं चलता, वह तो अपनी आन पर दृढ़ हैं।

''तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू।।''[71]

[68] गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 196
[69] वही, पृ. 200
[70] वही, पृ. 212

लेकिन मर्यादावादी जनक यहाँ तक सोचते हैं।

''सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ।।''[72]

किन्तु इस अवसर पर सीता का मन अन्दर से इस मर्यादा का विरोध करता प्रतीत होता है।

''नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा।।
अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी।।''[73]

यह सन्देश आने आप में मार्मिक है, जो विवशतावश उपजा है। धारावाहिक में भी इस मनोविज्ञान को इसी रूप में दर्शाया गया है। यह पूरा प्रसंग ही 'मानस' पर आद्धृत है। राम के सम्पूर्ण चरित्र एवं कथा को मानस की पंक्तियों से ही भरने की कोशिश की गई है। राम की मनोवैज्ञानिक दशा का चित्रण रामानन्द सागर ने संवाद के माध्यम से किया है। सीता की मनोदशा मानस के अनुसार बुनी गई है। सीता का मनोविज्ञान इस प्रसंग में मानस में पूर्णरूपेण अभिव्यक्त हुआ है, किन्तु धारावाहिक में वैसा नहीं है। यहाँ भाव से अधिक घटना को प्रधानता दी गई है।

सीता का मनोविज्ञान धर्म के तथाकथित अनुशासन से इतर दिखाई देता है। वनगमन के समय सीता ने राम के द्वारा सिखाए गए धर्म को स्वीकार नहीं करती और अपने हृदय की बात स्वीकार करती हैं। सीता अपने मन के गूढ़तम स्पन्दनों को समझती हैं और उसे अभिव्यक्त करती हैं।

''मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं।।''[74]

आगे वनगमन प्रसंग को देखें, तो धारावाहिक में भी सीता का धर्म उसके हृदय से निकलता है। वह राम से कहती हैं – ''दुःखदायी तो आपका वियोग है प्रभु। मेरे लिए सुख और दुःख का अर्थ बस इतना ही है, जहाँ आप हैं वहाँ मेरे लिए सुख ही सुख है और जहाँ आप नहीं, वहाँ स्वर्ग भी मेरे लिए नरक से अधिक दुःखदायी है। नाथ! जीवन भर साथ रखने के लिए वचनबद्ध होकर क्या आपका

---

[71] वही, पृ. 215
[72] वही, पृ. 215
[73] वही, पृ. 219
[74] वही, पृ. 357

अकेले वन में जाना अधर्म नहीं कहलाएगा? हे आर्य श्रेष्ठ! अपने धर्म के साथ मुझे भी अपने धर्म का पालन करने दीजिए।''[75]

सीता वन में राम का अनुगमन धर्म–पालने हेतु करती हैं। सीता का चरित्र मनस्विता का चरित्र है। वे मनोविज्ञान पर आधारित आचरण करती हैं। वे आरोपित मर्यादा स्वीकार नहीं करती। जैसा कि कहा जा चुका है, उनका धर्म भी उनके हृदय से निकलता है, जिसकी व्याख्या वे करती हैं। सीता विवश नहीं हैं वे स्ववश हैं। रामकथा की मार्मिक घटनाएँ और विपत्तियाँ उनसे सम्बद्ध है पर वे कभी भी विचलित नहीं हुईं। चाहे वनगमन का समय हो, हरण का समय हो, अशोक वाटिका का समय हो या अग्नि–परीक्षा, वे कभी विचलित नहीं हुई। जिस दृढ़ता के साथ विपत्ति में स्थित रहती हैं, वहीं धारावाहिक में सीता विचलित हो उठती हैं। त्रिजटा सीता को समझाती एवं ढाँढस बँधाती है – ''संकट आते भी हैं और संकट टल भी जाते हैं। एकदम निराश होकर किसी प्रकार के अमंगल की कल्पना करना तुम जैसी धीर–वीर नारी को शोभा नहीं देता। सती स्त्री की शक्ति का क्या तुम्हें भान नहीं? जगाओ उस शक्ति को और रोक दो आने वाली मृत्यु को। नारी की शक्ति सृष्टि में महानतम है। यह समय रोने का नहीं है पुत्री। अपनी अन्तर की शक्ति को जगाओ और एकाग्रचित होकर जगदम्बा के सामने खड़ी होकर पति का जीवन माँगो। तुम जैसी महासती की माँग जगदम्बा भी नहीं टाल सकेगी।''[76]

यद्यपि मृत्यु की कामना मानस में भी सीता करती है किन्तु वह केवल पति वियोग के कारण, न कि भय एवं निराशा की स्थिति में। जाहिर है अतिशय भावुकता एवं नाटकीयता पैदा करने के कारण धारावाहिक में सीता का चरित्र कहीं–कहीं भिन्न दिखाई देता है। इस प्रकार हरण से लेकर अयोध्या प्रत्यावर्तन तक सीता का चरित्र धारावाहिक प्रस्तोता ने 'मानस' पर आद्धृत मनोविज्ञान की तरह ही रचने का प्रयास किया है। हालाँकि अरण्यकाण्ड से लेकर लंकाकाण्ड तक की कथा के अधिकांश प्रसंग वाल्मीकि से ग्रहण किए गए हैं। इससे चारित्रिक मनोविज्ञान कहीं–कहीं प्रभावित हुआ है।

---

[75] रामानन्द सागर, धारावाहिक रामायण पटकथा, पृ. 202, एपिसोड 18
[76] वही, पृ. 856

'मानस' के नायक 'राम' के चरित्रगत मनोविज्ञान की चर्चा यहाँ आवश्यक है। तुलसी के 'मानस' में राम का यदि सूक्ष्म अध्ययन करें, तो राम का दो चरित्र उभरकर आता है। एक 'राम ब्रह्म परमारथ रूप' हैं तो दूसरे साधारण मानव। भगवान राम का चरित्र परम्परागत है वे करुणानिधान, सर्वशक्तिमान और भक्तवत्सल हैं, किन्तु मानस का मनोविज्ञान मानव राम में ही केन्द्रित है। मानव राम में मानवीय भावनाएँ पुत्र, पति, भाई, स्वामी के रूप में चित्रित है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यदि राम के ईश्वरीय चरित्र को छोड़ भी दिया जाए तो मानव–राम का चरित्र ही तुलसी की काव्य–कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है। मानव राम सुन्दर हैं। उदात्त हैं। मानव के परम एवं चरम विकास की प्रतिमूर्ति हैं। मनुष्य की उदात्तता के सम्बन्ध में जो कल्पना की जा सकती है, उसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण राम हैं। कहीं–कहीं मानव राम, भगवान राम से भी श्रेष्ठ हो गए हैं। उदाहरणस्वरूप केवट का प्रसंग देखा जा सकता है जहाँ भगवान राम एवं मानव–राम एक साथ दिखाई पड़ते हैं।

> ''कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करू जेहिं तव नाव न जाई।।
> बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलम्बु उतारहि पारू।।''[77]

आगे के चरित्र का वर्णन तुलसीदास इन शब्दों में करते हैं –

> ''जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।।
> सोइ कृपालु केवटहिं निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहुते थोरा।।[78]

अन्य प्रसंगों में राम के भगवत स्वरूप की याद दिलाने में तुलसी व्यग्र और आतुर रहते हैं। इस स्थल पर भगवान राम के पतित पावन रूप को केवट ने चुनौती दे दी और मानव राम को करुणा के लिए प्रेरित किया है।

तुलसी के मानव–राम मनस्वी, मनोजयी, दुर्धर्ष वीर, मानव, स्नेहों से भरपूर, सहज नैतिकता एवं गम्भीर आध्यात्मिकता के जागरूक प्रतिमूर्ति हैं, किन्तु अनेक

---

[77] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 386
[78] वही, पृ. 386

मार्मिक स्थलों पर वे साधारण मानव की भाँति विचलित हुए हैं। जैसे – सीता विछोह में राम का स्वरूप दृष्टव्य है –

"आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना।।
हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सीलब्रत नेम पुनीता।।
लछिमन समुझाए बहु भाँति। पूछत चले लता तरु पाँती।।
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।।"[79]

आश्रम को जानकी से रहित देखकर राम साधारण मनुष्य की तरह व्याकुल हो उठे। लक्ष्मण के समझाने पर भी लता, वृक्षों, पक्षियों से पूछते फिरते हैं क्या तुमने सीता को देखा है? लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर भी राम के इसी स्वरूप का दर्शन तुलसी कराते हैं।

बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्त्रवत सलिल राजिव दल लोचन।।
उमा एक अखण्ड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई।।[80]

यहाँ भी राम नरगति का ही प्रदर्शन कर रहे हैं। क्योंकि राम जीवित हैं, संवेदनशील हैं, इसलिए इन प्रसंगों में विचलित दिखाई पड़ते हैं। यदि इन प्रसंगों पर भी अडिग रहते तो शायद सहज मानवीय रूप एवं मनोविज्ञान से वंचित रह जाते।

जैसा कि कहा जा चुका है, धारावाहिक में घटना प्रधान है, चरित्र की प्रधानता पर कम जोर दिया गया है, इसलिए जिस मनोविज्ञान की अपेक्षा धारावाहिक में की गई है, उसका आभाव है। धारावाहिक में केवट प्रसंग संक्षेप में वर्णित है जिसमें संवाद से अधिक गीतों एवं दोहों का उपयोग किया गया है। राम के अलौकिक रूप का दर्शन रामानन्द सागर के यहाँ भी है जो गीतों में झलकता है।

[79] वही, पृ. 606
[80] वही, पृ. 760

"केवट रे! बड़भागी तोरी नैया।
बड़भागी तोरी नैया
आज तोरी नैया में विराजे
भवसागर के खवैया।
बड़भागी तोर नैया।"[81]

यहाँ सम्पूर्ण मनोविज्ञान मानस के आधार पर ही रचित है। जानकी के विरह में व्यथित राम एक साधारण मनुष्य की भाँति चिन्तित हैं और लक्ष्मण से कहते हैं – "लक्ष्मण! इस प्रदेश की सुन्दरता देखकर बार–बार जानकी की याद आती है। ऐसे दृश्य उसके मन को बहुत भाते थे। परन्तु आज न जाने वह किस अवस्था में होगी? क्या सोचती होगी?"[82]

किन्तु विरह में व्याकुल राम की मनोदशा का जो वर्णन तुलसी के मानस में है, उसका यहाँ सर्वथा आभाव है।

लक्ष्मण को जब शक्तिबाण लगता है, तब राम का यह कथन एक भावुक एवं भातृप्रेम में आबद्ध व्यक्ति की मनोदशा का चित्रण करता है – "मैं सत्य कह रहा हूँ। यदि मेरे लक्ष्मण को कुछ हो गया, तो फिर आप लोग राम को भी जीवित नहीं पाएँगे। महाराज सुग्रीव! ऋक्षराज जामवन्त! महाबली केसरी! नल–नील! आप सभी लोगों ने अपने–अपने प्राण दाँव पर लगा दिए मेरे लिए। दुर्धर्ष युद्ध किया परन्तु दैव के आगे किसी का वश नहीं चलता। यदि मेरी मृत्यु भाई के विछोह में ही लिखी है तो उसे कौन टाल सकता है।"[83] यहाँ राम का भगवत स्वरूप न होकर एक साधारण मानव का स्वरूप चित्रित हुआ है। राम के उदात्त मानवीय चरित्र का वर्णन धारावाहिक में भी दिखता है, जब युद्धोपरान्त दशरथ राम को आशीर्वचन देने के लिए प्रकट होते हैं। दशरथ प्रसन्न होकर राम से वर माँगने को कहते हैं तब राम कहते हैं – "महात्मा! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे एक ही वर दीजिए। कृपा करके मेरी माता को दिया हुआ श्राप वापिस ले लीजिए। हाँ

[81] रामानन्द सागर, धारावाहिक रामायण पटकथा, पृ. 244, एपिसोड 18
[82] वही, पृ. 464, एपिसोड 35
[83] पटकथा, पृ. 877, एपिसोड 67

आपने अन्त में माता कैकेयी से कहा था कि मैं–मैं तेरा त्याग करता हूँ। मेरी विनती है कि आप का दिया हुआ श्राप मेरी माता को स्पर्श न करे और आप उन पर और भरत पर प्रसन्न हों। पिताश्री! मुझ पर एक कृपा कीजिए। मेरी माता को श्राप मुक्त कर दीजिए। यदि मैं – यदि मैं अपनी माता को श्राप मुक्त न कर सका तो मेरा यह जीवन–यह जीवन निष्फल रहेगा पिताश्री!''[84]

यहाँ तुलसीदास के आदर्श राम का चरित्र उभरकर सामने आता है। इस प्रकार धारावाहिक में भगवान राम और मानव–राम दोनों का मिला–जुला चरित्र दिखाई देता है क्योंकि वाल्मीकि एवं तुलसी दोनों के राम का मनोविज्ञान रामानन्द सागर ने मिश्रित कर दिया है। 'मानस' के राम एवं धारावाहिक के राम में अन्तर सिर्फ यह है कि चारित्रिक भावुकता का जो प्रबल आवेग तुलसीदास में है, वह यहाँ नहीं है।

भरत के चरित्र को तुलसीदास ने मानस में उत्कृष्टता प्रदान की है। भरत भायप भक्ति के विशेषण हैं जिसका उपयोग राम समय–दर–समय अपने प्रियजनों के लिए करते रहते हैं। लेकिन भरत के चरित्र पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो भरत आत्महीनता की अनुभूति से ग्रस्त हैं, भरत ने सेवक धर्म स्वीकार किया है। स्वामी के समक्ष वे हमेशा आत्महीनता की ग्रंथि से ग्रसित हैं। जब उनके स्वामी राम वन चले गए और उसकी सूचना ज्यो ही उन्हें मिली वे पिता की मृत्यु तक भूल गए।

''भरतहिं बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।।
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु।।''[85]

ज्यों ही भरत ने ऐसा सुना, उन्होंने इन सारे अनर्थ का कारण अपने आप को मान लिया। तब से लेकर राम के अयोध्या आगमन तक वे इसी आत्मग्लानि में जीते रहे।

''एकइ उर बस दुसह दबारी। मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी।।''[86]

---

[84] वही, पृ. 995, एपिसोड 77
[85] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 433

सेवक धर्म निबाहने के लिए वे इस सिद्धान्त को मानते हैं –

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा।।''[87]

उन्हें 'राम–रजाइ' और 'सिय पद धूरि' मानने में ही सुख मिलता है। उन्हें आयसु सिर धरना ही जीवन का उद्देश्य लगता है। आज्ञापालन उनके संस्कार में बस गया हैं वे मर्यादा भंग का साहस नहीं कर सकते। जीवन की शक्ति का उन्मेष उनमें नहीं दिखाई देता, वे अपने को 'अवगुण उदधि अगाधु' मानते हैं अपने स्वामी के मोह में वशीभूत भरत पिता के वचन की अवहेलना कर राम को मनाने चित्रकूट पहुँच जाते हैं –

''प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयउँ इहाँ समाजु सकेली।।''[88]

धारावाहिक में भरत का चारित्रिक मनोविज्ञान मानस में कहीं–कहीं भिन्न दिखाई देता है। कथा का संयोजन ज्यादातर स्थानों पर मानस के अनुरूप ही किया गया है किन्तु कहीं–कहीं भरत द्वारा प्रयुक्त विचार मानस के भरत से मेल नहीं खाते हैं। उदाहरणस्वरूप भरत का कैकेयी को भला–बुरा कहना मानस में काफी मर्यादित ढंग से प्रस्तुत किया गया है किन्तु धारावाहिक में भरत रामवनगमन के क्षोभ में इसकी मर्यादा लांघ जाते हैं। भरत कैकेयी से कहते हैं – ''महारानी कैकेयी! यदि तुम स्त्री न होती तो तुम्हारे इस दुष्कर्म के लिए मैं आज अपने हाथों से तुम्हारे टुकड़े–टुकड़े कर देता।।''[89] आगे भरत कहते हैं –

''पाप की इस जीवित मूर्ति को जीवित करने देना भी पाप है परन्तु–परन्तु ऐसा करने से कहीं मेरे राम भैया मेरा परित्याग न कर दें, इसलिए मैं विवश हूँ।''[90]

तुलसीदास के लिए भरत का यह चरित्र शायद अपेक्षित नहीं था कि एक पुत्र अपनी माँ से इस तरह का संवाद करे। कथानक की भावुकता में बहकर शायद रामानन्द सागर इस प्रकार के संवादों की सृष्टि कर गए। भरत को यह

---

[86] वही, पृ. 450
[87] वही, पृ. 466
[88] वही, पृ. 542
[89] रामानन्द सागर, धारावाहिक रामायण पटकथा, पृ. 289, एपिसोड 21
[90] वही, पृ. 289, एपिसोड 21

पता है कि राम सहर्ष वनवास स्वीकार कर चुके हैं, उनके मन में कैकेयी के प्रति कोई दुर्भाव नहीं है। इसलिए वे इस शंका से ग्रसित हैं कि अगर मैंने कैकेयी की हत्या कर दी, तो राम उनका त्याग कर देंगे। इस भय से वे कैकेयी को चेतावनी देकर उसका परित्याग कर देते हैं भरत का यह मनोविज्ञान उन्हें आत्महीनता से ग्रसित दिखाता है, जो हमेशा अपने स्वामी के प्रति व्यवहार के लिए सशंकित रहता है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर यही स्थिति तुलसीदास के यहाँ भी है किन्तु वह मर्यादित है।

धारावाहिक में भी भरत राम वनगमन के लिए अपने आप को कोसते रहते हैं, वे इसके लिए खुद को जिम्मेदार मानते हैं भरत कौशल्या से कहते हैं – ''माता आप जैसी उदारता इस जगत में कहाँ मिलेगी? परन्तु–परन्तु सारा संसार तो मुझी को इस अनर्थ का जड़ कहेगा। कहेगा – भरत ने राजा बनने के लिए कैसा षड्यन्त्र रचा?''[91]

आगे भरत भरद्वाज से कहते हैं ''मेरे कारण इतना बड़ा अनर्थ हो गया, उसकी ग्लानि मन से कैसे जा सकती है? मुनिवर! अयोध्या के राजवंश पर ऐसी विपत्ति का समय पहले कभी नहीं आया।''[92] यह भाव अन्त तक भरत के मन में बना रहता है। इस प्रकार भरत की मनःस्थिति अधिकांशतः वही है जो मानस में वर्णित है। कहीं–कहीं पटकथा निर्माता ने संवादों की सृष्टि वाल्मीकि से एवं कहीं–कहीं लोकाभिरुचि के अनुसार की है, जिससे मनोविज्ञान में थोड़ा बहुत अन्तर आया है किन्तु वह सम्पूर्ण चरित्र को प्रभावित नहीं कर पाया है।

यद्यपि हनुमान ने भी सेवक धर्म स्वीकार किया है। वे भी राम को अपना स्वामी मानते हैं। उनमें भी धर्म का समर्पण पक्ष प्रबल है, पर वे भरत की भाँति आत्महीनता से ग्रस्त नहीं हैं। उनमें अपना बल, सत्य एवं स्वायत्त चेतना है, जो हीनता के भावों से मुक्त है। धारावाहिक में भी हनुमान का चरित्र इसी प्रकार से वर्णित है।

---

[91] वही, पृ. 297, एपिसोड 22
[92] वही, पृ. 314, एपिसोड 23

इस प्रकार तुलसीदास ने सामाजिक लोकमंगल के लिए इन पात्रों की सृष्टि की जो उनके विचारों को अपनी चारित्रिक विशेषताओं के साथ जनमानस में अभिव्यक्त करते हैं। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' एक साहित्यिक ग्रंथ है, जिसमें पात्रों का चरित्र एवं मनोविज्ञान ही उसकी अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है, किन्तु धारावाहिक के पात्रों की अपनी सीमाएँ हैं। विधान्तण एवं रूपान्तरण के कारण इसका बहुत कुछ चरित्र पटकथा लेखक के विचार के साथ अनुस्यूत हो गया है। चूँकि यह दृश्य माध्यम है इसलिए यहाँ घटना प्रमुख है। चरित्र का उपयोग घटना के संदर्भ में किया गया है। काव्यग्रंथ में पाठक अपनी रुचि एवं सामर्थ्य के अनुसार पात्रों के चरित्र एवं मनोविज्ञान को आत्मसात कर लेता है। किन्तु धारावाहिक में दर्शक कल्पना हेतु उतना स्वतंत्र नहीं है, जितना ग्रंथ में। हालाँकि दृश्यों के माध्यम से धारावाहिक निर्माता ने दर्शकों की उन काल्पनिक ऊँचाइयों पर पहुँचाने की कोशिश की है। धारावाहिक के दर्शक पूर्णरूपेण माध्यम पर आश्रित होते हैं, इसलिए यह पटकथा निर्माता एवं निर्देशक का दायित्व है कि वह पात्रों के चारित्रिक मनोविज्ञान को उसी रूप में प्रकट करे, जैसा काव्यग्रंथ या मिथक पुराणों में वर्णित है। इस दृष्टि से अपनी तमाम तकनीकी एवं रूपान्तण की सीमाओं के बावजूद रामानन्द सागर ने रामकथा के पात्रों को उसके सम्पूर्ण चारित्रिक विशेषताओं के साथ चित्रित करने का प्रयास किया है।

पाँचवाँ अध्याय

रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण की भाषा

5.1 प्रेमाख्यान की भाषिक परम्परा और रामचरितमानस

5.2 रामचरितमानस की भाषा

5.3 रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण के पात्रों का भाषिक–स्तर

5.4 संवाद की भाषा और धारावाहिक रामायण

पाँचवाँ अध्याय

रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण की भाषा

'रामचरितमानस' एवं 'धारावाहिक रामायण' के कथानक तथा पात्रों के विवेचन के पश्चात तीसरा सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है उसकी भाषा, क्योंकि किसी भी माध्यम की सफलता उसकी भाषा पर निर्भर है। चाहे 'रामचरितमानस' की साहित्यिक अभिव्यक्ति हो या फिर धारावाहिक की दृश्यात्मक प्रस्तुति, सबकी लोकप्रियता एवं सफलता में भाषा की भूमिका रही है। सोलहवीं शताब्दी से पूर्व भी रामकथा आधारित ग्रंथ लिखे जा चुके थे किन्तु 'रामचरितमानस' को जितनी लोकप्रियता प्राप्त हुई उतनी शायद अन्य ग्रंथ को नहीं हुई। इसका सबसे प्रमुख कारण 'रामचरितमानस' का अवधी में लिखा जाना था, जिसकी लयात्मकता एवं सरसता ने आम–जनजीवन को आकर्षित किया। उसी प्रकार आधुनिक काल में रामानन्द सागर द्वारा प्रयुक्त आम बोल–चाल की हिन्दी ने धारावाहिक को लोकप्रियता प्रदान की।

'रामचरितमानस' एवं धारावाहिक रामायण की भाषा एवं विधा दोनों भिन्न है, एक अवधी की रचना है दूसरी खड़ी बोली। एक पद्यात्मक रचना है दूसरी गद्यात्मक संवाद की शैली। रूपान्तरण की दृष्टि से भी जबकि साहित्यिक कृति का भाषा एवं विधा दोनों दृष्टि से रूपान्तरण होता है तब उसकी भाषा का स्वरूप वही नहीं रह जाता जो उस साहित्यिक कृति में होता है। फलतः इनकी भाषा में भी भिन्नता स्वाभाविक है। भाषा की यह भिन्नता महज शब्दों तक ही सीमित नहीं होती वरन पात्रों के भाषिक–स्तर में भी भिन्नताएँ होती हैं, जिससे पात्रों का मनोविज्ञान प्रदर्शित होता है। पात्रों का यह भाषिक–स्तर लेखक के विचार पर निर्भर करता है। वह अवसर एवं पात्रों के अनुसार भाषा का चयन करता है

साहित्य एवं धारावाहिक के अपने भाषिक प्रतिमान होते हैं, जिनके अनुसार रचनाकार उसकी सर्जना करता है। यह भाषा एवं भाषिक प्रतिमान स्वतःस्फूर्त नहीं होते बल्कि रचनाकार भाषा के लिए अपने पूर्ववर्ती रचनाओं एवं रचनाकारों से परम्पराबद्ध होता है।

5.1 प्रेमाख्यान की भाषिक परम्परा और रामचरितमानस

अवधी भक्तिकाल की प्रमुख लोकभाषा रही है। जिसमें सूफी कवियों से लेकर तुलसीदास के रामचरितमानस तक की परम्परा रही है। चूँकि भक्ति–आन्दोलन एक लोक–जागरण था इसलिए उस दौर के तमाम साहित्य लोकभाषाओं में रचे गए। चाहे ब्रजभाषा हो या अवधी, कवियों ने अपने आप को वृहत्तर जनमानस से जोड़ने के लिए इन लोकभाषाओं का उपयोग किया। हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि अवधी या ब्रजभाषा उस दौर के बौद्धिक विमर्श की भाषा नहीं थी, बल्कि संस्कृत बौद्धिक विमर्श की भाषा समझी जाती थी। जिसके विरोध में इन कवियों ने लोकभाषा में अपने भावों को अभिव्यक्ति दी। संस्कृत की इसी संकुचित सीमा की ओर इशारा करते हुए कबीर ने कहा था – 'संसकिरत है कूप जल भाखा बहता नीर।' जाहिर है यह भाषा नहीं थी, यह भाखा थी जो आम जन–जीवन से निसृत हुई और कवियों के आत्माभिव्यक्ति का साधन बनी थी। यह मूलतः बोलचाल की भाषा थी। काव्यभाषा के व्याकरणों से इतर इन कवियों ने इसे अपनाया था। इन्हीं लोकभाषाओं से धीरे–धीरे काव्यभाषा का जन्म हुआ।

5.1.1 काव्यभाषा बनाम लोकभाषा

काव्यभाषा एवं लोकभाषा के स्वरूप पर यदि विचार करें तो काव्य की भाषा में स्थिरता होती है किन्तु बोलचाल की भाषा में गतिमयता होती है। लोकभाषा में शब्द–समूह एवं वाक्य की प्रधानता रहती है, तो काव्यभाषा में शब्द की इकाई की। कविता में शब्द तो लोकभाषा के ही होते हैं, पर काव्यभाषा का इसमें अपना प्रयोग

रहता है। दैनिक जीवन में प्रयुक्त एक शब्द प्रायः एक ही अर्थ देता है, पर काव्य में वह कई अर्थों का द्योतक होता है। वहाँ शब्द के अर्थ साहचर्य के कारण भी अनेक हो जाते हैं। काव्य में शब्द–विन्यास का महत्त्व अधिक रहता है और उसके शब्द नादात्मक, बिम्बात्मक तथा सांकेतिक होते हैं, परन्तु बोलचाल की भाषा में ऐसा नहीं है। इसमें अभिधा प्रधान होती है। अपनी लयता के कारण काव्यभाषा साधारण लोकभाषा से भिन्न हो जाती है।

अलंकार प्रयोग में भी काव्यभाषा जहाँ नवीन अलंकारों को प्रश्रय देती है, वहाँ लोकभाषा में इसके परित्यक्त अलंकार ही होते हैं काव्यभाषा लिखित होती है और दैनिक व्यवहार की भाषा उच्चरित। लोकभाषा में वाक्य का प्रयोजन उसके अर्थ तक ही सीमित रहता है, परन्तु काव्यभाषा स्वयं काव्य होती है। इस प्रकार अगर दोनों की तुलना की जाए तो काव्यभाषा एवं लोकभाषा दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। काव्यभाषा एवं लोकभाषा के अविच्छेद सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए 'टी.एस. इलियट' ने कहा है – "कविता की भाषा और बोलचाल की भाषा में अधिक अंतर नहीं होना चाहिए। दोनों का सम्बन्ध परस्पर पोषक है, एक दूसरे के लिए प्राणदायक है।"[1]

इस प्रकार लोकभाषा के गर्भ से ही काव्यभाषा का जन्म होता है। दोनों में स्तरगत भिन्नता अवश्य परिलक्षित होती है किन्तु उनमें अभिन्नता भी है। लोकभाषा ही काव्यभाषा को सतत समृद्ध करती रहती है, चाहे शब्दों के माध्यम से हो, मुहावरों के माध्यमों से हो या फिर अन्य माध्यमों से। कहने का अर्थ यह कि अवधी की जिन लोकभाषा का स्वरूप प्रारम्भ में सूफी प्रेमाख्यानों में दिखाई देता है, उसी का परिनिष्ठित रूप आगे तुलसीदास के रामचरितमानस में दिखता है।

5.1.2 रामचरितमानस से पूर्व सूफी प्रेमाख्यान की भाषा

अवधी की पहली कृति 'मुल्ला दाउद' कृत 'चन्दायन' को माना जाता है। यह मसनवी शैली में लिखी गई रचना है। इसके सर्वप्रथम ईश्वर की वन्दना की जाती

[1] उद्धृत डॉ. रामदेव प्रसाद, रामचरितमानस की काव्यभाषा, पृ. 69

है, फिर पैगम्बर की, फिर गुरू की और अन्त में शाहेवक्त अर्थात तत्कालीन राजा की स्तुति की जाती है। दोहा, चौपाई का इसमें विशेष प्रयोग किया गया है। दोहा, चौपाई के प्रथम प्रयोग को लेकर हजारीप्रसाद द्विवेदी का मानना है कि ''दोहा चौपाई में काव्य–रचना की प्रणाली सूफी कवियों का आविष्कार नहीं था। सहजयान के सिद्धों में से सहरपाद और कृष्णाचार्य के ग्रंथ में दो–दो, चार–चार चौपाइयों (अर्द्धालियों) के बाद दोहा लिखने की प्रथा पाई जाती है। अपभ्रंश काव्यों में दस–दस, बारह–बारह चौपाइयों, अर्द्धालियों के बाद धत्ता उल्लाला आदि लिखकर प्रबन्ध लिखने का नियम बहुत पुराना है। ''अपभ्रंश काव्यों में ठीक उन्हें चौपाई नहीं कहते थे परन्तु वे हैं वे वही चीज जिसे तुलसीदास ने और जायसी आदि ने चौपाई कहा है।''[2] परन्तु दोहा चौपाई पद्धति को व्यवस्थित करने का श्रेय इन्हीं सूफी कवियों को जाता है। कुतुबन और मंझन ने जहाँ पाँच अर्द्धालियों के बाद दोहे का क्रम रखा, वहीं जायसी, उसमान एवं शेखनवी ने सात–सात अर्द्धालियों के बाद दोहे का क्रम रखा है।

मुल्ला दाउद की रचना ठेठ अवधी है, जो वर्णन हेतु उपयुक्त है। इनमें अरबी, फारसी के शब्द बाद के कवियों की अपेक्षा कम है। तत्सम एवं तद्भव शब्दों की अधिकता है। अवधी को लोकभाषा से काव्यभाषा के रूप में स्थापित करने का श्रेय इन्हीं कवियों को जाता है। इन्हीं की परम्परा को कुतुबन, मंझन, जायसी, उसमान आदि ने आगे बढ़ाया। इन सबमें जायसी सबसे प्रमुख कवि हुए, जिन्होंने सूफी प्रेमाख्यान को प्रसिद्धी दी। जायसी के पूर्व दो कवि उल्लेखनीय हैं। एक मृगावती के रचयिता कुतुबन, दूसरे मधुमालती के मंझन। भाषिक दृष्टि से ये कवि महत्त्वपूर्ण हैं। तद्भव शब्दों की जिस परम्परा का अनुसरण बाद के कवियों ने किया उसकी नींव इन्होंने ही रखी थी। इनके भाषा की विशेषता बताते हुए डॉ. हरदेव बाहरी लिखते हैं – ''सामान्य रूप से उन्होंने जन साधारण की बोली को अपनाकर और उसे सजीव एवं प्रभावपूर्ण रूप दिया उन्हें शब्द–शक्तियों का अच्छा ज्ञान था। भाषा के कलापक्ष का भी उन्होंने पूरा–पूरा ध्यान रखा। अलंकारों का बड़ा प्रयोग किया उनमें शब्द–चमत्कार गौण और कम हैं, अर्थ–चमत्कार अधिक।

---

[2] हजारीप्रसाद द्विवेदी,, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. 65

छन्दों में दोहे और चौपाई के अतिरिक्त बरवै का प्रयोग अधिकारपूर्ण किया गया। अवधी का प्रयोग वर्णनों के लिए बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ।''[3]

5.1.3 तुलसी और जायसी

अवधी की भाषा परम्परा पर बात करते हुए तुलसीदास एवं जायसी पर प्रकाश डालना आवश्यक है। जायसी ने अवधी के लोकस्वरूप को लेकर पद्मावत की रचना की लेकिन तुलसीदास ने परिनिष्ठित अवधी को रामचरितमानस का आधार बनाया। जायसी और तुलसी दोनों एक ही भाषा की दो धाराओं के कवि है। हालाँकि दोनों का वर्ण्य–विषय भिन्न है किन्तु जब हम अवधी की भाषिक परम्परा की बात करेंगे तो इन पर बात करना लाजिमी है क्योंकि जायसी की इस भाषा का तुलसीदास पर अवश्य प्रभाव पड़ा होगा, इसमें संदेह नहीं। 'रामचन्द्र शुक्ल भी मानते है कि ''इसी के ढाँचे पर 34 वर्ष पीछे गोस्वामी तुलसीदास ने अपने लोकप्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचरितमानस' की रचना की। यही अवधी भाषा और चौपाई–दोहे का क्रम दोनों में है, जो आख्यान काव्यों के लिए हिन्दी में सम्भवतः पहले से चला आता रहा हो। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग जायसी एवं तुलसी को छोड़ और किसी कवि ने नहीं किया है। तुलसी के भाषा स्वरूप को पूर्णतया समझने के लिए जायसी की भाषा का अध्ययन आवश्यक है।''[4]

तुलसी की भाषा जहाँ तत्सम शब्दावली की भाषा है वहीं जायसी की भाषा तद्भव शब्दावली की भाषा है। मानस के पचहत्तर प्रतिशत शब्द तत्सम प्रधान है, जबकि जायसी के यहाँ वह दस प्रतिशत के बराबर भी नहीं है। जायसी की भाषा ठेठ, तद्भव और गाँव की भाषा है। जैसा कि कहा जा चुका है जायसी ने सामान्य बोलचाल की भाषा में पद्मावत की रचना की। तुलसीदास ने संस्कृत के तत्सम शब्दावलियों का भरपूर इस्तेमाल किया है। इतना ही नहीं मंगलाचरण एवं स्तुतिगान आदि में संस्कृत का प्रयोग कर भाषा को और अधिक साहित्यिकता प्रदान करने की कोशिश की है। 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' ने जायसी और तुलसी की भाषा को जो तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह निम्नांकित है –

[3] डॉ. हरदेव बाहरी, हिन्दी भाषा, पृ. 215
[4] जायसी ग्रंथावली, संपा. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 5

''जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य 'भाषा' का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य नहीं। वह संस्कृत की कोमलकान्त पदावली पर अवलम्बित नहीं। उसमें अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिए हुए हैं। 'मंजु', 'आनन्द' आदि की चाशनी उसमें नहीं है। जायसी की भाषा और तुलसी की भाषा में यह भारी अन्तर है। जायसी की पहुँच अवध में प्रचलित लोकभाषा के भीतर बहते हुए माधुर्यस्रोत तक ही थी, पर गोस्वामी जी की पहुँच दीर्घ संस्कृत परम्परा द्वारा परिपक्व चाशनी के भण्डारागार तक भी पूरी–पूरी थी।... यदि गोस्वामी जी ने अपने 'मानस' की रचना ऐसी ही भाषा में की होती जैसी कि इन चौपाइयों की है –

कोउ नृप होउ हमै का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी।।
जारै जोग सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।।

तो इनकी भाषा पद्मावत की भाषा होती और यदि जायसी ने सारी 'पद्मावत' की रचना ऐसी भाषा में की होती जैसी कि इस चौपाई की है –

उदधि आइ तेइ बंधन कीन्हा। हति दसमाथ अमर पद दीन्हा।।

तो उसकी और 'रामचरितमानस' की एक भाषा होती। पर जायसी में इस प्रकार की भाषा कहीं ढूँढने में एकाध जगह मिल सकती है। तुलसीदास जी में ठेठ अवधी की मधुरता भी प्रसंग के अनुसार जगह–जगह मिलती है।''[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास के 'मानस' की भाषा काव्यभाषा के उस स्तर तक पहुँच चुकी है जहाँ लोकभाषा का प्रयोग ढूँढना पड़ता है परन्तु 'पद्मावत' में काव्यभाषा को ढूँढना पड़ता है। आचार्य हमारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि ''तुलसीदास की भाषा जितनी ही लौकिक है उतनी ही शास्त्रीय। उसमें संस्कृत का मिश्रण बड़ी चतुरता के साथ किया गया है। जहाँ जैसा विषय होता है, भाषा अपने आप उसके अनुकूल हो जाती है। तुलसीदास के पहले किसी ने इतनी परिमार्जित भाषा का उपयोग नहीं किया था। जायसी की भाषा में न तो

[5] वही, पृ. 183–84

संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है और न कोमलकान्त पदावली की मधुरता है। इनकी भाषा में स्थानीयता सुरक्षित है जिसमें व्याकरण एवं शास्त्रीय नियम का कोई आग्रह नहीं है।''[6]

दूसरी बात यह कि जायसी ने सभी पात्रों के लिए एक ही भाषा–स्तर का प्रयोग किया है। यहाँ भाषा पात्रानुकूल नहीं है जबकि 'मानस' को महाकाव्यत्व की कसौटी पर देखें तो उसके अनुरूप तुलसीदास ने पात्रानुकूल भाषिक स्तर का प्रयोग किया है। निम्न पात्रों के वर्णन में तुलसी की भाषा लोकभाषा हो जाती है। जैसे कोल–किरात और निषाद आदि की भाषा। जायसी एवं तुलसीदास के इस भाषायी स्तर की विविधता को इन उदाहरणों द्वारा समझा जा सकता है। दोनों कवियों ने अपने–अपने अनुसार महाकाव्य का प्रारम्भ वन्दना से किया है। जायसी के वन्दना की भाषा इस प्रकार है –

''सुमिरौ आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू।।
कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू।।
कीन्हेसि अगिनी, पवन, जल खेहा। कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा।।
कीन्हेसि धरती, सरग, पतारू। कीन्हेसि बरन–बरन औतारू।।''[7]

तुलसी इन शब्दों में वन्दना करते हैं –

''बंदौ गुरूपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भब रूज परिबारू।।
सुकृत संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।।''[8]

इस प्रकार जायसी के यहाँ प्रयुक्त 'परकास', 'पिरीत', 'उरेह', 'सरग', 'पतार' आदि के कारण भाषा बोलचाल के समीप है किन्तु तुलसीदास के यहाँ संस्कृत–मिश्रित तथा कोमलकान्त पदावली के कारण भाषा साहित्यिक प्रतीत होती है।

---

[6] हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. 100,
[7] जायसी ग्रंथावली, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 189
[8] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, पृ. 3

इस तरह अवध की लोकभाषा या आम बोलचाल की भाषा को इन सूफी कवियों ने काव्यात्मकता प्रदान की। जिसे आगे चलकर तुलसीदास ने परिष्कृत काव्यभाषा के रूप में स्थापित किया। ऐसा कदाचित नहीं है कि साहित्यिकता के कारण तुलसीदास की भाषा दुबोर्ध है, बल्कि परम्परा प्रसूत संस्कृत एवं प्रेमाख्यान सृजित ठेठ अवधी के बीच उन्होंने एक मानक गढ़ने का प्रयास किया। रामकथा के रूप में जितनी ख्याति रामचरितमानस को प्राप्त हुई, उतनी ही ख्याति अवधी भाषा को। तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में प्रयुक्त अवधी भाषा एवं उसमें प्रयुक्त काव्यांगों पर आगे विचार किया जाएगा।

5.2 रामचरितमानस की भाषा

तुलसीदास मूलतः संस्कृत के विद्वान थे, फिर भी लोकजीवन से अपनी रचनाओं को जोड़ने के लिए उन्होंने अवधी एवं ब्रजभाषा का उपयोग किया। तुलसीदास का इन तीनों भाषाओं पर समान अधिकार था जिसका दर्शन एवं प्रभाव उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। तुलसीदास के भाषा की काव्यगत या व्याकरणिक विशेषताओं पर बात करने से पूर्व हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि तुलसीदास के समय में साहित्यिक अभिव्यक्ति की भाषा ब्रज थी। अवधी महज एक बोली थी, जिसे तुलसीदास ने अपनी प्रतिभा से साहित्यिक भाषा के स्तर पर पहुँचाया। तुलसीदास जिस समय 'रामचरितमानस' की रचना कर रहे थे, उस समय अवधी भाषा का कोई प्रामाणिक व्याकरण नहीं था। जायसी पद्मावत की रचना कर चुके थे। जाहिर है उसी रचना के कुछ नियम तुलसीदास ने व्याकरण के रूप में ग्रहण किया होगा। एक ओर संस्कृत का प्रयोग कर रचना को परम्परा से जोड़ने का प्रयास किया गया है, वहीं ब्रजभाषा एवं अवधी का प्रयोग कर रचना को लोकजीवन से जोड़ने का प्रयास किया गया है। रामजी तिवारी लिखते हैं – "गोस्वामी जी ने जहाँ संस्कृत की प्रचलित शब्दावली के प्रयोग से ब्रज एवं अवधी भाषाओं को सुसंस्कारित स्वरूप प्रदान किया वहीं पर बोलियों के शब्दों को औदात्य से मंडित किया। गोस्वामी जी की कृतियों में अवधी और ब्रजभाषा का जो

निखरा हुआ रूप मिलता है वह अन्य किसी भी कवि की भाषा में उपलब्ध नहीं है। विदेशी शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में लक्षणीय विशेषता यह है कि अरबी–फारसी के शब्दों को गोस्वामी जी ने हिन्दी व्याकरण के अनुसार परिवर्तित कर लिया, साथ ही व्याकरण और ध्वनियों के अपने विशिष्ट प्रयोग से विदेशी शब्दों को हिन्दी का सजातीय बना दिया।''[9]

तुलसीदास ने न सिर्फ संस्कृत, ब्रज एवं अवधी के शब्दों का प्रयोग किया है बल्कि प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी, बंग्ला, गुजराती, भोजपुरी, राजस्थानी आदि का सन्निवेश 'रामचरितमानस' में किया है। 'रामचरितमानस' में ऐसे कई शब्द हैं जो सीधे संस्कृत से लिए गए हैं।

''**तत्सम शब्द** : अकल, अधिकारी, अनुग्रह, अवधि, कदंब, कोसलनाथ, नयन, निषंग, चरित्र, कानन, तीर, निस्तार, भवन, पट, पल्लव, मुकुट, मुष्टि, मंगल, सदन, समर आदि।

तद्‌भव शब्द : अवगाहा, असवारा, अहिजातु, ओस, कबित, करब, आयेसु, कुम्हड़बतिया, कोहबर, खगहा, चरित, जनवास, जनेत, टाप, डासन, निअर, पतोहू, पदुम, तीरथराउ, बचन आदि।

देशज : अचगरि, अढ़ुकि परहिं, अवचट, ओड़न, ओहार, कोपर, गाला, चपेट, चाऊ, चाहि ठट्टा, ढाबर, दुराउ, नाई, निधरक, निहोरा, बनावा, बहोरी, भाँति, लवाई आदि।

विदेशज : **अरबी**–अँबारी, कबूल, कागज़, नफीरि, नेब, बजाज, बिदा, रजाइ, लायक, साहनी आदि।

फारसी : गुदारा, कुलह, फराक, बकसीस, रुख, सहनाई, हुनर, कमान, गुमानी, निसाना आदि।''[10]

इस प्रकार तुलसीदास ने शब्द के चारों रूपों का उपयोग प्रसंगानुसार किया है जो अवधी के काव्य सौन्दर्य में रंग गया है। उन्होंने तत्सम, तद्‌भव,

---

[9] रामजी तिवारी, गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 82
[10] डॉ. अम्बा प्रसाद सुमन, रामचरितमानस भाषा–रहस्य, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृ. 104–115

देशज, विदेशज आदि सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग कर अपने समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

5.2.1 छन्द योजना

दोहा–चापाई के अतिरिक्त तुलसीदास ने अपने समय में प्रचलित लगभग सभी प्रमुख छन्दों का उपयोग किया है। छन्दबद्ध होने से काव्य में सांगितिक सौन्दर्य पैदा होता है, फलतः वह सुनने में आनन्ददायक और लयबद्ध प्रतीत होता है। तुलसीदास ने भी छन्दों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक एवं विविधापूर्ण ढंग से किया है, जो प्रसंगानुकूल है। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में दोहा, चौपाई, सोरठा, तोमर, चौबोला, हरिगीतिका, प्रमाणिका, तोटक, पद्मावती, भुजंगप्रयात जैसे प्रचलित छन्दों के अतिरिक्त अनुष्टुप, वंशस्थ, वसन्त तिलका, शार्दूल विक्रीड़ित, स्रग्धारा, मालिनी जैसे संस्कृत के छन्दों का भी उपयोग किया। इसमें कुछ प्रमुख छन्दों को उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

(1) दोहा :

''बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगन्ध कर दोई।।''[11]

चौपाइयों के बीच में दोहों का प्रयोग गोस्वामी जी ने विश्राम दिया है, जहाँ से कथा फिर अपने भावों में प्रारम्भ होती है। कथा का प्रारम्भ और निष्कर्ष भी दोहे के माध्यम से दिया है। जहाँ–जहाँ तुलसी की दार्शनिक, सामाजिक एवं राजनीतिक भाव प्रकट हुए हैं, उन सबकी अभिव्यक्ति दोहों में की गई है।

''मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक।।''[12]

इस प्रकार भक्ति भाव, हर्ष, शोक, भय आदि मनोभावों को जगाने हेतु भी दोहे का प्रयोग 'रामचरितमानस' में किया गया है।

---

[11] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, पृ. 6
[12] वही, पृ. 556

(2) चौपाई : चौपाई मानस का मूल छन्द है, जिसमें तुलसीदास ने सर्वांग रामकथा का वर्णन किया है। प्रारम्भ से अंत तक यही कथा की अभिव्यक्ति का मूलाधार है। इस छन्द में गोस्वामी जी ने करुण, श्रृंगार, रौद्र, अद्‌भुत आदि रसों की सृष्टि की है। चौपाई में अभिव्यक्त श्रृंगार रस का एक मनोहर उदाहरण निम्नांकित है –

''कंकन किंकिनि नुपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि।।''[13]

इन पंक्तियों में वर्णित लघु वर्णों का अधिक उपयोग एवं तालगणों की सम्यक योजना श्रृंगार जैसे कोमल रस के अनुसार एक लय पैदा कर रही है।

(3) सोरठा : 'रामचरितमानस' में सोरठा का उपयोग बहुतायत किया गया है। इसकी भाषा में एकरूपता नहीं है। प्रसंग एवं रस के अनुकूल सोरठे की भाषा बदल गई है। प्रायः सभी रसों में सोरठे का निर्माण हुआ है। वन्दना की भाषा में तत्सम शब्दावली और विशेषणों की भरमार है, कहीं–कहीं तो विशेषण ही सम्पूर्ण अर्थ–सौन्दर्य को ध्वनित कर देते हैं। नीति और उपदेश की भाषा में सजीवता, विश्वसनीयता एवं सरलता है। वन्दना, शिव–पार्वती संवाद, काग–भुशुन्डि संवाद में, शान्त परिस्थिति में, किसी को सांत्वना देने में, कथन को प्रभावशाली बनाने में, राम की माया के वर्णन में, निशाचरों की माया एवं अत्याचार के वर्णन में, भक्तों की भक्ति के वर्णन में, मन की क्षोभ, ग्लानि, उत्साह आदि मनोभावों के वर्णन में तुलसीदास ने सोरठा का प्रयोग किया है। उदाहरणस्वरूप इन पंक्तियों को देखा जा सकता है। वन्दना के प्रसंग में –

''जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन।।''[14]

शिव द्वारा पार्वती को कथा सुनाने के प्रसंग में –

''सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल।

---

[13] वही, पृ. 196
[14] वही, पृ. 2

कहा भुसुण्डि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़।।
सो संवाद उदार जेहि बिध भा आगें कहब।
सुनहु राम अवतार चरित परम सुन्दर अनघ।।''[15]

इस प्रकार दो चौपाइयों के बीच या दो दोहों या दोहरों के बीच, एक दोहा के पहले या दूसरे के अन्त में अथवा छन्द के प्रारम्भ एवं छन्द के पश्चात इसका प्रयोग तुलसीदास ने किया है।

(4) हरगीतिका : मानस में हरगीतिका छन्द कहीं एक, कहीं दो, कहीं तीन, कहीं चार अथवा कहीं इसमें अधिक की संख्या में प्रयुक्त हुआ है। विस्तारपूर्वक वर्णन के लिए कवि ने एक स्थल पर कई बार इसका उपयोग किया है। रामचरितमानस सप्त सोपानों में विभाजित है प्रत्येक की समाप्ति पर कवि ने इसका प्रयोग किया है, और यह एक या अनेक दोहे एवं सोरठें से युक्त है। इस छन्द के रचनाक्रम की एक विशेषता मानस में दिखाई पड़ती है। वह यह कि छन्द के प्रारम्भिक शब्द अपनी पूर्ववर्ती चौपाई के ही शब्द होते हैं या उसी के पर्याय रूप में कुछ बदले हुए रूप में आते हैं। जैसे –

''सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी।।
जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूँ दई।।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन सब सखी लै सिव पहिं गईं।।[16]

या फिर

''आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना।।
जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा।।
तेहि हेतु बृषकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा।।''[17]

इस प्रकार कई स्थलों पर इसका उपयोग कवि ने किया है। रामकथा के महिमा के वर्णन में, कामदेव प्रसंग में, शिव–पार्वती संवाद में, धनुष–भंग के कठोर

---

[15] वही, पृ. 109
[16] वही, पृ. 94
[17] वही, पृ. 95

गर्जन में, राम–विवाह में इसके साथ–साथ अनेक मनोभावों (कैकेयी का कोप, केवट की भक्ति, भरत की व्याकुलता, कोल–भीलों की भक्ति–भावना, भरत की महिमा) में भी इस छन्द का प्रयोग तुलसीदास ने मुक्तहस्त किया है।

(5) अनुष्टुप छन्द : यह संस्कृत का प्रमुख छन्द है। तुलसीदास ने मानस में सात अनुष्टुप छन्दों का प्रयोग किया है, बालकाण्ड की देववन्दना में पाँच, लंकाकाण्ड में एक और उत्तरकाण्ड में एक बार इसका प्रयोग किया गया है।

उदाहरणस्वरूप –

''वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलनां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ।।
भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।''[18]

तुलसीदास ने संस्कृत में ही इस छन्द का प्रयोग किया है अवधी में नहीं।

5.2.2 शब्द–शक्ति : शक्ति और अर्थ में जो सम्बन्ध है, उसी सम्बन्ध का नाम शक्ति है। शब्द–शक्तियों से काव्यार्थ की प्राप्ति होती है। शक्ति तीन हैं – अभिधा, लक्षणा और व्यंजना, तथा इन तीनों में क्रमशः वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ ध्वनित होते हैं। अभिधा एक शब्द संकेत है। अभिधा से बिम्ब निर्माण होता है, यह प्रत्यक्ष अर्थ का बोध कराता है। लक्षणा भी शब्द पर आश्रित है, जिसमें मुख्य अर्थ के बाधित होने पर नया अर्थ ध्वनित होता है। जैसे – 'तिन्हहिं सोहाइन अवध बधावा' में अवध स्थान बधावा नहीं बजा सकता है। इसका अर्थ है 'अवध के लोग'। व्यंजना का काव्य में अपेक्षा कृत अधिक महत्त्व है। व्यंजना में अभिधा के वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न सौन्दर्य प्रतिपादित किया जाता है। जैसे – वरदान माँगने के क्रम में कैकेयी, दशरथ से कहती है –

''रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राम मातु भलि सब पहिचाने।।''[19]

---
[18] वही, पृ. 1

यहाँ कैकेयी की नजर में राम, दशरथ, कौशिल्या तीनों छली और कपटी हैं। 'साधु' और 'भलि' शब्द यहाँ व्यंग्यार्थ का बोध करा रहा है लेकिन व्यंग्यार्थ का मूल अभिधा ही है।

(1) अभिधा : तुलसीदास ने 'मानस' में अभिधा का अधिकाधिक प्रयोग किया है। इतिवृत्तात्मक एवं कथा की साधारण स्थिति में यह शक्ति कथा को गतिमयता प्रदान करनी है। कथा के अंदर अभिव्यक्त होने वाले पौराणिक, धार्मिक आदि वातावरण की प्रस्तुति में अभिधा का विशेष उपयोग किया जाता है। जैसे –

> ''रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम बस अधिकारी।।
> किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा।।''[20]

यह रूढ़ का उदाहरण है। यौगिक का उदाहरण निम्नांकित है –

> ''बस सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी।।''[21]

योगरूढ़ का उदाहरण है –

> ''बारिदनाद जेठ सुत तासु। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू।।[22]

(2) लक्षणा : मानस में लाक्षणिक प्रयोग भी बहुतायत मिलते हैं। इसका सुन्दर उदाहरण भरत की क्रीड़ा है। रामवनगमन के शोक से संतप्त भरत का यह कथन लक्षणा को व्यंजित करता है–

> ''लखन राम सिय कहुँ बन दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा।।
> लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहि सोकु संतापू।।
> मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू।।
> एति तें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका।।''[23]

---

[19] वही, पृ. 333
[20] वही, पृ. 156
[21] वही, पृ. 156
[22] वही, पृ. 154
[23] वही, पृ. 448

भरत कह रहे हैं कि कैकेयी ने लक्ष्मण, राम, सीता को वन का राज्य दे दिया और मुझे सुन्दर यश और उत्तम राज्य दे दिया। कैकेयी ने सबका काम बना दिया। उससे अच्छा अब मेरे लिए क्या होगा? उस पर भी आप लोग मुझे राजतिलक देने को कहते हैं। यहाँ वैपरीत्य सम्बन्ध द्वारा 'पति हित कीन्हा', 'सुख', 'सुयश', 'सुराज', 'नीका' आदि शब्दों में नितान्त रूप से मुख्यार्थ को त्यागकर उनसे विपरीत अर्थ ग्रहण किया गया है। यहाँ लक्ष्यार्थ व्यंजित होता है।

(3) व्यंजना : 'मानस' में व्यंजना शक्ति का विशेष स्थलों पर प्रयोग हुआ है। अवसर विशेष पर सशक्त अभिव्यक्ति हेतु तुलसीदास ने इसका प्रयोग किया है। शाब्दी व्यंजना का सुन्दर उदाहरण इस छन्द में देखा जा सकता है –

''भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी।।''[24]

यहाँ भव के कई अर्थ हैं, पर शिव के अर्थ में निश्चित हो गया है। शमशान की राख शरीर में लगाने के कारण 'शमशान की राख' के संयोग से भव का अर्थ यहाँ शिव माना गया है। व्यंजना से अर्थ यह है कि तुच्छ वस्तु भी महान की संगति में अच्छी लगने लगती है। इसी प्रकार आर्थी व्यंजना का एक उदाहरण निम्नांकित है –

''मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू।।''[25]

इस तरह रामचरितमानस में अभिधा का प्रयोग कथात्मक गति, पौराणिक वातावरण के प्रकटीकरण तथा लोकभाषा की समीपता में अधिक हुआ है। लक्षणा और व्यंजना से कवि ने अपने इच्छित अर्थ को प्रकाशित किया है।

5.2.3 अलंकार : 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में ही तुलसीदास कहते हैं –

''आखर अरथ अलंकृति नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक बिधाना।।
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।।
कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे।।[26]

---

[24] वही, पृ. 14
[25] वही, पृ. 360
[26] वही, पृ. 13

तुलसीदास की यह उक्ति न तो अलंकारादि विशेषताओं के त्याग की सूचना देता है और न ही कवि के इनसे अपरिचित होने का संकेत। यह कवि की विनम्रता मात्र है। 'रामचरितमानस' की भाषा में निहित अलंकार योजना को देखने से अचानक 'लक्षण–ग्रंथ' की झलक मिलने लगती है। एक तरफ कवि का अलंकार को दोष बताना दूसरी तरफ अलंकार का इस प्रकार प्रयोग यह सोचने पर विवश कर देता है कि ये अलंकार स्वाभाविक है या चेष्टापूर्वक उपयोग किए गए हैं। उनके द्वारा उपयोग किया गया अलंकार भावों की तीव्रता में सहायक होता है। अलंकार रस को प्रगाढ़ बनाते हैं। अलंकारों के विविध प्रयोग से उनकी भाषा में एक कसावट आ गई है। तुलसीदास ने मानस में अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, वीप्सा, उपमा, मालोपमा, स्मरण, रूपक, सन्देह, उत्प्रेक्षा, अतिशयाक्ति, तुल्योगिता, दीपक, पर्यायोक्ति, अर्थान्तरन्यास, हेतु, अनुमान, असंगति विभावना, विशेषोक्ति आदि अलंकारों का उपयोग किया है।

तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त कुछ अलंकारों का उदाहरण निम्नलिखित है :

(1) उपमा : दो भिन्न पदार्थों में एकरूपता प्रतिपादन को उपमा कहते हैं। राम–लक्ष्मण को देखकर जनक, विश्वामित्र से कहते हैं –

"सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।।"[27]

विदेहराज कहते हैं – हे नाथ! सुनिए, ब्रह्म और जीव की तरह इनमें स्वाभाविक प्रेम है।

यहाँ जीव का ईश्वर के प्रति और ईश्वर का जीव के प्रति सहज स्नेह प्रकट है, तो ईश्वर और जीव, दोनों में भेद रहते हुए भी दोनों में स्वाभाविक स्नेह रूपी एक धर्म प्रतिपादित किया गया है। यह उपमा है। सम्पूर्ण मानस में उपमा का सर्वाधिक उपयोग किया गया है।

---

[27] वही, पृ. 186

(2) रूपक : उपमेय में उपमान के निषेध रहित आरोप को रूपक कहते हैं। प्रभाव की दृष्टि से तो तुलसीदास रूपक के बादशाह कहे जाते हैं। छोटे–छोटे रूपकों के अतिरिक्त उन्होंने विस्तृत सांगरूपकों की योजना की है। उदाहरणस्वरूप लंकाकाण्ड का यह प्रसंग द्रष्टव्य है –

''सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेंहि जय होइ सो स्यंदन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।।
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। ऐहि सम बिजय उपाय न दूजा।।
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कनहुँ रिपु ताकें।।''[28]

कवि ने यहाँ सांगरूपक का प्रयोग दो कारणों से किया है। पहला यह कि युद्ध के समय में विभीषण जैसे मित्र का सन्देह नाश तत्काल होना चाहिए। दूसरा राम में भौतिक वीरता के अतिरिक्त आध्यात्मिक वीरता को प्रकट करने के लिए भी तुलसीदास ने सांगरूपक का प्रयोग किया है।

(3) उत्प्रेक्षा : उपमेय में उपमान की सम्भावना उत्प्रेक्षा अलंकार है। इसका सुन्दर उदाहरण पुष्पवाटिका प्रसंग की ये चौपाई है –

कंकन किंकिनि नुपुर धुनि सुनि। कहत सन रामु हृदयँ गुनि।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।।[29]

सीता के आभूषणों की ध्वनि यहाँ उत्प्रेक्षा का विषय है। श्रीराम के मुख से कवि ने उत्प्रेक्षा कराई है कि मानो कामदेव ने सम्पूर्ण विश्व को वश में करने के

[28] वही, पृ. 779
[29] वही, पृ. 196

लिए दुंदुभी बजाई है। यहाँ एक वस्तु (आभूषण) में दूसरी वस्तु (कामदेव की विश्व–विजय) के घोषणा की सम्भावना की गई है और यहाँ उपमेय तथा उपमान दोनों शब्दतः कथित हैं। अतः यह वस्तुत्प्रेक्षा का उदाहरण है। अतः तुलसीदास ने अलंकारों का उपयोग सहजतापूर्वक किया है न कि अलंकारों का आरोपण किया है।

5.2.4 रस–सिद्धि : 'मानस' में तुलसीदास ने काव्य स्वीकृत सभी रसों की सुन्दर योजना की है इनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित है।

(1) शृंगार रस : शृंगार के दो भेद हैं। संयोग और वियोग। दोनों को उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

- **संयोग :** पुष्पवाटिका प्रसंग की यह चौपाई संयोग शृंगार का उपयुक्त उदाहरण है –

  अस कहि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।।
  भए बिलोचन चारू अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल।।[30]
  थके नयन रघपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरी निमिषे।।
  अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।[31]

- **वियोग शृंगार :** अशोक वाटिका में सीता का हनुमान को सन्देह देना वियोग शृंगार का उदाहरण है।

  मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी।।
  अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना।।
  नाथ सो नयनन्हि को अपराध। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा।।
  बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा।।
  नयन स्त्रवहिं जनु निज हित लागी। जरै न पाव देह बिरहागी।।[32]

---

[30] वही, पृ. 196
[31] वही, पृ. 198
[32] वही, पृ. 682–83

(2) हास्य रस : नारद मोह के प्रसंग की यह चौपाई हास्य रस का सुन्दर उदाहरण है –

मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही।।
जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेंहि न बिलोकी भूली।।
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं।।[33]

(3) करुण रस : दशरथ मरण प्रसंग में करुण रस की योजना दर्शनीय है।

सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सीलु बलु तेजु बखानी।।
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा।। परहिं भूमितल बारहिं बारा।।
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर–घर रूदनु करहिं पुरबासी।।
अँथयउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू।।[34]

(4) वीर रस : धनुष–यज्ञ प्रसंग में लक्ष्मण द्वारा कही गई यह उक्ति वीर रस का उदाहरण है।

सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू।।
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं।।
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरू मूलक जिमि तोरी।।
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं।।[35]

(5) भयानक रस : सुन्दरकाण्ड में वर्णित लंकादहन का यह प्रसंग भयानक रस का उत्तम उदाहरण है।

पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघुरूप तुरंता।।
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर नारी।।
हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरूत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास।।
देह बिसाल परम हरुआइ। मन्दिर ते मन्दिर चढ़ धाई।।
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला।।[36]

---

[33] वही, पृ. 120
[34] वही, पृ. 430
[35] वही, पृ. 215–16

(6) अद्भुत रस : सुन्दरकाण्ड की ये पंक्तियाँ अद्भुत रस को व्यंजित करती है।

> जोजन भर तेहि बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा।।
> सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवन सुत बत्तिस भयऊ।।
> जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। बासु दून कपि रूप देखावा।।
> सत जोजन तेहि आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।।
> बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरू नावा।।[37]

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत जैसे सर्वस्वीकृत रसों के अतिरिक्त शान्त, भक्ति एवं वात्सल्य रसों का भी दर्शन होता है।

5.2.5 मुहावरे और लोकाक्तियाँ 'मानस' में मुहावरे और 'लोकोक्तियों' का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया गया है, जिससे भाषा–प्रवाह में सजीवता एवं सशक्तता आ गई है। ये मुहावरे और लोकोक्तियाँ सीधे आम–जनमानस के हृदय को स्पर्श करते हैं। कुछ मुहावरे निम्नलिखित हैं –

i. दलक उठना – 'दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू'।
ii. ठकुर सोहाती कहना – 'हमहुँ कहबि अब ठकुर सोहाती'।
iii. गल करना – 'गाल करब केहि कर बल पाइ'।
iv. मुँह काला करना – 'करिआ मुँह करि जाहि अभागे'।
v. छाती जुड़ाना – 'मागहु आज जुड़ावहु छाती'।

लोकोक्ति का सुन्दर उदाहरण यहाँ दर्शनीय है –

i. जुआरी को अपना ही दाँव सूझता है –
   'सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ'।
ii. जहाँ गढ्ढा होगा वहीं पानी भरेगा –
   'अन्तहुँ कीच तहाँ जहँ पानी'।

---

[36] वही, पृ. 678
[37] वही, पृ. 659

iii. बाँझ औरत प्रसव की पीड़ा नहीं जानती –
   'बाँझ कि जान प्रसव कै पीड़ा'।
iv. कुसंगति से किसका नाश नहीं होता –
   'को न कुसंगति पाइ नसाई'।
v. कोई राजा हो हमें क्या मतलब –
   'कोई नृप होउ हमहि का हानी'।

इस तरह के प्रौढ़ एवं लोकप्रिय कहावतों एवं मुहावरों का दर्शन हमें 'रामचरितमानस' में होता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि सूफी–प्रेमाख्यान से निसृत अवधी बोली को तुलसीदास ने काव्यभाषा के आसन पर आरूढ़ किया और न सिर्फ काव्य भाषा वरन इसे व्याकरण सम्मतता के साथ लोकप्रियता भी प्रदान की। शिवकुमार मिश्र ने लिखा है ''वस्तुतः तुलसी ने पण्डित होते हुए भी साधारण जन की बोली–बानी को वरीयता दी। अवधी तथा ब्रज को अपनाया और उनके सहज मुहावरों में अपनी अनुभूति को जन के लिए सम्प्रेष्य बनाया।''[38] जाहिर है काव्यभाषा का महत्त्व उसकी प्रेषणीयता के कारण होता है। प्रेषणीयता का अर्थ यह है कि कवि शब्दों द्वारा जितना सूक्ष्म अर्थों को व्यक्त करना चाहता है, वे पाठक तक सहज रूप में पहुँच जाएँ। इस दृष्टि से मानस की भाषा उत्कृष्ट कोटि की है।

5.3 रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण के पात्रों का भाषिक–स्तर

5.3.1 रामचरितमानस के पात्रों का भाषिक–स्तर

किसी भी महाकाव्य में अन्य विधाओं की अपेक्षा विविधता एवं व्यापकता रहती है, जिसमें कवि न सिर्फ मानवीय पात्रों का बल्कि प्रकृति का चित्रण भी विशद रूप में करता है। इन पात्रों की भाषा से कवि के विचारों की अभिव्यक्ति होती है। इन पात्रों की भाषा भले ही एक हो किन्तु इनकी भाषा के स्तर में काफी विविधताएँ

[38] शिव कुमार मिश्र, भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, पृ. 232

होती है। पात्रानुकूल एवं अवसरानुकूल भाषा की संकल्पना ही महाकाव्य को उदात्तता प्रदान करते हैं। हर कोटि के पात्रों का अपना भाषिक स्तर होता है। नायक की जो भाषा होगी, वही खलनायक की नहीं होगी। मुख्य पात्र की जो भाषा होगी वही गौण पात्र की नहीं होगी। हर पात्र की भाषिक संकल्पना महाकाव्य में उसके चरित्र एवं अवसर के अनुरूप तय की जाती है।

संस्कृत के आचार्यों ने पात्रानुसार भाषा की संकल्पना प्रारंभ से ही कर रखी है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने भी इस पर विचार किया है। संस्कृत नाटकों की यह परम्परा काफी पुरानी रही है जिसमें उच्च वर्ग के पात्र संस्कृत बोलते हैं और निम्नवर्ग के पात्र प्राकृत का प्रयोग करते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने भी 'साहित्य दर्पण' में इस पात्रानुसारी भाषा की चर्चा की है, जिसमें उन्होंने संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त संस्कृत की इस भाषिक परम्परा का समर्थन किया है। आधुनिककाल में हिन्दी में जयशंकर प्रसाद एवं रामकुमार वर्मा जैसे नाटककारों ने भी पात्रों के देश, काल एवं अवस्था के अनुसार भाषा के प्रयोग की बात की है। जाहिर है किसी भी महाकाव्य या नाटक के पात्रों के भी कई स्तर होते हैं, जिसके लिए इस भाषिक स्वरूप का निर्धारण आवश्यक हो जाता है। एक नगर में रहने वाली स्त्री की भाषा वही नहीं होगी, जो ग्रामीण स्त्री की होगी। दोनों की शब्दावलियों में अन्तर स्वाभाविक है। इसका ध्यान कवि या नाटककार को रखना पड़ता है। यदि इसका निर्धारण किए बगैर प्रत्येक पात्र के लिए समान भाषा का सृजन कर दिया जाए तो फिर काव्य की भाषापरक विविधता एवं व्यापकता को अभिव्यक्त कर पाना मुश्किल हो जाएगा।

पात्रों के मनोविज्ञान को समझने के लिए भी उसके व्यक्तित्त्व के अनुरूप भाषा का सृजन आवश्यक है। किसी भी महाकाव्य के मुख्यनायक और खलनायक के साथ–साथ उसके सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश से जुड़े कई छोटे–बड़े पात्र होते हैं, पंडित, ज्ञानी, साधु, सन्त, संन्यासी, देवता, राक्षस, ऊँच–नीच, राजा–रंक आदि। इन विविधतापूर्ण पात्रों के व्यक्तित्त्व की परख कवि को अच्छी तरह करनी पड़ती है। एक बात यह कि पात्रों के व्यक्तित्त्व के अनुसार भाषा का सृजन करना पड़ता है। दूसरी यह कि एक पात्र के विविध स्तर की मनोदशा के

अनुरूप भी भाषा का सृजन होना चाहिए, जिससे पात्रों का चरित्र खुलकर सामने आए।

तुलसीदास ने भी 'रामचरितमानस' में पात्रानुसार एवं अवसरानुसार भाषा का प्रयोग किया है। मानस में प्रत्येक पात्र का अपना–अपना व्यक्तित्त्व है और इस दृष्टि से हर पात्र का अपना भाषिक–स्तर है। फलतः इनकी भाषा में भी एक दूसरे से कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य प्रतीत होती है। परिस्थिति के अनुसार भी एक पात्र की भाषा में स्तर भेद उत्पन्न हो जाते हैं।

- **पात्रानुकूल भाषा**

'रामचरितमानस' के प्रमुख पात्रों में राम–लक्ष्मण की भाषा का मिला–जुला रूप हमें धनुष–यज्ञ प्रसंग में दिखता है, जहाँ सूर्योदय को देख राम लक्ष्मण से कहते हैं –

> ''बिगत निसा रघुनायक जागे। बंधु बिलोकि कहन अस लागे।।
> उयउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता।।
> बोले लखनु जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाउ सूचक मृदुबानी।।
> अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
> जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन।।''[39]

यहाँ दोनों भाइयों के बीच बातचीत की भाषा पूर्णरूपेण पात्रानुसार रची गई है। वाक्य योजना सरल है। शब्द प्रायः तत्सम प्रधान है। लक्ष्मण राम की प्रशंसा में जो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि आपका आना सुनकर सभी राजा उसी प्रकार बलहीन हो गए जैसे सुबह होते ही कुमुदनी सकुचा गई और तारागणों का प्रकाश, फीका पड़ गया। यहाँ रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है। राम की महिमा में प्रस्तुत लक्ष्मण के शब्द उनके स्वाभावानुकूल हैं।

दशरथ एक गम्भीर चेता राजा हैं। और विश्वामित्र महामुनि ज्ञानी हैं। दोनों गम्भीर हैं। एक तपस्वी है दूसरे राजा। विश्वामित्र के वर्णन में तुलसी लिखते हैं –

---

[39] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, पृ. 203

"बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी।।
जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरही।।
गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी।।"[40]

विश्वामित्र द्वारा राम–लक्ष्मण को माँगे जाने पर दशरथ के मुख से निसृत भाषा का रूप यह है –

"सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी।।
चौथेंपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी।।
मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा।।
देह प्रानतें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं।।"[41]

राम–लक्ष्मण, दशरथ के लिए प्राण के समान हैं और विश्वामित्र उन्हें माँग रहे हैं। इस अवसर पर दशरथ का दुखी होना स्वाभाविक है। इस दुख की घड़ी में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, उसमें तत्सम शब्दों की प्रधानता है। शब्द अत्यन्त छोटे एवं समास रहित हैं। इन शब्दों में अभिव्यक्ति की क्षमता अधिक है। ये मर्मांतक पीड़ा के द्योतक हैं।

हनुमान की भाषा दैत्य भाव से युक्त एवं सीधी–सादी है। तत्सम शब्दों के साथ अर्द्धतत्सम एवं तद्‌भव का प्रयोग किया गया है। यदि पचहत्तर प्रतिशत शब्द तत्सम के हैं तो पच्चीस प्रतिशत तद्‌भव शब्दों का प्रयोग किया गया है। वाक्य सरल हैं, पर सुगठित हैं। कुछ समस्त पदों का भी प्रयोग है। जैसे मोह–वश, कुटिल–हृदय, दीन–बन्धु आदि। चित्रात्मकता एवं ध्वनि नहीं है। भाषा में प्रसाद गुण की अधिकता है। उदाहरणस्वरूप –

"एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
सुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान।।

[40] वही, पृ. 176–77
[41] वही, पृ. 178

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें।।
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा।।
ता पर मैं रघुवीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई।।
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें।।''[42]

इसी तरह सुग्रीव की भाषा में भी हनुमान की भाँति सरलता है। पात्रानुसार भाषा का स्तर यहाँ सुरक्षित है। तत्सम, तद्भव, शब्दावली के साथ भाषा साभिप्राय विशेषणों से युक्त है –

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। प्रीति रही कुछ बरनि न जाई।।
मयसुत मायावी तेहि नाउँ। आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ।।
अर्ध राति पुर द्वार पुकारा।। बालि रिपु बल सहै न पारा।।
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा।।[43]

बालि की भाषा तत्सम बहुल है और वाक्य छोटे हैं, परन्तु काव्य की दृष्टि से रसात्मक नहीं, केवल अभिधात्मक हैं। अर्द्धतत्सम् एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग है। कोमल वर्णों के साथ कठोर वर्णों का भी विन्यास मिलता है। भाषा में कहीं भी लक्षणा या व्यंजना का प्रयोग नहीं है। न ही उक्ति वैचित्र्य है और न ही अलंकारों का अतिशय प्रयोग।

''कह बाली सुनु भीरू प्रिय समदरसी रधुनाथ।
जें कदापि मोहिं मारहिं तो पुनि होउँ सनाथ।।
अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी।।
भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा।।
तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा।।''[44]

इस प्रकार राम, लक्ष्मण, दशरथ, विश्वामित्र, भरत आदि की तुलना में हनुमान, सुग्रीव, बालि आदि की भाषा का स्तर भिन्न है। जहाँ राम आदि की भाषा

[42] वही, पृ. 628
[43] वही, पृ. 630
[44] वही, पृ. 634

में भव्यता, प्रसादता तन्मयता और अलंकारादि हैं, वहीं कपियों की भाषा उस तरह की नहीं है। तत्सम शब्दावलियों का प्रयोग उनमें अवश्य दिखता है किन्तु साथ ही तद्भव का प्रयोग, अलंकारहीनता, वाक्य की सरलता आदि भी विद्यमान है।

इसके इतर खल–पात्रों की भाषा है जिसमें खर–दूषण, रावण, कुम्भकर्ण आदि हैं। खर–दूषण की भाषा पर यदि विचार करें, तो उसकी भाषा में व्याकरण की दृष्टि से मिश्र एवं संयुक्त वाक्यों का प्रयोग है, हालाँकि संयुक्त वाक्य कम हैं। शब्द तत्सम एवं तद्भव दोनों रूपों में प्रयुक्त है। पुरुषवृत्ति के कारण कठोर वर्णों की अधिकता है। सरल वर्ण कम है, जो उसके व्यक्तित्त्व के अनुसार उपयोग किए गए हैं। वाणी की सजावट हेतु न अलंकार का प्रयोग किया गया है और न ही मुहावरे आदि का। उदाहरणस्वरूप –

> ''सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन।।
> नाग–असुर सुर नर मुनि पेति। देखे जिते हते हम केते।।
> हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं अस सुन्दरताई।।
> जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरुपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा।।
> देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई।।[45]

खर–दूषण की अपेक्षा रावण का क्रूर, दंभी रूप अधिक सशक्त है, इसलिए खर–दूषण की भाषा से रावण की भाषा में साम्य होते हुए भी थोड़ा वैषम्य यह मिलता है कि रावण की भाषा अतिशयोक्तिपूर्ण एवं मुहावरेदार है। रावण राजा है, अतः वचन–भंगिमा का संकेत भाषा से ही प्राप्त हो जाता है। अन्य भाषायी रूपों में वैसी ही समानता है। जैसे –

> ''सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा।।
> जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं।।
> सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़ि हाईं।।
> इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा।।
> नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई।।''[46]

[45] वही, पृ. 591

तुलसीदास ने कुम्भकर्ण के व्यक्तित्त्व के अनुसार ही भाषा का प्रयोग किया है। तत्सम शब्दावली तो सब राक्षसों की भाषा में समान है। इसकी भाषा में कठोर वर्णों की अधिकता दिखाई देती है। तद्भव शब्दावली की संख्या भी कम नहीं है। कुम्भकर्ण के हृदय में तामसी वृत्ति के साथ–साथ सात्विक वृत्ति भी है, जिसके कारण वह राम की ओर आकृष्ट होता है। अलंकार, विशेषणाभिप्राय, क्रिया–चमत्कार आदि का प्रयोग कुम्भकर्ण की भाषा में नहीं है। जैसे–

> ''भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा।।
> अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना।।
> हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनुमान से पायक।।
> अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहि माहि न सुनाएहि आई।।
> कीन्हेहु प्रभु बिरोध देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक।।
> नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहिं समय निरबहा।।
> अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई।।''[47]

विभीषण रावण का भाई होते हुए भी राम का भक्त है। हालाँकि भाषा की समानता इनमें है किन्तु कठोर वर्णों का प्रयोग बिल्कुल नहीं है। इसलिए विभीषण की भाषा में पद–लालित्य, कोमल वर्ण–विन्यास, प्रसाद गुण जैसी विशेषताएँ दिखाई पड़ती है। जैसे –

> ''सुनहु पवन सुत रहनी हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।।
> तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।।
> तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं।।
> अब मोहिं भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।।''[48]

इस प्रकार हनुमान, सुग्रीव आदि की भाषा एवं इन राक्षस पात्रों की भाषा में समानता के साथ अन्तर भी है, वह अन्तर कटु वर्णों का प्रयोग एवं तद्भव की अधिकता है।

---

[46] वही, पृ. 602
[47] वही, पृ. 762
[48] वही, पृ. 663

'रामचरितमानस' के पात्रों में भाषिक–स्तर की विविधता नगर एवं वनवासियों की भाषा में प्रमुख रूप से दिखाई देती है। अयोध्या एवं जनकपुर के निवासियों की भाषा एवं कोल–किरात, भील आदि की भाषा–स्तर में विविधता है। हालाँकि जितने ऋषि–मुनि हैं, वो भी वनवासी हैं किन्तु उनकी भाषा प्रांजल एवं ज्ञान–सम्पन्न है। उदाहरण चित्रकूट प्रसंग की यह घटना देखी जा सकती है। चित्रकूट में राम को मनाने भरत अयोध्यावासियों समेत आए हुए हैं। राजा जनक के आगमन के समय दोनों नगरवासियों का मिलन होता है। इस अवसर पर तुलसीदास ने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह बड़ी ही काव्योपयुक्त है। उत्प्रेक्षा और रूपक के सहारे ही सारी अभिव्यक्तियाँ हुई है। संस्कृत के तत्सम शब्दावलियों का भरपूर उपयोग किया गया है। भाषा अलंकारमयी प्रतीत होती है।

> ''आश्रम सागर सान्त रस पूरन पावन पाथु।
> सेन मनहुँ करुन सरित लिएँ जाहिं रघुनाथ।।
> बेरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे।।
> सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुवर कर भंगा।।
> बिषम विषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवँर अबर्त अपारा।।
> केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा।।''[49]

परन्तु वनवासियों की भाषा इससे अलग स्तर की है। उनकी भाषा सीधी एवं सपाट है। उसमें सरलता है। अलंकार की जगह सहजता एवं स्वाभाविकता है। उनके सामाजिक जीवन के अनुरूप भाषा का सौष्ठव है –

> ''तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोग न भाग हमारे।।
> देब काह हम तुम्हहि गोसाँई। ईंधनु पात किरात मिताई।।
> यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई।।
> हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती।।''[50]

---

[49] वही, पृ. 524
[50] वही, पृ. 504

इन्हीं बनवासियों में एक प्रमुख पात्र हैं निषादराज गुह। जो राम के अनन्य भक्त हैं। निषादराज को जब यह भ्रम होता है कि भरत सेना समेत राम को मारने जंगल की तरफ जा रहे हैं, जो उन्होंने अपनी सेना को बुलाया और सबके साथ उन्हें रोकने की योजना बनानी प्रारम्भ कर दी। इस परिस्थिति का वर्णन तुलसीदास इन शब्दों में करते हैं –

> ''होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा।।
> सन्मुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ।।
> बेगहु भाइहु सजहु सँहोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ।।
> भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा।। एकहिं एक बढ़ावइ करषा।।
> चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी।।
> सुमिरि राम पद पंकज पनहीं। भाथीं बाँधी चढ़ाइन्हि धनहीं।।
> अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करही।।
> एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहि गगन मनहुँ छिति छाँड़े।।
> निज निज साधु समाजु बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई।।
> दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढ़ोलू।।[51]

यहाँ तुलसीदास ने आँचलिकता से युक्त भाषा का प्रयोग किया है। स्थानीय शब्दों के प्रयोग एवं इनके योग से बने अनेक मुहावरों के सटीक प्रयोग ने भाषा में स्वाभाविकता ला दी है। अवधी के ठेठ रूपों का प्रयोग यहाँ दिखाई देता है। जैसे – 'सँजोइल', 'पनहीं', 'भाथीं', 'अंगरी', 'कूँड़ि', 'बाँस', 'जोहारी', 'टोलु' आदि से पात्रों के सामाजिक जीवन में प्रचलित शब्दों की झाँकी मिलती है। अनेक मुहावरों ने भी भाषा में जान डाल दी है। जैसे – 'जुझाऊँ', 'ढोल बजाना', 'जीते जी पैर पीछे न रखना', 'लोहा लेना', 'ठाठ–ठाठना' आदि। कठोर वर्णों के प्रयोग से युद्ध की साहसिकता एवं ओजस्विता स्वतः दिखाई देती है। पात्रानुकूल भाषा के सशक्त प्रयोग का दूसरा उदाहरण इसी से जुड़ा केवट प्रसंग हैं। राम को गंगा पार कराने से पूर्व केवट जो शर्त रखता है, उस प्रसंग की भाषा बड़ी जीवन्त एवं स्वाभाविक बन पड़ी है।

---

[51] वही, पृ. 456–457

"मागी नाव न केवटु आना। कहहु तुम्हार मरमु मैं जाना।।
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।।
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई।।
तरनिउ मुनि घरिनी होई जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।।
एहिं प्रति पालउँ सबु परिबारू। नाहिं जानउँ कछु अउर कबारू।।
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा।।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी।।"[52]

यहाँ भी तुलसीदास ने आँचलिक शब्दों का अत्याधिक प्रयोग किया है। 'बाट परइ', 'कबारू', 'कठौता', 'मजूरी', 'बनि' आदि शब्द केवट के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को अभिव्यक्त करते हैं। वाक्य छोटे हैं, सामासिक शब्दों का अभाव है, भाषा प्रसाद गुण से युक्त है।

मानस में वर्णित स्त्री–पात्रों का भी भाषायी स्तर भिन्न है। एक ओर कौशल्या, सुमित्रा, सीता, अनुसूया, मन्दोदरी, तारा जैसी स्त्रियाँ हैं, दूसरी ओर ताड़का, शूर्पनखा, मंथरा आदि। दोनों प्रकार की स्त्रियाँ भिन्न व्यक्तित्त्व की है, फलतः उनका भाषिक स्तर भी भिन्न है। सीता, कौशल्या, सुमित्रा की भाषा को कवि ने भव्यता प्रदान की है। उनमें गम्भीरता एवं शालीनता दिखाई पड़ती है। कौशल्या चित्रकूट में सुनयना से कहती है –

"कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेक निधि बल्लभहिं तुम्हरि सकइ उपदेसि।।[53]

लक्ष्मण के उपदेश देती हुई सुमित्रा की भाषा इस प्रकार है –

"तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही।।
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहईं दिवसु जहँ भानु प्रकासू।।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजू कछु नाहीं।।

---

[52] वही, पृ. 385–386
[53] वही, पृ. 530

गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं।।[54]

वनगमन के समय सीता इन शब्दों में अपना भाव व्यक्त करती हैं –

नदेबीं बनदेव उदारा। करिहसिं सासु ससुर सम सारा।।
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई।।
कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू।।
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी।।''[55]

राक्षस नारियों में त्रिजटा और मन्दोदरी के भाषा का स्तर लगभग समान है, क्योंकि दोनों का झुकाव राम के प्रति है। विपरीत स्त्री–पात्रों में मंथरा एवं शूर्पनखा का उदाहरण दिया जा सकता है। राम के राज्याभिषेक के समाचार से मंथरा दुखी है वह चाहती है कि किसी प्रकार राम का राज्याभिषेक न हो और उसकी जगह भरत राजगद्दी पर बैठे। अपनी इसी इर्ष्यागत भावना से मंथरा अपने आप को निरपेक्ष साबित करती हुई कैकेयी को राम के विरुद्ध बहकाने का प्रयास करती है। वह कहती है –

''एकहिं बार आस सब पूजी। अब कुछ कहब जीभ करि दूजी।।
फोरै जोगु कपारू अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा।।
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं नाई।।
हमहुँ कहबि अब ठकुर सोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती।।
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा।।
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी।।''[56]

यहाँ कवि ने भाषा के ठेठ रूप का प्रयोग किया है जो तद्भव और तत्सम का मिश्रित है। भाषा को मुहावरेदार बनाया गया है। कूटनीति का प्रत्यक्ष संकेत, यह भाषा उपस्थित कर रही है। फलतः मंथरा के व्यक्तित्त्व को भाषा पूर्णरूपेण अभिव्यक्त कर रही है।

---
[54] वही, पृ. 365
[55] वही, पृ. 358–59
[56] वही, पृ. 319

दूसरा उदाहरण शूर्पनखा का है, जो राम–लक्ष्मण के सौन्दर्य पर मोहित उनसे प्रणय निवेदन इन शब्दों में करती है –

> ''तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी।।
> मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं।।
> तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हरि निहारी।।''[57]

कुछ ही समय पश्चात शूर्पनखा की भाषा अपने स्वभाव के अनुसार परिवर्तित हो जाती है। उपर्युक्त भाषा उसके द्वारा किए जाने वाले छल की भाषा है किन्तु जब वह रावण को फटकारती है, तब वह अपनी स्वाभाविक भाषा के साथ उपस्थित होती है। इस अवसर पर वह रावण से बड़ी–बड़ी उपदेशात्मक बातें भी करती है –

वह कहती है –

> ''बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी।।
> करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती।
> राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।।
> बिद्या बिना बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ।।
> संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान तें ग्यान पान तें लाजा।।''[58]

इस प्रकार तुलसीदास ने न सिर्फ पात्रानुकूल बल्कि उनके सामाजिक, व्यक्तिगत जीवन के अनुरूप भी भाषा का सृजन किया है। पात्रों के विविध व्यक्तित्त्व को सूक्ष्मता से भाषा के माध्यम से उजागर किया है। जहाँ राम–लक्ष्मण की भाषा में आंचलिक ठेठपन दिखाई देता है। एक ही समाज में रावण की भाषा अलग है तो विभीषण और कुम्भकर्ण की अलग। कौशल्या अैर कैकेयी की अलग।

---

[57] वही, पृ. 588
[58] वही, पृ. 595

- **अवसरानुकूल भाषा**

  'रामचरितमानस' में पात्रानुसार भाषा का रूप यह भी है कि एक पात्र की भाषा परिस्थितिनुसार बदलती है। पात्रों की यह परिस्थिति के अनुरूप भाषा मुख्यतः उसके मनोविज्ञान से जुड़ी है। मानव–जीवन में अनेक प्रकार के भाव आते रहते हैं। कहने के लिए शास्त्रानुसार साहित्य में आठ स्थायी भाव, आठ सात्विक भाव और तैंतीस संचारी भाव है, किन्तु मानव हृदय से निसृत कुछ उद्दाम भावों को किसी भी कोटि में स्थापित नहीं किया जा सकता है।

इन भावों की अभिव्यक्ति विविध मनोदशा में अभिव्यक्त भाषा के माध्यम से होती है। अतः पात्रों की इस विविध मनोदशा को दिखाने के लिए कवि यदि एक ही स्तर की भाषा का उपयोग करे तो फिर काव्य में दोष आ जाएँगे। इसलिए भाषा विभिन्न अवसरों पर परिस्थिति के अनुसार मुड़ती चलती है। तुलसीदास का रामचरितमानस इसका उत्तम उदाहरण है। इसे प्रमुख पात्रों के उदाहरणों द्वारा समझा जा सकता है।

रामचरितमानस के प्रमुख नायक राम के भाषा–स्तर की यदि विवेचना करें तो अवसरानुसार उनकी भाषा बदलती हुई प्रतीत होती है। पुष्पवाटिका में सीता के अनुपम सौन्दर्य से अभिभूत राम की जो भाषा है, वह धनुष–भंग के पश्चात परशुराम संवाद में नहीं है। वशिष्ठ के चित्रकूट आगमन पर जिस भाषिक स्तर का उपयोग हुआ है, वह खर–दूषण के साथ युद्ध के समय नहीं है। 'अरण्यकाण्ड' में सीता का श्रृंगार करते समय जिस भाषा का प्रयोग तुलसी करते हैं, वैसा प्रयोग सीता–वियोग में नहीं है। कहने का अर्थ यह है कि भाषा का स्तर पात्रों की परिस्थिति एवं उसके मनोविज्ञान पर निर्भर करता है।

पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता के अनुपम सौन्दर्य ने राम के अंदर जो अनुभूति जगाई, वह इसका अविस्मरणीय अंग हो गई। सीता के सौन्दर्य ने राम को आकर्षित कर लिया। इस अवसर पर राम की भाषा सात्विक अनुभावों से युक्त है। यहाँ श्रृंगार के संयोग रूप की गहन अनुभूति है, जिसमें भाषा उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से गढ़ी गई है।

"कंकन किंकनि नुपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।।
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।।[59]

परशुराम के साथ संवाद की भाषा का स्वर ठीक इसके विपरीत है, क्योंकि वहाँ अपने वंश और स्वाभिमान पर उँगली उठते देखकर राम का स्वाभिमान जाग्रत हो गया है –

"जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तो अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ।।
देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना।।
जौं रन हमहिं पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ।।"[60]

यहाँ राम का स्वाभिमान स्पष्ट दिखता है। फलतः भाषा वीर–रसात्मक हो गई है। ओज गुण तथा टवर्गादि वर्णों का प्रयोग अधिक है। क्रोधावेश में भाषा सीधा प्रहार करती है। न अलंकार का प्रयोग है और न ही अन्य काव्य–साधन का उपयोग।

वनगमन के समय अपने महल में वशिष्ठ के सत्कार में राम ने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह अवसर के अनुसार उचित है। सरस पदों, प्रसाद एवं माधुर्य से परिपूर्ण शब्दों ने राम की सरलता एवं प्रकृति को स्पष्ट कर दिया है। यहाँ राम की भाषा में सरलता एवं सहजता है, लेकिन खर–दूषण से युद्ध के समय राम की भाषा युद्धानुकूल है। पुरुषावृत्ति, ओज–गुण, कठोर ध्वनियों का प्रवेश भाषा में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

"हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं।।
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं।।"[61]

---

[59] वही, पृ. 196
[60] वही, पृ. 239
[61] वही, पृ. 591

सीता के वियोग में दुखी राम की भाषा उनके प्रेम के गूढ़त्व को प्रकट करती है। भाषा में बिम्बों, प्रतीकों एवं अलंकारों की बहुलता है। राम कहते हैं –

> ''हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।।
> खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।।
> कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी।।
> बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।।''[62]

रामचरितमानस में लक्ष्मण की भाषा भी अवसर के अनुसार परिवर्तित होती गई है। धनुष–भंग के समय जनक की बात सुनकर जहाँ लक्ष्मण की भाषा क्रोध एवं उत्तेजनापूर्ण हो जाती है, वहीं परशुराम संवाद में उनकी भाषा विनोदपूर्ण हो जाती है। लक्ष्मण परशुराम से कहते हैं –

> ''बिहसि लखन बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी।।
> पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू।।
> इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।।
> बंधे पापु अपकीरति हारें। मारतहूँ पा परिअ तुम्हारें।।
> कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा।।''[63]

लक्ष्मण की इस व्यंग्यपूर्ण भाषा में कठोर एवं महाप्राण ध्वनियों का प्रयोग अधिक किया गया है। परन्तु वनगमन के समय उनकी भाषा विनम्र हो जाती है। वनगमन के लिए राम से इन शब्दों में प्रार्थना करते हैं –

> ''उतरू न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
> नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ।।''[64]

इस प्रसंग की भाषा में प्रसाद गुण का प्रयोग है। वाक्य सीधे हैं। अलंकार का प्रयोग नहीं है। संस्कृत तत्सम शब्दावली की प्रधानता है, साथ ही अल्पप्राण

---

[62] वही, पृ. 606
[63] वही, पृ. 231
[64] वही, पृ. 363

ध्वनियों की प्रधानता है। इस प्रकार लक्ष्मण के उन्माद की भाषा एवं आंतरिक मन की भाषा दोनों में अंतर है।

सीता की भाषा भी अवसरानुकूल परिवर्तित हुई है। गिरिजापूजन के समय सीता द्वारा गाई गई स्तुति की भाषा निम्नलिखित है –

''जय जय गिरिबर राज किसोरी। जय महेस मुख चंद चकोरी।।
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनी दुति गाता।।''[65]

यहाँ भाषा की शब्दावली विशुद्ध संस्कृत की है। प्रायः प्रार्थना में दीनता का भाव रहता है। यहाँ प्रयुक्त विभिन्न विशेषणों ने सीता की दीन–दशा का जो चित्रण किया है, उससे भाषा में कसावट आ गई है। परन्तु वनगमन के समय सीता की भाषा प्रार्थना की भाषा नहीं है, वह वन जाने के लिए दृढ़ संकल्प है और राम से कहती है –

''सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी।।
बार–बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही।।
को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंधबधुहि जिमि ससक सिआरा।।
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू।।''[66]

यहाँ तत्सम शब्दों की प्रधानता है। भाषा में किसी प्रकार के अलंकार का प्रयोग नहीं है।

सीता के जीवन में जब विपत्ति का पहाड़ आया, रावण द्वारा अपहरण किए जाने पर उसके विलाप की भाषा का रूप कुछ और हो गया है –

''हा जग एक बीर रघुराया। केंहि अपराध बिसारेहु दाया।।
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक।।
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा।।''[67]

[65] वही, पृ. 200
[66] वही, पृ. 360
[67] वही, पृ. 603

मानस के एक प्रमुख पात्र भरत की भाषा भी अवसरानुसार परिवर्तित हुई है। अयोध्याकाण्ड में पिता की मृत्यु एवं भाई के वनगमन से दुखी भरत की भाषा और राम के अयोध्या प्रत्यावर्तन पर भरत के हर्ष की भाषा दोनों के स्तर में अन्तर दिखाई देता है।

पुत्रजन्म के समय दशरथ के हर्ष की भाषा इस प्रकार की है –

''दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना।। मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना।।
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा।।''[68]

इस प्रसंग की भाषा में विशुद्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। जो अभूतपूर्व आनन्द को प्रकट कर रहा है।

राम के विरह में शोकाकुल दशरथ की भाषा अलग है –

''हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते।।
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चातक जलधर।।''[69]

यहाँ दशरथ के शोक की चरमावस्था है। प्रश्नवाचक शब्दों तथा विस्मयादिबोध अवयवों के कारण भाषा में शोक की परिव्याप्ति हो गई है।

'रामचरितमानस' का प्रमुख खल पात्र रावण की भाषा भी अवसर के अनुसार अनेक प्रकार की दिखाई देती है। अचानक घबराहट की स्थिति में रावण की भाषा में एक शब्द के ही अनेक पर्यायों का प्रयोग, सांदर्भिक विशेषता में अभिवृद्धि कर देता है। सेतु निर्माण की खबर पाते ही रावण विचलित हो जाता है।

''सुनत श्रवण बारिधि बंधाना। दस मुख बोलि उठा अकुलाना।।
बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस।।''[70]

---

[68] वही, पृ. 166
[69] वही, पृ. 429
[70] वही, पृ. 712

किन्तु गर्वोक्ति की भाषा इससे अलग है। ऊँच–नीच का भाव दिखाने में रावण की भाषा वाग्विलास से पूरित है, जिसका उदाहरण रावण–अंगद संवाद है। शब्दों के उतार चढ़ाव एवं विविध अलंकार इसमें समाहित है। युद्ध में ललकार की भाषा का रूप अलग है। युद्ध की भाषा में अपना बल–कथन महत्त्वपूर्ण है, जिससे सामने विरोधी की तुलना कर उसकी हीनता बतलाई जा सकती है।

राम से युद्ध करते समय रावण कहता है –

> ''जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाही।।
> रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदीखाना।।
> खर दूषन बिराध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा।।
> निसिचर निकर सुभट संघारेहु। कुम्भकरन घननादहि मारेहु।।''[71]

यहाँ भाषा में एक ओर ओज गुण है तो दूसरी ओर 'तापस' शब्द का प्रयोग हीनता दिखाते हुए व्यंग्य किया गया है। ललकार और क्रोध की इस भाषा में अलंकारहीनता है जो अवसरानुसार उचित एवं सार्थक है।

इस प्रकार तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में पात्रानुकूल भाषा के रमणीय रूप की योजना की है, वह सार्थक एवं प्रशंसनीय है। तुलसीदास की यह भाषिक कलात्मकता 'रामचरितमानस' के प्रबन्धत्व को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाती है। शास्त्रीय दृष्टि के साथ ही साथ पाठकीय रोचकता को भी बनाए रखने में इस भाषिक स्तर की बहुत बड़ी भूमिका है। हिन्दी साहित्य कोश में फादर कामिल बुल्के ने भी 'रामचरितमानस' के प्रबन्धत्व की विशेषताओं में एक विशेषता पात्रानुकूल भाषा को माना हैं।

5.3.2 धारावाहिक रामायण के पात्रों का भाषिक–स्तर

धारावाहिक रामायण के पात्रों के भाषिक स्वरूप पर बात करने से पूर्व इस तथ्य का स्मरण रहना चाहिए, कि 'रामचरितमानस' एक महाकाव्य है और रामायण एक

---
[71] वही, पृ. 790

धारावाहिक। एक मध्यकालीन साहित्यिक रचना है दूसरा इलेक्ट्रॉनिक माध्यम द्वारा अभिव्यक्त पौराणिक कथा। दोनों दो विधाएँ हैं, दोनों की रचना प्रक्रिया भिन्न है। कथा हेतु धारावाहिक इस ग्रंथ पर अवश्य निर्भर है किन्तु प्रस्तुति एवं जनमानस तक पहुँचाने का माध्यम बिल्कुल भिन्न है। कहा जाए तो आधुनिक समय में लिखी गई यह अपने आप में एक अलग रामकथा है। महाकाव्य की रचना के अपने अलग सैद्धांतिक पक्ष होते हैं, और धारावाहिक के अलग।

रामानन्द सागर रचित धारावाहिक रामायण अपनी पटकथा एवं संवाद हेतु 'रामचरितमानस' पर निर्भर है, यह तथ्य है। अब प्रश्न यह उठता है कि 'धारावाहिक रामायण' की भाषिक विवेचना के लिए क्या उन्हीं शास्त्रीय प्रतिमानों का उपयोग किया जा सकता है, जो 'रामचरितमानस' के लिए अपेक्षित है? जाहिर है नहीं। दोनों की भाषा के अपने–अपने प्रतिमान हैं। एक मध्यकाल में रचित अवधी का काव्यग्रंथ है, दूसरी आम बोलचाल की खड़ी बोली। यहाँ धारावाहिक के रूप में भाषिक विधान्तरण भी किया गया है। एक पाठ्यग्रंथ है दूसरा दृश्य माध्यम। पाठ्य माध्यमों में पाठक अपनी रुचि एवं सौन्दर्य–बोध से भाषा को ग्रहण करता है किन्तु यहाँ पात्र स्वयं बोलता है, वह पूरे हाव–भाव के साथ स्वयं तथा जीवन को, प्रत्यक्ष रूप में प्रदर्शित करता है। जाहिर है धारावाहिक की भाषा एवं उसके अनुसार पात्रों का भाषिक स्तर भिन्न होगा। महाकाव्यों की भाषा में पाठकों के भीतर कल्पनाशीलता एवं प्रभावोत्पादकता पैदा करने के लिए रस, छन्द एवं अलंकारों का प्रयोग किया जाता है, जो इस विधा में अपेक्षित नहीं है। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि यहाँ अभिव्यक्ति, भाषा से अधिक चित्रात्मकता एवं दृश्यों पर निर्भर करती है। यहाँ सम्प्रेषण सिर्फ भाषा के माध्यम से ही नहीं होता। दूसरी बात यह कि महाकाव्य का पाठक पढ़ा–लिखा प्रबुद्ध वर्ग होता है, लेकिन धारावाहिक का दर्शन हर वर्ग का व्यक्ति होता है। इसलिए धारावाहिक का संवाद आम–बोलचाल की भाषा में लिखा जाता है ताकि जनता को भाषा–सम्बन्धी कठिनाई न हो और उसका ध्यान भाषा से अधिक कथा की प्रस्तुति पर केन्द्रित हो।

रामानन्द सागर ने भी संवाद निर्माण में इसी आम–बोलचाल की भाषा, लोकोक्ति एवं मुहावरे का प्रयोग किया है। उनका उद्देश्य भाषिक विद्वता प्रदर्शित करना नहीं था बल्कि रामकथा को आम जन तक पहुँचाना था। जिसमें भाषा नहीं बल्कि कथा की प्रस्तुति महत्त्वपूर्ण थी। इसलिए धारावाहिक की भाषा को व्याकरणशास्त्र की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता है, लेकिन पात्रानुकूल एवं अवसरानुकूल भाषिक प्रयोगों पर विचार किया जा सकता है।

- **पात्रानुकूल भाषा**

धारावाहिक की भाषा हालाँकि आम बोलचाल की खड़ी बोली है किन्तु पटकथा लेखक ने संवादों में तत्सम शब्दों का मुक्तहस्त प्रयोग किया है। जहाँ तक हुआ है, भाषा को संस्कृत के तत्सम शब्दों की ओर झुकाने का प्रयास किया गया है। सम्भव है इसका प्रयोग रामानन्दसागर ने भाषा को मिथक–पुराणों की भाषा के नजदीक लाने के लिए किया हो। भाषा में जहाँ–जहाँ रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है, वे अधिकांशतः तुलसी या वाल्मीकि से ग्रहण किए गए हैं। इसका उदाहरण जनकपुर में राम–लक्ष्मण संवाद में देखा जा सकता है। राम की प्रशंसा में लक्ष्मण ने जिस रूपक का इस्तेमाल किया है, वह तुलसीदास से गृहीत है।

''मैं रात–भर बार–बार एक ही सपना देखता रहा हूँ कि स्वयंवर में विजय आपकी ही हुई है। सभा में आपके पहुँचते ही राजाओं, राजकुमारों के तेज उसी तरह मलीन हो गए जैसे सूर्य के उदय होते ही तारों में रोशनी नहीं रहती। मुझे पूरा विश्वास है, आज की परीक्षा में विजय आपकी होगी।''[72]

राम की भाषा हमेशा तत्सम प्रधान बनी रहती है, खासकर किसी श्रेष्ठ या विद्वतजन से बात करते समय, जीवन–सिद्धान्त की बात करते समय, उपदेश देते समय भाषा और भी सुगठित हो जाती है। चित्रकूट में भरत राम को समझाते हुए कहते हैं –

[72] रामानन्द सागर, रामायण धारावाहिक पटकथा, पृ. 93, एपिसोड 7

''तात! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ग्लानि कर रहे हो। मैं भगवान शंकर को साक्षी करके कहता हूँ कि तीनों काल और तीनों लोकों में तुम जैसा धर्मात्मा पुरुष न हुआ है और न होगा। तुम पर कुटिलता का आरोप लगाना महापाप है। भरत! तुम्हारे जैसे महात्मा का नाम स्मरण करने से ही, पाप, प्रपंच और समस्त अमंगल मिट जाते हैं।''[73]

आगे विभीषण को समझाते हुए राम कहते हैं –

''जिस भावना से वशीभूत होकर तुम इस समय यह कह रहे हो, उसे श्मशान वैराग्य कहते हैं परन्तु भावना से कर्त्तव्य महान है। मृत्यु से जीवन और भूत से वर्तमान हमारे कर्मों का आह्वान है मित्र! प्रतिक्षण, प्रतिपल परिवर्तन प्रकृति का नियम है। प्राणी मात्र को उसके अधीन होकर कर्म करना ही पड़ता है।''[74]

इस प्रकार जिन उदाहरणों द्वारा तुलसीदास ने पात्रानुसार भाषा का चित्रण किया है, उस अनुरूप यदि धारावाहिक की भाषा को देखें तो भाषा का लय लगभग सम्पूर्ण धारावाहिक में समान है। चूँकि पात्रों के संवाद उनके जीवन–कर्मों एवं घटनाओं से जुड़े हैं, इसलिए उनमें पात्रानुकूल भाषा का विधान तो है लेकिन जिस भाषिक स्तर का प्रयोग तुलसीदास ने किया है, उसका सर्वथा अभाव है। ऐसा प्रतीत होता है मानो पात्र को पीछे से कहा जा रहा हो और वो अपनी बात सीधे एवं सरल रूपों में रख रहे हों। यहाँ भाषिक–सौन्दर्य नगण्य है। संवाद प्रायः अभिधात्मक है, लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग न्यून है। किसी भी पात्र की भाषा को देखें तो उनका लय लगभग वही है। उदाहरणस्वरूप दशरथ वशिष्ठ से राम के राज्याभिषेक की चर्चा करते हुए कहते हैं ''गुरू की कृपा हो तो सारे मनोरथ बिना प्रयास के ही सफल हो जाते हैं। मैंने भी इस जीवन में जो पाया है, वह इन्हीं चरणों की पूजा से पाया है। प्रभु! अब मेरे मन में एक ही अंतिम अभिलाषा रह गई है। वह भी आपके आशीर्वाद से पूर्ण हो जाए तो मेरा जीवन धन्य हो जाए।''[75]

---

[73] वही, पृ. 329, एपिसोड 24
[74] वही, पृ. 981, एपिसोड 76
[75] वही, पृ. 155, एपिसोड 12

विश्वामित्र की भाषा का लय इस प्रकार है –

''शास्त्र कहता है कि मनुष्य जब अपने सांसारिक कर्तव्य पूरे कर ले तो उसे अपने पुत्र, पत्नी, मित्र या परिवार की भावनाओं के बन्धन ठीक समय स्वयं ही तोड़कर अपनी आध्यात्मिक उन्नति की ओर बढ़ना चाहिए। यदि वह समय चूक गया तो उसे केवल मृत्यु के समय ही चेतना आएगी। इसलिए उत्तम यही है कि वह स्वयं पहले ही चेत जाए।''[76]

भाषा के लय में एकरूपता तो है ही, साथ ही साथ लम्बे–लम्बे वाक्यों के प्रयोग ने वाक्य संरचना को भी प्रभावित किया है।

धारावाहिक की भाषा को पात्रानुकूल बनाने की कोशिश रामानन्दसागर ने भी की है किन्तु शब्दों एवं वाक्यों की संरचना के उस साहित्यिक स्तर तक वे नहीं पहुँच सके। हालाँकि आम जनमानस की रुचि का ध्यान रखा जाए तो यह धारावाहिक के लिए अपेक्षित भी नहीं है। राम, लक्ष्मण, भरत, दशरथ, विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि की भाषा का स्तर लगभग समान है। इनकी भाषा में एक प्रकार की चारित्रिक भव्यता दिखाई पड़ती है। इनकी भाषा में प्रयुक्त लोकोक्ति एवं मुहावरे, उपमा, रूपक आदि का प्रयोग पात्रानुसार किया गया है।

इसके विपरीत खल–पात्रों की भाषा का स्तर इनसे भिन्न है। रावण जो प्रमुख खल–पात्र है उसकी भाषा में प्रयुक्त मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ द्रष्टव्य हैं। रावण माल्यवान से कहता है – ''हानि, हानि ही हानि है। आकाश में फहराते रावण के झंडे धज्जियाँ बनकर धूल में मिल जाएँगे। दसो दिशाएँ हमारे नाम पर थूकेंगी। दसों दिशाओं के विजेता ने थूक के चाट लिया। बड़ी अकड़ के साथ सिंह बनकर सीता को उठा लाया था और सियार के समान होकर उसे वापस लौटा दिया।''[77]

---

[76] वही, पृ. 154
[77] वही, पृ. 762

आगे रावण मय दानव से कहता है –''हम आपके बहुत आभारी हैं दानवराज! हम तो क्या लंका का बच्चा–बच्चा आपके चमत्कार को नमस्कार करता है।''[78]

इस तरह की उपमा एवं मुहावरे का प्रयोग राम या किसी आदर्श पात्र के लिए नहीं किया जा सकता है। इसे रामानन्द सागर ने पात्रानुसार प्रयोग किया है। यहाँ लोकोक्ति एवं मुहावरों के साथ प्रयुक्त भाषा आम बोलचाल की भाषा के निचले स्तर तक उतर आती है। किन्तु यही भाषा अंगद, सीता, मन्दोदरी आदि के साथ संवाद में उपदेशात्मक, तत्सम प्रधान एवं उच्च भाव–भूमि पर स्थित दिखाई देती है। कहने का अर्थ यह है कि भाषा का उतार चढ़ाव परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित हुआ है।

मानस में वर्णित स्त्री–पात्रों की भाँति धारावाहिक का भाषायी स्तर भी भिन्न है। यहाँ भी कौशल्या, सुमित्रा, सीता, अनुसूया, मन्दोदरी, तारा आदि स्त्रियों की भाषा में गम्भीरता एवं शालीनता दिखाई देती है, वहीं ताड़का, शूर्पणखा, मंथरा आदि की भाषा स्वभावानुसार व्यंजित है।

धारावाहिक में भी वनवासियों की भाषा में परिवर्तन रामानन्द सागर ने किया है। तुलसीदास ने सिर्फ भाषिक स्तर में परिवर्तन कर भाषा की आंचलिकता का संकेत दिया है लेकिन रामानन्द सागर ने खड़ी बोली से इतर उनके लिए अवधी का प्रयोग किया है। न सिर्फ वनवासी वरन मिथिला की वृद्ध स्त्रियाँ भी लोकभाषा में बात करती हैं। संवादों में जहाँ लेखक ने कोल–किरात, भील आदि की भाषा में अवधी का प्रयोग किया है, वहीं मिथिला की वृद्धा भी अवधी बोल रही हैं। उदाहरणस्वरूप केवट, निषाद, ग्राम–वधुओं की भाषा यहाँ उल्लेखनीय है। निषादराज और सेवक के बीच का संवाद निम्नलिखित है –

''सेवक – हाँ–हाँ, राजा जी! हम अच्छी तरह देखा। अयोध्या नरेश की सूर्य–पताका फहराय रही है रथ पर और ऊ रथ में बैठे हैं दो धनुषधारी जवान। साथ में एक स्त्री, एक रथवान।

निषाद – रथ पर सूर्य–पताका है और सेना नहीं है साथ में?

---

[78] वही, पृ. 764

दूसरा सेवक – नहीं है राजन! हम अच्छी तरह देखा। हम ऊ का पीछा भी किया। रथ श्रृंग्वेरपुर आई गवा है। गंगा के किनारे वट–वृक्ष के नीचे ठहरा है।

निषाद – दुई धनुषधारी जवान और रथ मा कौन हुई सकत हैं?

पहला सेवक – राजा जी! सारथी उन्हें कभी कुमार कहत हैं और

कभी श्री राम कहकर बुलावत हैं।

निषाद – का कह्यो? श्रीराम? अजुध्या के राजकुमार? अरे सरऊ ई काहे नहीं कहत हो कि श्रीराम आए हुए हैं? हमरे मित्र, हमरे गुरू आश्रम के सखा, हमरे सरकार हमरे गाँव में आए हैं। हमरे धन्य भाग!''[79]

यहाँ पटकथा निर्माता ने पात्रानुसार जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह पात्रों के सामाजिक जीवन के अनुरूप है। अवधी भाषा का लय भाषा को पूर्णतः आँचलिकता प्रदान कर रहा है। केवट की भाषा भी इसी प्रकार की भाषा है। वह राम से कहता है –

''कष्ट? कष्ट तो हमें आपकी इह कष्ट की बातें सुनके होइ रहा है। कृपा–निधान! थोड़े दिन अपने साथ रहे दो। हमरौ मान बढ़ि जाइगा और महाराज! घने जंगल माँह डगरै उबड़–खाबड़ होत हैं। आप तो पहली बार वन माँह आए हो। डगरौं नाहीं जानत हो और हम डगर के जानकार हैं। का सोचत हो महराज? हम का साथ में रहन दो। आप जब भी हमका आज्ञा देंगे, वहीं से वापस लौट जाएँ। तोहार सौगन्ध!''[80]

स्थानीयता के मेल से निर्मित भाषा में एक स्वाभाविकता दिखाई देती है, जो चरित्र को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त कर रही है। मिथिला की वृद्धा स्त्री भी इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करती है।

---

[79] वही, पृ. 229, एपिसोड 17
[80] वही, पृ. 241, एपिसोड 18

इस तरह रामानन्द सागर के यहाँ पात्रानुसार भाषा का स्तर हमें अवश्य दिखाई देता है किन्तु वह उस रूप में व्यवस्थित नहीं है, जिस रूप में तुलसी के यहाँ है।

- **अवसरानुकूल भाषा**

धारावाहिक में भाषा का स्तर अवसरानुसार परिवर्तित हुआ है। पुष्पवाटिका प्रसंग में राम की भाषा एक सात्विक प्रेम में जाग्रत मन की भाषा है। सीता के सौन्दर्य में अभिभूत राम लक्ष्मण से कहते हैं – ''हाँ, लक्ष्मण! बेचैन तो हूँ। आज मेरे मन की दशा बड़ी विचित्र हो रही है। मेरा मन स्वभाव से ही पवित्र है। उसके शान्त जल में जैसे किसी ने कंकर फेंक दिया है जिससे मन के शान्त सरोवर में भावनाओं की लहरें उठती चली जा रही है और हर लहर में सीता झाँक रही है।''[81]

यहाँ भाषा सहज एवं सरल है लेकिन जिस रूपक एवं उत्प्रेक्षा का प्रयोग इस स्थिति के वर्णन में तुलसीदास ने किया है, उसका आभाव है।

लक्ष्मण–परशुराम संवाद में राम की भाषा स्वाभिमान से युक्त दिखाई गई है, परन्तु स्वाभिमान का जो ओज तुलसी के 'जौं हम निदरहि बिप्र बदि' में है वो इस संवाद में दिखाई नहीं देता – ''प्रभु! यदि रण में हमें कोई ललकारे तो क्षत्रिय–धर्म के अनुसार हम उससे अवश्य लड़ेंगे। चाहे वह स्वयं काल ही क्यों न हो परन्तु हम रघुवंशियों का यह भी धर्म है कि हम गऊ, ब्राह्मण और स्त्री पर हाथ नहीं उठाते। ब्राह्मण हमारे लिए सदा पूजनीय है और उनकी सेवा करना हमारा धर्म है। सो प्रभु और सेवक के बीच युद्ध कैसे हो सकता है?''[82]

लक्ष्मण के वियोग में राम की भाषा का स्तर परिवर्तित दिखाई देता है। लक्ष्मण की मूर्च्छा से व्यथित राम सुग्रीव एवं जामवन्त से कहते हैं – ''मैं सत्य कह रहा हूँ। यदि मेरे लक्ष्मण को कुछ हो गया तो फिर आप लोग राम को भी जीवित नहीं पाएँगे। महाराज सुग्रीव! ऋक्षराज जामवन्त! महाबली केसरी! नल–नील! आप

[81] वही, पृ. 89, एपिसोड 6
[82] वही, पृ. 106, एपिसोड 8

सभी लोगों ने अपने–अपने प्राण दाँव पर लगा दिए मेरे लिए। दुर्धर्ष युद्ध किया परन्तु दैव के आगे किसी का वश नहीं चलता। यदि मेरी मृत्यु भाई के विछोह में ही लिखी है तो उसे कौन टाल सकता है?''[83] यहाँ राम की भाषा सहज एवं सरल है। किसी प्रकार के बिम्ब, प्रतीक एवं अलंकारों का प्रयोग नहीं है, किन्तु युद्ध के समय, दुश्मनों का उपदेश देते समय भाषा पुरुषावृत्ति, ओज–गुण एवं कठोर ध्वनियों से पूरित दिखाई पड़ती है। मृत्यु के समय बाली एवं राम का संवाद इसका उदाहरण है।

लक्ष्मण की भाषा भी अवसरानुसार परिवर्तित दिखाई पड़ती है। धनुष भंग के समय लक्ष्मण की भाषा क्रोध एवं उत्तेजना से पूर्ण है, वहीं परशुराम संवाद में भाषा विनोदपूर्ण। रामानन्द सागर ने भाषा के इस स्वरूप को 'मानस' से ही ग्रहण किया है। जनक की सभा में उत्तेजित लक्ष्मण जनक से कहते हैं – ''बस–महाराज बस! इतनी लज्जाजनक बात कहने से पहले आपको यह याद नहीं आया कि इस सभा में सूर्यवंशी, कुलनन्दन श्रीराम भी बैठे हैं। महाराज जनक! जिस सभा में रघुवंशियों में से एक भी बैठा हो, उस सभा में इस तरह की बात कहने का कोई साहस भी नहीं करता और आप तो रघुकुल–नन्दन श्रीराम के सामने वीरता की चुनौती दे रहे हैं? आप इसका परिणाम जानते हैं?''[84]

यहाँ भाषा उत्तेजनापूर्ण है, वहीं परशुराम संवाद में लक्ष्मण की विनोदप्रियता इस प्रसंग में दिखाई देती है। जब परशुराम ने लक्ष्मण को अपनी आँखों के सामने से दूर ले जाने की बात करते हैं, तब लक्ष्मण इन शब्दों में व्यंग्य करते हैं –

''आप अपनी आँखे बंद कर लीजिए प्रभु! मैं दिखाई ही नहीं दूँगा।।''[85]

वनगमन के समय राम को मनाते हुए लक्ष्मण की भाषा विनम्रता का अद्‌भुत उदाहरण है। लक्ष्मण राम से कहते हैं – ''भैया! मेरे तो गुरू, माता–पिता, सगे–स्नेही केवल आप हैं। मेरा धर्म, कर्म, गति, सद्‌गति सब कुछ आप में निहित है। आपसे अलग तो मैंने कभी अपनी कल्पना की ही नहीं! क्रोध के आवेश में

[83] वही, पृ. 876–877, एपिसोड 67
[84] वही, पृ. 98, एपिसोड 7
[85] वही, पृ. 105, एपिसोड 8

आकर यदि मैंने कोई अनुचित बात कही हो तो मुझे क्षमा करें भैया। इतना क्रूर दण्ड मुझे न दो। मेरा त्याग मत करो। मुझे अपने से अलग मत करो। मुझे अपने साथ ले चलो।''[86]

यहाँ लक्ष्मण के अनुनय विनय की भाषा इस स्तर पर उतर आई है कि जहाँ रामानन्द सागर खड़ी बोली के पूर्वी रूप का प्रयोग सम्मान हेतु करते हैं (जैसे – कीजिए, चलिए, दीजिए) वहाँ भाषा (दो, करो, चलो) खड़ी बोली के पश्चिमी रूप पर उतर आई है। शायद उन्होंने अपनत्व को अधिक पुष्ट करने हेतु इस भाषा का उपयोग किया है।

अवसरानुसार भाषिक–स्तर के परिवर्तन का सबसे प्रमुख उदाहरण कैकेयी की भाषा है। जिसकी अवसरानुसार भाषा के तीन रूप है। एक कैकेयी की भाषा वह है जब वह राज–परिवार के सभी पुत्रों के बराबर प्रेम करती है, वह राजा दशरथ की पत्नी है। दूसरी कैकेयी की भाषा वह है जब वह अपनी पुत्र की राजगद्दी हेतु दशरथ से कटु–वचन हेतु कठोर वर्णों का प्रयोग करती है। भाषा का तीसरा स्तर चित्रकूट में कैकेयी द्वारा प्रायश्चित के रूप में दिखाई देता है।

इस प्रकार न सिर्फ राम, लक्ष्मण, कैकेयी बल्कि सीता, भरत, दशरथ आदि सभी प्रमुख पात्रों की भाषा अवसरानुसार परिवर्तित हुई है। मानस और धारावाहिक के पात्रों के भाषिक स्तर में कई समानताएँ एवं असमानताएँ हैं। जैसाकि कहा जा चुका है कि रामायण धारावाहिक खड़ी बोली में रूपान्तरित है और मानस अवधी का उत्कृष्ट काव्यग्रंथ। हालाँकि रामानन्द सागर ने न सिर्फ नीति वाक्यों, सूक्तियों बल्कि अधिकांश जगहों पर मुहावरे, लोकोक्तियों एवं संवाद को हू–ब–हू खड़ी बोली में भावार्थ किया है। जिससे भाषा का सौन्दर्य भी परिवर्तित हुआ है, जो महाकाव्य में है, क्योंकि महाकाव्य की अपनी अलग कसौटी है। रूपान्तर के दौरान पटकथा लेखन में रामानन्द सागर की भाषा ने किसी परिष्कृत साहित्य की भाषा की अपेक्षा नहीं रखी है, फलतः भाषा आम जीवन के निचले स्तर तक पहुँच गई है। इनका ध्येय तुलसी की तरह भाषा का उद्धार करना नहीं था बल्कि कथा को

---

[86] वही, पृ. 207–208, एपिसोड 15

लोगों तक पहुँचाना था, जिसमें उन्होंने भाषा के लिए तुलसी एवं वाल्मीकि का सहारा लिया। इन महाकाव्यों से भावार्थ ग्रहण कर उसे खड़ी बोली में रूपान्तरित किया। एक तरफ तो वत्स, पिताश्री, माते जैसे शब्दों का सम्बोधन कर भाषा को संस्कृत एवं मिथक–पुराणों की भाषा के करीब ले जाने का प्रयास किया, वहीं जीजी, भैया आदि सम्बोधनों द्वारा आम जन–जीवन को साधने की कोशिश की। 'वापस' शब्द के लिए हर जगह 'वापिस' का प्रयोग किया। इसलिए तुलसीदास की भाँति उच्चता एवं भव्यता की कल्पना, रामानन्द सागर के धारावाहिक की भाषा में नहीं की जा सकती। संवाद की भाषा होने के कारण वाक्य का व्याकरणिक ढाँचा गलत है। एक ही शब्दों का लगातार सम्बोधन है। दूसरी बात यह कि कहीं–कहीं शब्द और सम्प्रेषण दोनों की एक्यता प्रभावित होती हुई मालूम पड़ती है। शब्द के अनुसार पात्र का सम्प्रेषण अलग नजर आता है। पात्रों की अतिशय विनम्रता एवं धर्मभीरुता भाषा को भी प्रभावित करती है। जहाँ स्वाभिमान की भाषा भी विनम्रता की भाषा में परिणत हो जाती है आदि।

5.4 संवाद की भाषा और धारावाहिक रामायण

5.4.1 भाषिक रूपान्तरण एवं संवाद लेखन

किसी भी साहित्यिक कृति का जब रूपान्तरण होता है तब उसकी भाषा वही नहीं रह जाती है, जो मूल कृति में होती है। उसमें बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। साहित्य में भाषा की जो उच्चता एवं गरिमा होती है, जिससे काव्यमयी वाणी प्रस्फुटित होती है, उसको उसी रूप में फिल्म या धारावाहिक में बनाए रख पाना मुश्किल होता है और वह सम्भव भी नहीं है। साहित्यिक भाषा में यदि शब्द–चित्रों का प्रयोग होता है तो फिल्म या धारावाहिक में वही शब्द–चित्र चाक्षुष बिम्बों में परिणत हो जाते हैं। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि एक निर्देशक को किसी भी साहित्यिक कृति के वर्णनात्मक शब्दों को फिल्माना पड़ता है। साहित्यिक कृति में प्रयुक्त उन शब्दों को पढ़ते हुए पाठक भावमयी भाषा में आनन्द ले सकता है, परन्तु फिल्म या धारावाहिक में हम उन्हीं शब्दों को दृश्यों के माध्यम से प्रत्यक्ष

देखते हैं और इस पाठ्य को दृश्य में परिवर्तित करते हुए धारावाहिक में भाषा की ही नहीं बल्कि कैमरे और निर्देशक के अनुभव की भी भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। 'मनोहर श्याम जोशी' ने लिखा है – ''पटकथा किसी पाठक के पढ़ने के लिए या दर्शकों के सामने रंगमंच पर अभिनीति किए जाने के लिए नहीं लिखी जाती है। दिग्दर्शक, जो उसे कैमरा और ध्वनि–लेखन यंत्रों की मदद से फिल्म पर उतारता है और पर्दे पर उसे दिखवाता है।''[87]

साहित्य में भाषा को समृद्ध करने के लिए अलंकार, छन्द, प्रतीक, बिम्ब आदि का सहारा लिया जाता है। किसी भी वस्तु को प्रतीक के माध्यम से व्यंजित कर दिया जाता है किन्तु धारावाहिक में ऐसा नहीं हो सकता। धारावाहिक में भाषा को काव्यमयी बनाना उसे दुर्बोध बनाना है क्योंकि दोनों के उपभोक्ता और उनके वर्ग भिन्न हैं। इन भिन्न वर्गों के बीच की भाषा का विधान धारावाहिक में किया जाता है, जिससे हर वर्ग तक कथ्य सम्प्रषित हो सके। साहित्य की भाषा मनुष्य को एक ऐसी भावमयी दुनियाँ में ले जाती है, जहाँ उसे आनन्द की प्राप्ति होती है। इसलिए इस भाषा को कबीर ने शब्दातीत कहा है, जहाँ भाषा शब्द से भी ऊपर भाव ग्रहण कर लेती है। भाषा ससीम से असीम हो जाती है। लेकिन भाषा का यह रूप फिल्म में एक सीमा तक ही प्रयोग किया जा सकता है। 'डॉ. सुरेन्द्रनाथ तिवारी लिखते हैं – ''फिल्म की भाषा का ठोस आधार बिम्ब है लेकिन फिल्म में बिम्ब सामने घटित होता दिखाई पड़ता है, जबकि साहित्य में बिम्ब की अनुभूति उसके मानसिक संवेदन के कारण होती है। अतः दोनों रूपों में बड़ा अंतर है। फिल्म में बिम्ब निर्माण संवेदन पर आधारित न होकर एक मशीन द्वारा निश्चित स्थान और समय में अभिलिखित (रेकार्डेड) होते हैं। इसलिए फिल्म की भाषा की सम्पूर्णता कैमरा, ध्वनि यंत्र (माइक) और इन दोनों के संकलन (एडीटिंग) पर निर्भर होती है। सिनेमा की भाषा वही है, जो इन तीनों साधनों के माध्यम से निखर आती है। अतः फिल्म, लेखन और मशीन के समन्वय द्वारा निर्मित कला रूप है।''[88]

---

[87] मनोहर श्याम जोशी, पटकथा लेखन एक परिचय, पृ. 165
[88] उद्धृत, हरीश कुमार, सिनेमा और साहित्य, पृ. 129–30

इसलिए फिल्म या धारावाहिक में उपन्यास या महाकाव्य का भाषिक रूप परिवर्तित हो जाता है और इसी आधार पर संवाद की रचना की जाती है।

यह स्थापित सत्य है कि धारावाहिक या फिल्म मुख्य रूप से दृश्य माध्यम है। चूँकि उसके द्वारा किसी मिथक पुराण या फिर उपन्यास या किसी कथा विशेष को प्रस्तुत किया जाता है, इसलिए वह लेखक के लेखकीय धर्म से निरपेक्ष नहीं हो सकता। किसी भी कहानी का उपन्यास में संवाद, उसकी संरचना का ही हिस्सा होता है किन्तु फिल्म में इसे विशेष रूप से सम्पूर्ण दृश्य एवं पात्रों की आवश्यकता के अनुसार लिखा जाता है। 'सत्यजीत रे' के अनुसार ''सबसे अच्छा संवाद तो वह है जिसमें लेखक की उपस्थिति का पता ही न चले।''[89] अर्थात उसके संवाद ऐसे हों, जिसमें कम से कम शब्द हों। शब्द व्यर्थ न हो। न ही उसमें बौद्धिक गहनता हो और वह बोझिल न करे। शब्दों एवं वाक्यों का भारी–भरकम प्रयोग न हो। 'गौरीशंकर रैणा' ने लिखा है ''यदि हम श्रेष्ठ टेलीविजन नाटक की जाँच करें तो गुणात्मक दृष्टि से उसके संवाद अधिक भरे–पूरे और अधिक समृद्ध होते हैं। जो टेलीविजन की दृश्यात्मक शैली का समर्थन करते हुए अभिनेता–अभिनेत्रियों के लिए ऐसी मौखिक–भाषा प्रदान करते हैं जिसका भाष्य दर्शक आसानी से समझ लेते हैं। फिर भी टेलीविजन नाटक में ऐसी स्थितियाँ आती हैं। जहाँ संवाद के बजाए दैहिक–भाषा द्वारा संवाद हो सकता है। ऐसी स्थिति में मौखिक संवाद निकाल दिए जाते हैं।''[90] जाहिर है कि संवाद की भाषा सरल होनी चाहिए और संवादों की आवश्यकता भी वही होती है जहाँ निर्देशक दृश्य के कथ्य को सम्प्रेषित न कर सके। क्योंकि फिल्म या धारावाहिक के सम्प्रेषण का प्रमुख माध्यम दृश्य एवं चित्रात्मकता है। जैसे किसी लेखक को अपनी रचना में क्रोधित दिखलाने के लिए उसके या अन्य किसी पात्र के द्वारा उसकी मानसिक स्थिति का चित्रण करने के लिए संवाद की आवश्यकता होती है, किन्तु फिल्म या धारावाहिक में ऐसा नहीं हो सकता। पात्र के चेहरे और हाव–भाव के द्वारा भी इस स्थिति को दिखाया जा सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि संवाद लेखक

---

[89] साहित्य और सिनेमा, संपा. पुरुषोत्तम कुन्दे, पृ. 222
[90] गौरी शंकर रैणा, टेलीविजन नाटक की पटकथा, पृ. 24

अधिक से अधिक दृश्य विधान और मौन भाषा का भी रचनात्मक उपयोग करने में समर्थ हो। यही भाषा दर्शकों को फिल्म या धारावाहिक से जोड़े रहती है।

धारावाहिक में प्रयुक्त संवाद एवं उसकी भाषा के लिए कुछ बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है। जैसे संवादों की भाषा पात्रानुसार होनी चाहिए, जिस पर पीछे विचार किया जा चुका है। उसमें साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग होना चाहिए। दुरूह शब्दों का प्रयोग कम से कम और आवश्यकतानुसार किया जाना चाहिए। यदि कोई पात्र किसी अंचल या समाज विशेष का हो तो उसकी भाषा में आँचलिकता का समावेश होना चाहिए। मुहावरों, लोकोक्तियों ओर काव्यांशों का सटीक उपयोग भी संवाद को गतिशील बनाता है, धारावाहिक में चूँकि कलाकार ही संवाद की अदायगी करता है इसलिए कलाकारों की छवि के अनुरूप संवाद का लेखन होना चाहिए। धारावाहिक में प्रत्येक दृश्य की अपनी संरचना होती है, संवाद लेखक के लिए दृश्य की इस संरचना का भावात्मक निर्वाह करना अनिवार्य है। दृश्य में घटनाओं एवं पात्रों की मनःस्थिति का सटीक प्रक्षेपण संवादों में होना अनिवार्य है। कलाकारों द्वारा संवाद बोलने की शैली को ध्यान में रखना संवाद लेखक की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। संवाद लेखन के सम्बन्ध में 'जावेद अख्तर' कहते हैं – "मैंने असली बातचीत यानी मुहावरों, बात करने का ढंग, विरामों, वाक्य संरचनाओं की विशेषताओं आदि से कच्चा माल लिया, जैसे हर एक की बातचीत का ढंग और चलने का ढंग अलग–अलग होता है। वैसे ही बोलते वक्त कोई एक व्यक्ति हर चीज पर और दूसरा व्यक्ति दूसरी चीज पर जोर देता है। हर व्यक्ति की वाक्य संरचना अलग–अलग होती है। एक ही वाक्य लीजिए और तीन अलग–अलग लोगों से बुलवाइए। एक संवेदनशील संवाद लेखक इस बात पर जोर देता है जब वह डायलॉग लिख रहा होता है तो वह फैसला करता है कि उसका चरित्र उसे कैसे बोलेगा।"[91] इसलिए संवाद किसी भी फिल्म या धारावाहिक का महत्त्वपूर्ण अंग है और वह संवाद है पात्र द्वारा शब्दों की अभिव्यक्ति।

---

[91] साहित्य और सिनेमा, संपा. पुरुषोत्तम कुन्दे, पृ. 223

इस प्रकार चलचित्रों में संवाद के मुख्यतः दो काम हुआ करते हैं। पहला कथ्य को व्यक्त करना, दूसरा चरित्र को भाषा के माध्यम से उजागर करना। साहित्य में जो काम शब्दों के माध्यम से होता है। चलचित्र में वही चित्रों और शब्दों के मेल से सम्भव होता है। यहाँ परिवेश वर्णन के लिए शब्दों की कोई आवश्यकता नहीं होती, चित्र ही इस कार्य को सम्पन्न करते हैं। जो चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं हो पाता, उसके लिए संवाद का प्रयोग किया जाता है।

5.4.2 धारावाहिक रामायण के संवाद की भाषा

धारावाहिक के संवाद लेखन की भाषा हेतु जिन उपर्युक्त सिद्धान्तों पर विचार किया गया है। उसका उपयोग रामानन्द सागर ने धारावाहिक में किस स्तर तक किया है। उस पर विचार करना आवश्यक है। धारावाहिक रामायण के चित्रांकन में रामानन्द सागर ने कथ्य को अपने अनुसार 'रामचरितमानस' एवं 'वाल्मीकि रामायण' के आधार पर निर्मित किया है। यह रामानन्द सागर की अपनी भाषा है, जिसे उन्होंने खड़ी बोली में निर्मित की है। धारावाहिक के संवाद आम भाषा में हैं और सरल हैं। इसे साहित्यिक भाषा नहीं कहा जा सकता है। हालाँकि मूल कहानी का रूप साहित्यिक है, जिसे रामानन्द सागर द्वारा खड़ी बोली में रूपान्तरित किया गया है। संवाद भले ही जन सामान्य की भाषा में है किन्तु उसके शब्द तत्सम प्रधान हैं जो कथानक के मूल स्वभाव को व्यक्त करते हैं।

परिवारिक जीवन के संवाद घरेलू स्तर के हैं, किन्तु जहाँ–जहाँ कथन दार्शनिकता पर उतर आई है, वहाँ संवाद भी उसी रूप में हैं, उनमें प्रतीकात्मकता आ गई है। फलतः संवाद आपसी सामान्य बातचीत के हैं। वह छोटे हैं लेकिन जहाँ पात्रों की भाषा उपदेशात्मकता एवं दार्शनिकता पर उतर जाती है, वहाँ संवाद लम्बे हैं। उदाहणस्वरूप कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी द्वारा आपस में प्रयुक्त भाषा को देखा जा सकता है –

''कौशल्या – हाँ! कितना आनन्द भरा दृश्य है।

कैकेयी – अँ–ऽ–ऽ–ऽ उठा लो आनन्द कुछ दिन और फिर कहाँ देखने को मिलेगा यह।

सुमित्रा – क्यों?

कौशल्या – बसन्त पंचमी के दिन।

कैकेयी – हाँ! उसी दिन तो इन लोगों का यज्ञोपवीत संस्कार भी है।''[92]

इस प्रकार जहाँ सामान्य बातचीत है वहाँ वाक्य छोटे, सहज एवं सरल हैं, किन्तु उपदेशात्मक एवं दार्शनिक कथनों में संवाद लम्बे एवं तत्सम शब्दावलियों, रूपकों, प्रतीकों आदि से पूर्ण है। चित्रकूट में भरत और राम का संवाद देखा जा सकता है –

''भरत – परम पूज्य गुरूदेव! भैया। समस्त ऋषिगण! अयोध्या राज के मान्य मंत्रीगण। और प्रजाजन! मैं आप सबके सामने इस सभा में खड़ा होकर घोषणा करता हूँ कि अयोध्या के जिस राज्य के असली उत्तराधिकारी श्रीराम हैं, मेरी माता ने खड़ी कुटिल नीति द्वारा मेरे पिताश्री महाराज दशरथ को उनके दिए हुए वचन के जाल में फँसाकर वह राज्य मुझे दिला दिया परन्तु ऐसे अधर्म के पथ पर चलना मैं सर्वथा अनुचित मानता हूँ क्योंकि राज्य का उत्तराधिकारी सर्वदा ज्येष्ठ पुत्र ही होता है। हमारे कुल की रीति और विधान भी यही है। इसलिए उसके विरुद्ध जाना अधर्म होगा। मैं यह भी जानता हूँ कि मुझ जैसे प्राणी के मुख से धर्म और अधर्म की बात सुनकर सारा संसार परिहास करेगा, परन्तु मुझे एक ही आशा है, श्रीराम जैसा दाता यह नहीं देखेगा कि माँगने वाला पात्र है या कुपात्र। इसलिए मेरे अवगुणों को न देखकर मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। अपने कुल–धर्म के अनुसार अयोध्या के राजसिंहासन को ग्रहण करके मुझे और मेरी कलंकिनी माता को अपने पापों का प्रायश्चित करने में सहायता कीजिए।''[93]

''राम – तात! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ग्लानि कर रहे हो। मैं भगवान शंकर को साक्षी करके कहता हूँ कि तीनों काल और तीनों लोकों में तुम जैसा धर्मात्मा पुरुष न हुआ है और न होगा। तुम पर कुटिलता का आरोप लगाना महापाप है। भरत!

[92] रामानन्द सागर, धारावाहिक रामायण पटकथा, पृ. 25, एपिसोड 2
[93] वही, पृ. 328–329, एपिसोड 24

तुम्हारे जैसे महात्मा का नाम स्मरण करने से ही पाप प्रपंच और समस्त अमंगल मिट जाते हैं। माता कैकेयी को भी वही मूर्ख दोष देंगे जिन्हें गुरू से सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। भरत! इन भावनाओं से ऊपर उठकर केवल इतना सोचो कि हमारे महान पिता ने माता कैकेयी को दिए हुए जिस वचन के लिए न केवल मुझे त्याग दिया वरन् मुझे त्यागने के दुख में अपने प्राण भी त्याग दिए। ऐसे सत्यवादी पिता के वचन को हम चारों भाई निभाएँ या उनके स्वर्गवास के पश्चात उनके वचन का निरादर करके उन्हें झूठा प्रमाणित कर दें? बताओ भरत! इस समय हम चारों भाइयों का क्या धर्म है?''[94]

इस प्रकार के संवाद धारावाहिक के कई प्रसंगों में भरे पड़े हैं चाहे रावण–अंगद संवाद हो, बाली–राम संवाद हो, हनुमान–रावण संवाद हो, जहाँ भी संवादों में सामान्य व्यवहार से अलग औपचारिकता आई है संवाद लम्बे हो गए हैं, भाषा सुगठित हो गई है।

दूसरी प्रमुख बात यह है कि धारावाहिक की भाषा और संवादों में ग्राम्य परिवेश के तत्त्व गहराई से जुड़े हैं। भाषा सरल है और संवाद भी गतिमान प्रतीत होता है। निषादराज एवं उसके सेवकों के बीच के संवाद एवं उसकी भाषा को देखा जा सकता है –

''सैनिक – हम साची कहत हैं राजा! चारों ओर ई खबर है कि अयोध्या के राजा श्री रामचन्दर जी वनवास पूरा करि कि अयोध्या लौट रहि हैं।

गुहराज – अरे ई कहा कहत है तू रे। हम का वचन दै गए थे कि लौटत बिरिया हमरे पास जरूर पधारेंगे। अरे ऐसन कौउन से मारग से जाइ रहे हैं जो अबहुँ तक नहीं पहुँचे?

सैनिक – कहत हैं आकाश मार्ग से जाइ रहै हैं।''[95]

यहाँ संवाद पात्रों के मुख से सहज एवं बिना दबाव के मुखरित होते हैं। प्रमुख पात्रों की बड़ी–बड़ी दार्शनिक उक्तियों में एक बार लेखकीय दबाव दिखता

---

[94] वही, पृ. 329, एपिसोड 24
[95] वही, पृ. 999, एपिसोड 77

है किन्तु यह ग्राम्य भाषा में सहज निसृत मालूम पड़ती है, जिससे दर्शक अभिव्यक्त करने वाले पात्र के समस्त मनोविज्ञान से परिचित हो जाता है।

धारावाहिक की भाषा में सबसे प्रमुख योगदान गीतों का है। इसका प्रयोग धारावाहिक में प्रभूत हुआ है। गीत एवं संवाद एक दूसरे को आधार प्रदान करते हैं। जहाँ संवाद खत्म होता है, उसके आगे की अभिव्यक्ति एवं पात्रों का मनोभाव गीतों के द्वारा अभिव्यक्त होता है। ये गीत भी कई भाषाओं में हैं। कहीं वह ब्रज भाषा में है, कहीं अवधी और कहीं खड़ी बोली। 'रामचरितमानस' के दोहों एवं चौपाइयों का प्रयोग सांगीतिक रूप से किया गया है साथ ही कुछ पंक्तियाँ दोहों और चौपाइयों के तर्ज पर गढ़ दिया गया है। इस समस्त भाषिक स्वरूप को उदाहरणों द्वारा समझा जा सकता है।

जैसाकि पीछे कहा जा चुका है कि दृश्य माध्यम में संवाद से अधिक मौन की भाषा को हाव–भाव एवं दृश्य–विधान के माध्यम से व्यक्त करना अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। रामानन्द सागर ने भी पात्रों के मनोभाव को दर्शाने के लिए इस युक्ति का प्रयोग किया है और उस हाव–भाव एवं मनोभाव दोनों को उपस्थित करने के लिए गीतों की योजना की है। उदाहरणस्वरूप पुष्पवाटिका प्रसंग देखा जा सकता है। जहाँ संवाद नगण्य है, मन के तमाम भाव संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त हो रहे हैं। मानस की पंक्तियों के मध्य रामानन्द सागर ने अपनी पंक्तियाँ भी जोड़ दी है

> ''एक दूजे को ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने।।
> एक दूजे को निरखत मन न अघाए।
> राम सियामय,
> सिया राममय,
> सिया राममय, एक ही रूप लखाए।
> इक दूजे को निरखत मन न अघाए।
> अधिक सनेहँ देह भै भौरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।''[96]

[96] वही, पृ. 87, एपिसोड 6

इस प्रकार की सांगीतिक योजना सम्पूर्ण धारावाहिक में है। उन्हें जहाँ भी अवसर मिला, वहाँ पात्रों के मनोभाव एवं दृश्य के अनुरूप गीत का प्रयोग किया है। लेकिन गीतों में एकरूपता का आभाव है। एक ही प्रसंग में कई तरह की पंक्तियाँ हैं, उनमें मानस की पंक्तियों के साथ पटकथा लेखक की भी पंक्ति है। कुछ पंक्तियाँ वेद–पुराणों एवं वाल्मीकि रामायण से भी गृहीत हैं। इस तरह गीत की भाषा, भाषा एवं भाव दोनों की दृष्टि से मिश्रित है। जनक के दरबार में बंदीगण की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है –

''हम बंदीजन, हम बंदीजन,
अपने राजन की बिरुदावली बखान करें।
मिथिला के प्रजापति, मिथिला के प्रजापाति
जनकराज की गरिमा का गुणगान करें, हम बंदीजन...।''[97]

इसी प्रकार जयमाला के समय सखियों द्वारा गाये गए गीत की पंक्ति भी खड़ी बोली में रचित है –

''श्री रघुवर कोमल कमल–नयन को पहनाओ जयमाला।
यह पुण्य मुहूर्त स्वर्णिम अवसर फिर नहीं आने वाला।
दो चार चरण चलते–चलते श्री रघुवर तक ऐसे पहुँचे।
ज्यों छुई–मुई के पल्लव हों, सिमटे–सिमटे, सकुचे–सकुचे।
श्री राम चकित चितवै सीता का अद्‌भुत रूप निराला।''[98]

यहाँ खड़ी बोली के लिए रामानन्द सागर ने 'ज्यों', 'चितवै' जैसे शब्दों को ग्रहण कर उसे आगे के लय में जोड़ने की कोशिश की है। कई स्त्रोतों से पंक्ति ग्रहण करने के कारण और उन स्त्रोतों से अपनी पंक्ति को मिलाने के क्रम में भाषा कहीं–कहीं तुकबंदी सी हो गई है। दशरथ प्रसंग की यह भाषा द्रष्टव्य है –

''केस पके! तन प्राण थके, अब राग–अनुराग को भार उतारो।

---

[97] वही, पृ. 95, एपिसोड 7
[98] वही, पृ. 101, एपिसोड 8

मोह महा मद पान कियो अब आतम ज्ञान को अमृत ढ़ारो।
जीवन के अन्तिम अध्याय में, त्याग करो और दीक्षा धारो।
राम को सौंप के राज और पाट, करो तप आपुनो जन्म सुधारो।''[99]

इसी प्रकार केवट प्रसंग में प्रयुक्त इन पंक्तियों को देखा जा सकता है –

भगति में डूबो बावरो केवट, प्रभुपद – धूलि लगावत माथा।
दीन दयालु दयानिधि चल दिए, तोड़ के बन्धन, जोड़ के नाता।
रैन कटी आकाश के नीचे, अनुज और मित्र के साथा।
प्रात समय उठ तीरथ राज प्रयाग की ओर चले रघुनाथा।।''[100]

यहाँ छन्द की भाषा कम और तुकबन्दी की भाषा अधिक है।

धारावाहिक में गीतों की भाषा अवसरानुसार भी परिवर्तित दिखाई देती है। जयमाला के समय जो भाषा का रूप है, विवाह के समय उसका अलग रूप दिखाई देता है। सुबह प्रातकी भाषा हो या शाम को लोरी की, हर अवसर पर भाषा को अवसरानुकूल बनाने की कोशिश की गई है। गीतों में भी संवादों की तरह लोकभाषा की अभिव्यक्ति हुई है।

''सिया रघुवर जी के संग परन लागीं,
हरे–हरे परन लागीं भाँवरिया।
छायो चहुँ दिसि प्रेम को रंग, परन लागीं,
ओ सिया रघुबर जी के संग,
परन लागीं भाँवरिया।''[101]

विवाह जैसे सांस्कृतिक उत्सव के अनुरूप ही गीतों की योजना की गई है। केवट प्रसंग में भी इसी प्रकार की भाषा का विधान किया गया है –

---

[99] वही, पृ. 154, एपिसोड 12
[100] वही, पृ. 244, एपिसोड 18
[101] वही, पृ. 135

''केवट रे! बड़भागी तोरी नैया।।
बड़भागी तोरी नैया।
आज तोरी नैया में विराजे
भवसागर के खवैया।
बड़भागी तोरी नैया।''[102]

रामानन्द सागर द्वारा कहीं–कहीं गीतों का उपयोग प्रत्याभास शैली में किया गया है, जो पात्रों के आन्तरिक द्वन्द्व को उजागर करता है। वर्षा ऋतु में सीता के वियोग में व्यथित राम के अंतर्मन को इन गीतों के माध्यम से उजागर किया गया है।

''दमकि डरावे दामिनी, आवे झंझावात।
ओट नहीं, आश्रम नहीं, सिर पर है बरसात।।
नहीं मिथिला, नहीं अवधपुर, नहीं अपनो को संग।
जीवन तेरे चित्र के बिखर गए सब रंग।।''[103]

आगे पुष्पवाटिका से लेकर जयमाला तक की घटना इन गीतों के माध्यम से स्मृति रूप में दिखाई गई है –

''इक दूजे को निरखत मन न अघाए।
राम सियामय
सिया राममय एक ही रूप लखाए।
इक दूजे को
निरखत मन न अघाए।''
सहज भाव से शिव–धनु तोड़ा जन्म–जन्म का नाता जोड़ा।
जयमाल का शुभ क्षण आया, तीन लोक में आनन्द छाया।
दो चार चरण चलते–चलते श्री रघुवर तक ऐसे पहुँचे।
ज्यों छुई–मुई के पल्लव हों, सिमटे–सिमटे, सकुचे–सकुचे।''[104]

---

[102] वही, पृ. 244
[103] वही, पृ. 537
[104] वही, पृ. 537, एपिसोड 40

इस प्रकार जहाँ–जहाँ पात्रों के मनोभाव को संवादों के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं किए जा सकते, वहाँ–वहाँ गीतों का उपयोग कथा को आधार प्रदान करने हेतु किया गया है।

इतना ही नहीं तुलसी की पंक्तियों के साथ खड़ी बोली की पंक्तियों को जोड़कर उसी लय में गीतों को गढ़ने की कोशिश की गई है। सीता–हरण के पश्चात खोज में व्याकुल राम की मनःस्थिति को इस गीतों के माध्यम से दिखाया गया है –

''आश्रम देखि जानकी–हीना भए विकल जस प्राकृत दीना।
विरह–व्यथा से व्यथित द्रवित हो वन–वन भटके राम।
कुँजन माही न सरिता–तीरे विरह विकल रघुवीर अधीरे।
हे खग, मृग, हे मधुकर श्रेणी, तुम देखी सीता मृग नैनी।।''[105]

राम की बाल–लीलाओं के वर्णन में भी तुलसी की पंक्ति के साथ गीत की रचना की गई है –

''ठुमक चलत, ठुमक चलत,
ठुमक चलत रामचन्द्र बाजत पैंजनियाँ।
छोटी–छोटी बय्याँ धरत धरा पे,
उठत, चलत, गिर जावें राम जी।
दूध कटोरा उठाए के मटकें।
कागा को पिलाने जावें राम जी।
पकड़ पिता की बय्याँ, बय्याँ, बय्याँ।
ठुमक चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ''[106]

इस तरह तुलसी की पंक्तियों एवं भावों का उपयोग भी अपने अनुरूप गीतों एवं संवादों में किया गया है।

---

[105] वही, पृ. 437, एपिसोड 40
[106] वही, पृ. 17, एपिसोड 1

इस प्रकार यदि धारावाहिक में प्रयुक्त गीतों की भाषा पर विचार करें तो उसकी भाषा का अपना कोई भाषिक स्वरूप नहीं है। रामानन्द सागर का उद्देश्य इन गीतों के माध्यम से पात्रों के मनोभावों को अभिव्यक्त करना एवं कथानक को गतिशीलता प्रदान करना है। उन्होंने किसी व्याकरण को ध्यान में रखकर इन गीतों की रचना नहीं की बल्कि संवादों के बीच की रिक्तता को भरने के लिए इन लयात्मक संवादों का प्रयोग किया।

संवाद लेखक ने वैदिक कर्मकाण्ड एवं संवाद के अवसर पर भी संस्कृत के श्लोकों का भरपूर उपयोग किया है। संस्कृत में वाल्मीकि से रामकथा की परम्परा रही है, इसलिए पटकथा को उस परम्परा से जोड़ने एवं वैदिक कर्मकाण्ड को सम्पूर्णता में अभिव्यक्त करने के लिए भी रामानन्द सागर ने वेद, पुराणों एवं वाल्मीकि से संस्कृत के श्लोकों को ग्रहण किया है। जहाँ कहीं भी पटकथा में कर्मकाण्ड का विधान है वहाँ संस्कृत के श्लोकों एवं मंत्रों का उपयोग किया गया है उदाहरणस्वरूप यज्ञोपवीत के मंत्रोच्चार को देखा जा सकता है –

''यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुन्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेज।।''[107]

ये 'पारस्पर गृह्यसूत्रम' की पंक्ति है।

आगे 'तैत्तिरोयोपनिषद शिक्षावल्ली' की पंक्ति का प्रयोग है '
''सत्यं वद, धर्मं चर, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव।''[108]

यजुर्वेद की इन पंक्यियों का प्रयोग देखने को मिलता है।

''ओऽम प्रजापतये
स्वाहा
ओऽम इन्द्राय स्वाहा
ओऽम अग्नये स्वाहा
ओऽम सोमाय स्वाहा

---

[107] वही, पृ. 28, एपिसोड 2
[108] वही, पृ. 18, एपिसोड 2

ओऽम भूर्भुवः स्वः तत्स वितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात।''[109]

विद्याग्रहण के समय वशिष्ठ आश्रम में 'वृहत्स्त्रोत्तरत्नाकर' के 'सरस्वती–स्त्रोत्तम' की पंक्ति का उल्लेख किया गया है –

''या कुन्देदुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणवरदण्डमण्डित करा या श्वेतपद्मासना।।
या ब्रह्माच्युतशंकर प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड़्यायहा।।''[110]

आगे सूर्याष्टकम की पंक्ति का प्रयोग है –

''आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तुते।।
लोहितं रथामारूढ़ं सर्वलोक पितामहम्।।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।''[111]

इस प्रकार के कई वैदिक स्त्रोतों का उपयोग रामानन्द सागर ने संवाद के दौरान किया है।

संवाद के दौरान वाल्मीकि रामायण से श्लोकों को ग्रहण किया गया है। अनुसूया सीता को पतिव्रत धर्म की मर्यादा का सन्देश इस श्लोक के माध्यम से देती है –

''नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः:।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः।।
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः।।''[112]

[109] वही, पृ. 29, एपिसोड 2
[110] वही, पृ. 31–32, एपिसोड 2
[111] वही, पृ. 40, एपिसोड 3
[112] वही, पृ. 361, एपिसोड 27

इसी तरह मारीच रावण से इन शब्दों में उपदेश देता है –

''सुलभः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।''[113]

लक्ष्मण द्वारा हनुमान से ऋष्यमूक पर्वत का पता पूछने पर हनुमान इस श्लोक के माध्यम से अपनी शंका समाधान करने की कोशिश करते हैं –

''इमां नदीं शुभजलां शोभायन्तौ तरस्विनौं।।
प्रभया पर्वतेन्द्रौं ऽसौं युवयोरवभासितः।
श्री मन्तौ रूपसंपन्नौ वृषभश्रेष्ठविक्रमौ।
एवं मा परिभाषितं कस्माद्वै नाभिभाषितः।''[114]

इस प्रकार रामानन्द सागर अनेक स्थलों पर संस्कृत का प्रयोग कर, भाषायी स्तर पर इसे परम्परा से जोड़ने का प्रयास करते हैं। हालाँकि वाल्मीकि प्रसूत संस्कृत का त्याग तुलसी भी नहीं कर सके, उन्होंने भी मंगलचरण में संस्कृत का प्रयोग किया है। रामानन्द सागर ने सम्भवतः इसी परम्परा से कथा को जोड़ने का प्रयास किया है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि 'रामचरितमानस' और 'धारावाहिक रामायण' की भाषा दो समयावधि की भाषा है। एक मध्यकाल की भाषा है, दूसरी आधुनिककाल की। आम तौर पर अगर दोनों के भाषिक उद्देश्य पर विचार करें, तो दोनों का उद्देश्य रामकथा को सहजता से आम जनता तक पहुँचाना था। जिसमें तुलसीदास ने उस समय की लोकभाषा अवधी का सहारा लिया और रामानन्द सागर ने खड़ी–बोली के लोक–प्रचलित स्वरूप का। 'रामचरितमानस' एक साहित्यिक ग्रंथ है, इसलिए उसकी भाषा परिनिष्ठित एवं साहित्यिक प्रतिमानों से युक्त है किन्तु धारावाहिक रामायण दृश्य माध्यम हेतु लिखा गया संवाद है जिसमें भाषा से अधिक चित्रात्मकता पर जोर दिया गया है। धारावाहिक में भावों की अभिव्यक्ति का एक मात्र माध्यम शब्द नहीं है, इसलिए अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों

---

[113] वही, पृ. 421, एपिसोड 31
[114] वही, पृ. 471, एपिसोड 35

का भी उपयोग किया गया है, जिसमें पात्रों के हाव–भाव, संवाद की अदायगी का तरीका, संगीत का यथास्थान उपयोग आदि शामिल है। भाषा भाव एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'रामचरितमानस' एवं 'धारावाहिक रामायण' दोनों ने ही हर वर्ग पर प्रभाव डाला है।

छठा अध्याय

रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण का उद्देश्य एवं प्रभाव

6.1 रामचरितमानस का उद्देश्य
6.2 रामचरितमानस का प्रभाव
6.3 धारावाहिक रामायण का उद्देश्य
6.4 धारावाहिक रामायण का प्रभाव

छठा अध्याय

रामचरितमानस और धारावाहिक रामायण का उद्देश्य एवं प्रभाव

'रामचरितमानस' एवं धारावाहिक रामायण के तात्त्विक विवेचन के बाद दोनों के उद्देश्य एवं प्रभाव पर बात करना लाज़मी है, क्योंकि दोनों ही विधाओं ने अपने समय में लोकप्रियता के हर मापदण्ड को तोड़ा और समाज पर हर दृष्टि से व्यापक प्रभाव डाला है। चाहे सोलहवीं सदी का भारत हो या बीसवीं सदी का भारत, दोनों ही माध्यमों एवं रचनाओं ने सफलता का प्रतिमान गढ़ दिया। एक ओर जहाँ तुलसीदास ने लेखनी के माध्यम से रामकथा साकार करने की कोशिश की, वहीं इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के दौर में रामानन्द सागर ने उस कल्पित स्वरूप को प्रत्यक्ष कर दिया। जनता में राम की जो काल्पनिक छवि इन महाकाव्यों के माध्यम से स्थापित हुई थी, उसे अभिव्यक्ति के इस नए माध्यम ने दृढ़ता प्रदान की। फलतः भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा।

अब सवाल यह है कि क्या रामानन्द सागर के 'रामायण' से दर्शकों का वही रिश्ता जुड़ा जो उत्तर भारत में 'मानस' से जुड़ा था? क्या रामानन्द सागर का 'रामायण' भी 'मंगल करनि कलिमल हरनि' के भाव से ओत–प्रोत था? क्या धारावाहिक रामायण तुलसी के 'मानस' की भाँति 'सुरसरि' प्रभावित करने में सक्षम था? क्योंकि किसी भी पौराणिक कथा की पुनर्प्रस्तुतीकरण का अपना एक उद्देश्य होता है, जिसके माध्यम से प्रस्तोता उसे उसी मूल रूप में चित्रित करने की कोशिश करता है, जैसा उस पौराणिक कथा में वर्णित है। जाहिर है धारावाहिक के माध्यम से रामानन्द सागर भी यही कामना रखते थे लेकिन माध्यम एवं प्रस्तुति के

तरीकों ने धारावाहिक को अलग स्वरूप प्रदान किया। कथा वही थी, पात्र वही थे किन्तु प्रस्तुति के तरीकों ने उसके उद्देश्य एवं प्रभाव पर व्यापक असर डाला।

6.1 रामचरितमानस का उद्देश्य

रामचरितमानस के प्रारम्भ में तुलसीदास लिखते हैं –

> ''नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
> रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
> स्वान्तः सुखाय तुलसी रधुनाथगाथा
> भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।।''[1]

अर्थात अनेक पुराण, वेद और शास्त्र एवं रामायण (वाल्मीकि एवं अन्य) में वर्णित तथा अन्य स्त्रोतों से भी उपलब्ध रामकथा के आधार पर तुलसीदास ने अपने अन्तःकरण के सुख के लिए अत्यन्त मनोहर भाषा में रामचरितमानस की रचना की।

क्या तुलसीदास की इस उक्ति के आधार पर यह तय किया जा सकता है कि उनके रामचरितमानस का उद्देश्य अपने अन्तःकरण को सुख पहुँचाना है? इसके अतिरिक्त उनकी रामकथा का अन्य कोई उद्देश्य नहीं है? क्योंकि आगे तुलसीदास रामकथा के महत्त्व की ओर इशारा करते हुए अपने स्वान्तः सुखाय के इतर रामकथा को वैश्विक सुख का कारण भी बताते हैं। वे कहते हैं –

> ''मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।''[2]

आगे कहते हैं –

> ''बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि।।
> रामकथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी।।
> रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई।।
> सोई बसुधातल सुधा तरंगिनी। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनी।।''[3]

---

[1] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 2
[2] वही, पृ. 14

बार–बार तुलसीदास जिस कलियुग के शमन का मूल रामकथा को मान रहे हैं, वह कलियुग एक सामाजिक अवधारणा है, जिससे मुक्ति एक मात्र उपाय यह रामकथा है। जाहिर है इस कथा या ग्रन्थ का उद्देश्य तुलसीदास के लिए व्यक्तिगत न होकर वैश्विक है और वे इसके माध्यम से वैश्विक कल्याण की कामना करते हैं।

तुलसीदास जिस कलियुग के शमन के लिए रामकथा की सृष्टि करते हैं, वह विद्वानों के अनुसार उनकी तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति है। सोलहवीं शताब्दी का वह समाज कई तरह की सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के उथल–पुथल से जूझ रहा था। राजनीतिक रूप से भारत पर मुगलों का शासन था। फलतः राजनीतिक शासन व्यवस्था का प्रभाव सामाजिक एवं धार्मिक जीवन पर था। दिल्ली सल्तनत से लेकर मुगलकाल तक जनता जजिया एवं अन्य धार्मिक करों से त्रस्त थी। जिससे जनता कभी प्रलोभन से या फिर बलपूर्वक धर्मपरिवर्तन कर लेती थी। दूसरी ओर हिन्दू धर्म में भी कई तरह के सम्प्रदाय एवं पंथ सक्रिय थे, जो जनता को जीवन के दुःखों एवं कष्टों से मुक्ति का उपाय बता रहे थे। बौद्ध एवं जैन धर्म का प्रभाव भारतीय समाज पर था। शासकीय धर्म एवं बौद्ध–जैन धर्म तथा निर्गुण सन्तों द्वारा प्रतिपादित सम्प्रदायों के बीच एक बात सामान्य थी, वह यह कि इन सब ने एकेश्वरवाद का समर्थन किया और मूर्तिपूजा का विरोध किया। परिणामस्वरूप धर्म सम्बन्धी नए–नए पंथों एवं विचारों से आम जनता प्रभावित होकर अपने–अपने अनुसार धर्माचरण में लिप्त हो गई। तुलसीदास जिस वैदिक एवं सनातन धर्म की कामना करते थे, उसका बिखराव होने लगा। बहुपंथवाद के कारण एक ही धर्म में उत्पन्न विविधता को तुलसीदास अनुचित मानते थे। उपर्युक्त तमाम परिस्थितियों के मध्य तुलसीदास एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहते थे, जिसमें जनता वैदिक परम्परा के अनुरूप धर्म का पालने करे। समाज में श्रुति–सम्मत धर्म का व्यवहार हो। इसके लिए वे समाज में एक नई व्यवस्था के आकांक्षी थे। इसलिए उन्होंने रामराज्य के उदात्त

---

[3] वही, पृ. 34

सामाजिक आदर्शों को प्रतिष्ठित करने के लिए 'रामचरितमानस' जैसे ग्रन्थ की रचना की। जिसमें उन्होंने 'राम' नाम को ही सर्वसुलभ एवं सर्वस्वीकृत बनाया। मानवतावादी सिद्धान्त को आधार बनाकर तुलसीदास ने ऐसे ग्रन्थ की रचना की जिसमें शैव, वैष्णव, योग, संयम, द्वैत, अद्वैत, प्रेमाभक्ति, विश्वबन्धुत्व आदि का समन्वित रूप दिखाई देता है। 'रामचरितमानस' की रचना के मूल में तुलसीदास के कई उद्देश्य निहित हैं जिन पर निम्नलिखित रूप से विचार किया जा सकता है।

(1) रामराज्य की स्थापना : तुलसीदास 'रामचरितमानस' में जिस आदर्श राज्य की कल्पना करते हैं, उसी का नाम 'रामराज्य' है। 'विश्वनाथ त्रिपाठी' लिखते हैं "तुलसी का रामराज्य तुलसी के भाववादी मस्तिष्क की कल्पना है, ऐसी कल्पना जो उनके समसामयिक समाज के दुःख, द्वन्द्व, विषमताओं, त्रिविधताप से मुक्त है – वहाँ इति, भीति, दुखित प्रजा, त्रिविधताप, ग्रहों की मार नहीं है। देश सुखी है वहाँ सुराज है।"[4]

इस कथन के आलोक में यदि देखें तो समाज संघटन के जितने आदर्श कल्पित होते हैं वे सदा ज्यों के त्यों घटित नहीं होते व्यवहार में जितने सिद्धान्त या आदर्श आते हैं, उन्हें अपना रूप बदलना पड़ता है। इस दृष्टि से तुलसीदास के रामराज्य की कल्पना केवल कल्पना नहीं ठहरती। जितने सिद्धान्त तुलसीदास ने प्रस्तुत किए हैं। वे असत की जगह सत् की स्थापना की ओर प्रवृत्त होते हैं। इस रूप से विद्वानों के लिए वह कल्पना हो सकती है लेकिन तुलसीदास के लिए वह एक व्यवहारिक समाज है, जिसके निर्माण हेतु वे कई सामाजिक सिद्धान्तों को गढ़ते हैं।

राम के राजा बनते ही सभी प्रकार के शोक दूर हो गए, राम के राज्य में दैहिक, दैविक, भौतिक, किसी प्रकार का कष्ट नहीं है। प्रजा में परस्पर प्रेम व्याप्त है। प्रजा वेदविदित मार्ग का अनुसरण करती है। धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया, दान) से परिपूर्ण हो रहा है। स्वप्न में भी कोई पापरत नहीं है। सभी

---

[4] विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, पृ. 100

पुरुष और स्त्री रामभक्त है। किसी की अल्पमृत्यु नहीं होती। सभी सुन्दर एवं निरोग काया के स्वामी हैं। न कोई दुखी है न दरिद्र। कोई मूर्ख नहीं है, सभी गुणवान हैं। सभी कृतज्ञ हैं किसी में कपटपूर्ण चतुराई नहीं है। सभी धर्म–परायण एवं पुण्यात्मा हैं। वे वर्णाश्रम का पालन करते हैं। तुलसीदास रामराज्य का परिचय इस रूप में देते हैं –

''दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य सब पण्डित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।''[5]

राम के राज्य में प्रकृति भी मनुष्य के अनुकूल व्यवहार करती है। वनों में वृक्ष सदा फूलते–फलते रहते हैं। हाथी और सिंह बैर भूलकर एक साथ रहते हैं। शीतल मन्द, सुगन्ध वायु बहती है, भ्रमर मकरन्द वहन करते हुए विहार कर रहे हैं। लता और वृक्ष माँगते ही मधु की वर्षा करते हैं, गायें भरपूर दूध देती हैं धरती अन्न से सम्पन्न रहती है, त्रेता भी मानो सतयुग हो गया हो। तुलसीदास लिखते हैं –

''फूलहिं फरहिं सदा तरू कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबहिं परस्पर प्रीति बढ़ाई।।
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा।।
सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गुंजत अलि लै चलि मकरन्दा।।
लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्त्रवहीं।।
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भई कृतजुग कै करनी।।''[6]

---

[5] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 854
[6] वही, पृ. 855–856

यह तुलसी के रामराज्य का सुखद स्वप्न लोक है, जिसे वे व्यावहारिक जीवन में फलित होते देखना चाहते हैं। जाहिर है अकाल और भुखमरी, सामाजिक तथा धार्मिक असमानता से त्रस्त समाज के लिए तुलसी की यह पंक्ति संजीवनी का काम करती। इसलिए भी तुलसीदास रामराज्य के इस सुखद स्वप्न लोक को गढ़कर उन लाखों जनता के भीतर जान डालने का प्रयास करते हैं, जो सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक कष्टों से उबरना चाहती हैं। वे जनता ऐसी ही किसी राज्य की कल्पना करती है, जो त्रितापों से मुक्त और वैभव से युक्त हो।

तुलसीदास रामराज्य के भीतर एक ऐसे राजा की कल्पना करते हैं, जो प्रजा के प्रति वात्सल्य भाव का निर्वहण करे। राजा को अपनी प्रजा से प्रेम हो और प्रजा को भी राजा से प्रेम होना चाहिए। राजा को हमेशा प्रजा सम्मत आचरण करना चाहिए ताकि प्रजा भी राजा के प्रति प्रेमाभिव्यक्त कर सके। तुलसीदास के अनुसार एक राजा में पालकत्व का गुण होना चाहिए। यों तो राजा को सबके लिए समदर्शी होना चाहिए, पर उसके लिए समान वितरण आवश्यक नहीं है। वह मुखिया है इसलिए उसे मुख की भाँति सब कुछ ग्रहण करके भी वितरण अंगों की आवश्यकता एवं उपयोगिता के हिसाब से करना चाहिए। अयोध्याकाण्ड में इसकी विशेषता बताते हुए तुलसी कहते हैं –

> ''मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
> पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक।।''[7]

यहाँ तुलसीदास पालने में विवेक की भी बात करते हैं। मुखिया या राजा को कभी भी भावुकता में निर्णय नहीं करना चाहिए। उसे भावुकता की जगह विवेक से निर्णय लेना चाहिए।

राम सुमंत्र के माध्यम से भरत तक राजधर्म का यह सन्देश भिजवाते हैं –

> ''कहब सँदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ।।

---

[7] वही, पृ. 556

पलेहु प्रजहिं करम मन बानी। सेएहु मातु सकल सम जानी।।''[8]

राम कहते हैं कि भरत के आने पर हमारा सन्देश कहना कि राजा का पद पा जाने पर नीति का त्याग न करे और मन, कर्म, वाणी से प्रजा का पालने करे। यहाँ तुलसीदास राजा में नीति का पालन आवश्यक मानते हैं, जिससे वह प्रजा की ओर उन्मुख हो। इतना ही नहीं भरत राजगद्दी हेतु अपनी अयोग्यता इन शब्दों में स्वीकारते हैं –

''कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरमसील नर नहू।।''[9]

यहाँ तुलसी के अनुसार राजा को नीतिवान के साथ धर्मशील भी होना चाहिए।

इस प्रकार तुलसीदास का रामराज्य तत्कालीन सामाजिक दुरावस्था जिसे उन्होंने कलियुग कहा है, उसके बरक्स एक सुखद स्वप्नलोक है।

(2) वर्णाश्रम की स्थापना : वर्णाश्रम 'रामचरितमानस' का मुख्य उद्देश्य है, जिस पर लोकमंगल, रामराज्य से लेकर सामाजिक पारिवारिक आदर्श स्थापित हैं। तुलसीदास के लिए वर्णाश्रम उनकी समाज व्यवस्था का मूल है, जिसका ह्रास वे सामाजिक पतन का मूल मानते हैं। जिस शास्त्र सम्मत एवं श्रुति परम्परा की स्थापना वे चाहते हैं, उसका मूल वर्णाश्रम है। वर्णाश्रम की अवधारणा एक वैदिक अवधारणा है, जो ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के दसवें मण्डल में वर्णित है। समाज की वर्णाश्रम आधारित परम्परा वैदिक काल से ही रही है। कलान्तर में वर्णाश्रम धर्म ने समाज को दो भागों में विभाजित कर दिया। वर्णाश्रम के अन्तर्गत श्रेष्ठ जातियों द्वारा जातिगत वर्चस्व बनाने की परम्परा प्रारम्भ हुई, फलतः वर्णाश्रम कर्मणा न होकर जन्मना हो गया। परिणामस्वरूप वर्णाश्रम के इस वर्चस्वादी परम्परा से पीड़ित जनता ने वैकल्पिक धर्म की तलाश प्रारम्भ की, जिसकी परम्परा हमें बौद्ध, जैन, नाथ, सिद्ध, आजीवक आदि के रूप में दिखाई देती है। इन धर्मों की वर्णगत उदार प्रवृत्ति ने बहुसंख्यक जनता को अपनी ओर आकर्षित किया। मौर्य वंश के समय बौद्धों एवं जैनों के सामाजिक प्रभाव के कारण सनातन हिन्दू संस्कृति का

---
[8] वही, पृ. 426
[9] वही, पृ. 447

ह्रास होने लगा। इसी के फलस्वरूप 'पुष्यमित्र शुंग' के समय 'मनुस्मृति' जैसे ग्रन्थ इसी टूटते हुए वर्णाश्रम को पुनः स्थापित करने के लिए लिखे गए।

भक्तिकाल में भी इसी वर्णाश्रम के विरोध में कबीर, रैदास आदि निर्गुण सन्तों ने सनातन हिन्दू धर्म के इतर एक वैकल्पिक धर्म साधना की ओर जनता को उन्मुख किया। जिससे जातिगत व्यवस्था बहुत हद तक टूटने लगी। अगर इसे ऐतिहासिक रूप में देखा जाए तो प्राचीनकाल से ही समाज में दो धाराएँ समान्तर रूप से चल रही थी। एक वह जो आजीवक, बौद्ध, जैन, नाथ, सिद्ध आदि से होते हुए कबीर, रैदास और नानक आदि निर्गुण सन्तों तक पहुँचती है। दूसरी धारा शंकर, रामानुज, रामानन्द से होती हुई तुलसीदास तक पहुँचती है। तुलसीदास इसी टूटती हुई जातिगत व्यवस्था से क्षुब्ध थे, और सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से एक धर्म एवं समाज की स्थापना करना चाहते थे। इसलिए वे 'रामराज्य' में वर्णाश्रम की महत्ता का वर्णन करते हैं। 'रामराज्य' में समस्त जनता वर्णाश्रम का पालन करती है और जीवन में सुख प्राप्त करती है।

''वर्णाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।''[10]

रामराज्य की जनता वर्णाश्रम के अनुसार आचरण में प्रवृत है। वह वेद–विदित मार्ग का अनुसरण करती है, और सुख पाती है। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है, न रोग है।

वर्णाश्रम के इसी स्वरूप की स्थापना के लिए 'रामचरितमानस' में वे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करते रहते हैं –

''बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।।''[11]

तुलसीदास को वर्णाश्रम इस हद तक काम्य है कि वे यहाँ तक कहते हैं –

''सापत ताड़त परुष कहंता। ब्रिप पूज्य अस गावहिं संता।।

[10] वही, पृ. 853
[11] वही, पृ. 4

पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना।।''[12]

न सिर्फ तुलसीदास वरन रामराज्य की समस्त जनता भी बिप्र चरण सेवक है –

''सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी।।''[13]

वर्णाश्रम के विपरीत आचरण, वे आदर्श समाज हेतु अनुचित मानते हैं। उनके अनुसार हर वर्ण अपने जाति के अनुसार कर्म का विधान करे। वे टूटती हुई इस जातिगत और कर्मगत व्यवस्था से क्षुब्ध होकर कहते हैं –

''बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर आँखि देखावहिं डाटि।।''[14]

आगे कहते हैं –

''जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।।
नरि मुई गृह सम्पति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी।।
ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं।।[15]

तुलसीदास के अनुसार सामाजिक सुख का एक मात्र साधन वर्णाश्रम है, जिसका पतन सामाजिक पतन है।

(3) समन्वयवाद : तुलसीदास का 'रामचरितमानस' समन्वय का सबसे बड़ा उदाहरण है। समन्वय की इसी चेष्टा की ओर इशारा करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं – ''उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है, वैराग्य और गार्हस्थ्य का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृत का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भाववेग ओर अनासक्त चिन्तन का, ब्राह्मण और चांडाल का, ब्राह्मण और चांडाल का, पण्डित और अपण्डित का समन्वय

[12] वही, पृ. 610
[13] वही, पृ. 855
[14] वही, पृ. 922
[15] वही, पृ. 922–923

'रामचरितमानस' के आदि से अंत दो छोरों पर जाने वाली परा – कोटियों का मिलाने का प्रयत्न है। इस महान समन्वय का आधार उन्होंने 'रामचरितमानस' को चुना है।''[16]

तुलसीदास के द्वारा 'रामचरितमानस' में समन्वय का प्रयास तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का प्रतिफलन है। तत्कालीन भारतीय समाज में कई प्रकार के सम्प्रदाय एवं मत–मतान्तर प्रचलित थे, जिसके विकास में तुलसी एक प्रकार की धार्मिक एवं सामाजिक एक्यता चाहते थे। फलतः उन्होंने 'रामचरितमानस' के रूप में एक व्यापक सामाजिक अवधारणा जनता के सामने प्रस्तुत की। उन्होंने इन सम्प्रदायों एवं मतों का विरोध करने के बजाय इनके समन्वय का प्रयास किया। मोटे तौर पर तुलसीदास के समन्वयवाद को चार क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है।

(i) दार्शनिक क्षेत्र (ii) सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्र

(iii) सामाजिक क्षेत्र (iv) साहित्यिक क्षेत्र

दार्शनिक क्षेत्र में उन्होंने द्वैत एवं अद्वैत के बीच समन्वय स्थापित कर दर्शन को व्यावहारिक बनाने का प्रयत्न किया। 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड में उन्होंने द्वैत–अद्वैत का समन्वय करते हुए कहा है –

''ग्यान अखण्ड एक सीताबर। माया बस्य जीव सचराचर।।
जौं सब कें रह ग्यान एक रस। ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस।।
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी।।
पर बस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्री कंता।।
मुधा भेद जद्यपि कृति माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।।''[17]

---

[16] वही, पृ. 131–132
[17] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, (मझला साइज), पृ. 902–903

द्वैत और अद्वैत धारणा का समन्वय ही तुलसीदास के अवतारवाद का आधार है। अद्वैत भावना का ब्रह्म निर्गुण एवं निराकर है, पर अवतारवाद के साथ द्वैतता अनिवार्य है।

तुलसीदास सगुण और निर्गुण की एक्यता का प्रमाण इस रूप देते हैं –

''अगुनहि सगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।
अगुन अरुप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।
जो गुन रहित सगुन सोई कैसें। जनु हिम उपल बिलग नहिं जैसे।।''[18]

उनके अनुसार सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है। जो ब्रह्म निर्गुण, निराकर, अलख और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेमवश सगुण हो जाता है। आगे वे तर्क देते हैं कि जिस प्रकार जल और बर्फ में कोई तत्त्वरहित भेद नहीं है, उसी तरह सगुण और निर्गुण में सिर्फ स्वरूपगत भेद है। दार्शनिक क्षेत्र में जो समन्वय तुलसीदास ने द्वैत एवं अद्वैत के रूप में किया है, वही सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में ज्ञान एवं भक्ति के समन्वय के रूप में दिखाई देता है। तुलसीदास ज्ञान और भक्ति का समन्वय उस युग के लिए आवश्यक मानते थे। तुलसी द्वारा ज्ञान और भक्ति का समन्वय स्वयं उनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप है, अर्थात भक्ति और ज्ञान का जो स्वरूप उनके समय में प्रचलित था, उसका समन्वय करके भक्ति का स्वरूप गढ़ने की कोशिश की। उन्होंने उत्तरकाण्ड में लिखा है –

''श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक।।''[19]

वे वेदसम्मत एवं वैराग्य तथा ज्ञान से युक्त हरिभक्ति का मार्ग चाहते हैं। तुलसी का भक्तिमार्ग ज्ञानयुक्त भक्ति मार्ग है और जहाँ भी वे भक्ति की स्थापना करते हैं वहाँ वे 'बिरति बिबेक युक्त' भक्ति की बात करते हैं –

''धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।।

[18] वही, पृ. 105
[19] वही, पृ. 923

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई।।''[20]

इस प्रकार तुलसीदास भक्तिहीन ज्ञान को एकांगी मानते हैं। उनके अनुसार भक्ति ज्ञान से युक्त और ज्ञान भी भक्ति से युक्त होना चाहिए। दोनों का समन्वय कर उन्होंने एक अलग भक्तिमार्ग को प्रशस्त किया।

तुलसीदास ने शिव एवं राम को एक दूसरे का आराध्य बताकर शैव एवं वैष्णवों के मध्य समन्वय का कार्य किया। तत्कालीन समाज में शैव एवं वैष्णवों के बढ़ते वैमनस्य को खत्म करना तुलसीदास का उद्देश्य था, फलतः उन्होंने दोनों का समन्वय करने के लिए मानस में जगह–जगह शिव और राम के सम्बन्धों को स्पष्ट करने का काम किया। सेतुबन्ध के समय राम स्वयं कहते हैं –

''सिवद्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।।
संकर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।।''[21]

स्वयं राम शंकर की पूजा करते हैं और शंकर राम के उपासक हैं तुलसीदास ने शंकर की वन्दना करते हुए बालकाण्ड में लिखा है –

''गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंध दिन दानी।।
सेवक स्वामी सखा सिय पी के । हित निरूपधि सब बिधि तुलसी के।।''[22]

शंकर राम के सखा भी हैं, स्वामी भी और सेवक भी। इस प्रकार शिव और राम में कोई विरोध नहीं है। इन तमाम सम्बन्धों एवं व्यावहारिक आचरणों के द्वारा तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में इस तरह की कथा योजना कर शैव एवं वैष्णवों के मध्य समन्वय का कार्य किया।

समाजिक क्षेत्र में भी तुलसीदास की समन्वय भावना दिखाई देती है। इसके अन्तर्गत हम शास्त्र एवं लोक का समन्वय, आदर्श और यथार्थ का समन्वय, सत्य एवं प्रेम का समन्वय आदि चीजों को देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने

[20] वही, पृ. 586
[21] वही, पृ. 709
[22] वही, पृ. 20

भाषा समन्वय का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 'रामचरितमानस' की मूल भाषा अवधी है, इसके अतिरिक्त उन्होंने मंगलाचरण में संस्कृत का प्रयोग किया। भाषायी स्तर पर अवधी, संस्कृत के अलावा अरबी, फारसी, प्राकृत, बंग्ला, गुजराती, मराठी आदि भाषा की शब्दावलियों का भी उपयोग किया। इस भाषा समन्वय के कारण भी 'रामचरितमानस' का व्यापक प्रचार–प्रसार अन्य भाषाओं में भी हुआ।

(4) लोकमंगल : 'रामचरितमानस' की रचना के मूल में तुलसीदास का उद्देश्य लोकमंगल था। जिसके लिए उन्होंने रामकथा को 'मति अनुरूप' प्रस्तुत किया। हालाँकि इस रचना के पीछे तुलसीदास के कई उद्देश्य निहित थे। किन्तु उनके हर उद्देश्य का मूल लोकमंगल ही था। उनकी दृष्टि में वही काव्य श्रेष्ठ है, जिसमें समाज का हित हो –

"कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।"[23]

अर्थात कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गंगा के समान सबका हित करने वाली है। तुलसीदास ने सिर्फ इसका सैद्धान्तिक पक्ष ही प्रस्तुत नहीं किया, वरन उसके व्यावहारिक पक्ष को भी प्रस्तुत किया। तुलसी का 'मानस' उदारता, त्याग, दया आदि का उत्तम उदाहरण है। तुलसी के राम संसार में बढ़ते अधर्मों के बीच धर्म की स्थापना के लिए प्रकट होते हैं। तुलसीदास कहते हैं –

"जब जब होई धरम कै हानि। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा।।"[24]

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में राम के ऐसे आदर्श और दुखहर्ता स्वरूप की परिकल्पना की है, जो त्याग, विराग, मानवता, लोकहित आदि के प्रतिरूप हैं। तुलसी के राम सर्वगुणसम्पन्न, सर्वशक्तिमान एवं शीलवान हैं। वे शील सौन्दर्य एवं मर्यादा के भण्डार हैं। जन–जन के प्रिय हैं। इतना ही नहीं राम के साथ–साथ सीता भी आदर्श पत्नी के रूप में, भरत आदर्श भाई के रूप में, हनुमान आदर्श

---

[23] वही, पृ. 18
[24] वही, पृ. 110

सेवक के रूप में विद्यमान हैं। तुलसीदास ने पात्रों की सृष्टि भी लोकमंगलकारी रूप में की है।

लोकमंगल की स्थापना हेतु तुलसीदास 'मानस' में पारिवारिक एवं सामाजिक आदर्श की परिकल्पना करते हैं तुलसीदास का समाज इसी आदर्श परिवार एवं आदर्श समाज की बुनियाद पर खड़ा है। तुलसी भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप संयुक्त परिवार को अधिक महत्त्व देते हैं। उन्होंने संयुक्त परिवार के आदर्शों को न सिर्फ सिद्धान्तों में बल्कि पात्रों के व्यवहारों में भी दर्शाने का प्रयास किया है। चाहे भाई–भाई के बीच का सम्बन्ध हो, पति–पत्नी का सम्बन्ध हो, पिता–पुत्र का सम्बन्ध हो, माता और पुत्र का सम्बन्ध हो, हर जगह तुलसीदास पारिवारिक आदर्श का परिचय देते हैं। उनके पारिवारिक आदर्श में व्यक्तिगत स्वार्थ का कोई स्थान नहीं है। हर सदस्य त्याग की प्रतिमूर्ति है। चाहे राम के राज्याभिषेक और वनगमन का क्षण हो या भरत द्वारा राजपद ग्रहण न करना हर जगह उनके पात्र त्याग का परिचय देते हैं। तुलसीदास जहाँ कहीं भी पारिवारिक मर्यादा का उल्लंघन देखते हैं, उसकी घोर निन्दा करते हैं चाहे बालि द्वारा सुग्रीव की पत्नी का हरण हो या रावण द्वारा सीता का हरण। तुलसी के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। रामकथा के अन्य पात्र भी मर्यादित आचरण करते हैं। तुलसी हर प्रसंग, हर घटना में इस बात का ख्याल अवश्य रखते हैं कि किसी भी प्रकार मर्यादा का उल्लंघन न हो। उनका मानना है कि मर्यादा के पालन से ही समाज का कल्याण निर्भर है।

इस प्रकार तुलसीदास लोकमंगल हेतु जिस सामाजिक आदर्श की परिकल्पना करते हैं, उसका आधार वर्णाश्रम है। उनकी दृष्टि में वर्ण–व्यवस्था का उल्लघंन अक्षम्य अपराध है। वे वर्णाश्रम एवं वेद–विदित मार्ग के अनुसार समाज निर्माण के आकांक्षी थे। इसी लोकमंगल के लिए उन्होंने 'रामचरितमानस' में विभिन्न सम्प्रदायों एवं मत–मतान्तरों के समन्वय की कोशिश की है। अन्ततः तुलसी के राम 'मंगल भवन अमंगल हारी' है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि तुलसीदास का उद्देश्य 'रामचरितमानस' की रचना के पीछे रामकथा कहना नहीं था, बल्कि श्रुति परम्परा, वैदिक धर्म एवं वर्णाश्रम की स्थापना करना था। भक्ति–आन्दोलन का दौर भारतीय जनमानस के लिए सांस्कृतिक उथल–पुथल का दौर था, जहाँ कई प्रकार की धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएँ प्रचलित थी। वैदिक धर्म के कई विकल्प समाज में मौजूद थे, फलतः समाज कई धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं में विभक्त था। ऐसी परिस्थिति में तुलसीदास ने अपनी धार्मिक मान्यताओं को सांस्कृतिक रूप में प्रस्तुत किया और इसके लिए उन्होंने रामकथा का सहारा लिया। इस रामकथा के माध्यम से उन्होंने धर्म का एक समन्वित स्वरूप समाज के समक्ष रखा। इसके लिए उन्होंने किसी धर्म या सम्प्रदाय का विरोध न कर समन्वय का प्रयास किया। एक वैकल्पिक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को रामकथा के आधार पर प्रस्तुत किया। जो वर्णाश्रम व्यवस्था टूट रही थी, उसे पुनर्स्थापित करना भी उनका उद्देश्य था। हालाँकि वर्णाश्रम के सामाजिक एवं जातिगत असमानता को उन्होंने भक्ति के माध्यम से पाटने का प्रयास किया। भक्ति के आवरण में उन्होंने अपने विचारों का मुक्त रूप में प्रस्तुत किया किन्तु भक्ति का आवरण इतना प्रबल है कि वे विचार भी उसी प्रवाह में बह जाते हैं, जिसे गहराई में समझना पड़ता है।

तुलसीदास 'रामचरितमानस' के माध्यम से जिस सामाजिक, पारिवारिक एवं राजनीतिक सिद्धान्तों की रूपरेखा तैयार करते हैं, उसका मूल तुलसी के अनुसार लोकमंगल है। श्रुति परम्परा से लेकर वर्णाश्रम एवं रामराज्य की स्थापना तक सब इसी लोकमंगल के हेतु हैं। वे इसी उद्देश्य से राम की सांस्कृतिक कथा को धार्मिक रूप में प्रस्तुत करते हैं, ताकि राम के सामाजिक एवं धार्मिक दोनों स्वरूपों का संबल जनता को प्राप्त हो सके। तुलसीदास के उद्देश्य पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि ''गोस्वामी जी एक ऐसे सुसंगठित, सुशिक्षित और सुसंस्कृत समाज के आकांक्षी हैं, जो सूर्य के समान प्रतापी, वत्सल और उदार शासक अथवा नेता से शासित, शास्त्र सम्मत श्रुति परम्परा में अनुशासित मुख के समान विवेकी मुखिया से पालित और उदात्त आदर्शों से संचालित हो। जिसका प्रत्येक नागरिक स्वधर्मनिष्ठ, आस्तिक, कर्तव्यपरायण, परोपकारी, संवेदनशील, शीलवान ऐश्वर्यमान,

सदाचारी, प्रबुद्ध और त्रितापरहित हो। जिसमें व्यक्ति, परिवार, समाज और विश्व की मंगल साधना की प्रवृत्ति हो, जिसमें रीति–नीति और प्रीति से पगी न्यायनिष्ठा प्रत्येक अवांछित स्थिति का प्रतिरोध करने में समर्थ हो, जिसमें लौकिक और आध्यात्मिक मूल्यों के व्यावहारिक समन्वय और सामंजस्य की शक्ति हो, जिसमें सम्प्रदाय निरपेक्ष मानवीय चेतन्य को पहचानने का विवेक हो, जिसमें स्त्री–पुरुष और समाज के प्रत्येक वर्ग के लोग समान सम्मान के अधिकारी हों, जिसमें लौकिक और आध्यात्मिक क्षेत्र के समन्वित विकास की सम्भावना हो।''[25]

6.2 रामचरितमानस का प्रभाव

'रामचरितमानस' भारतीय समाज में दो रूपों में स्थापित है, उसका एक रूप धर्मग्रंथ का है दूसरा काव्यग्रंथ का। ठीक इसी के आधार पर तुलसीदास की भी छवि दो रूपों में विभाजित हुई है। एक धर्मध्वजवाहक के रूप में दूसरा महाकवि के रूप में। कहने का अर्थ यह कि तुलसीदास और उनका 'रामचरितमानस' दोनों ही कसौटी पर खरे उतरते हैं। 'रामचरितमानस' के इन दोनों रूपों ने भारतीय जनमानस को गहरे स्तर तक प्रभावित किया है। 'रामचरितमानस' के प्रभाव का उल्लेख करते हुए 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' कहते हैं – ''यह बात निर्विवाद है कि आयावर्त्त के अधिकांश लोगों ने रामायण – निर्दिष्ट मार्ग को ही अपना मार्ग मान लिया। भारत का बहुत बड़ा भाग रामायण को अपना धर्मग्रंथ समझने लगा। रामायण की चौपाइयाँ वेद–वाक्य हो गईं। आज निरे मूर्ख भी, एक नहीं, दो नहीं, अनेकानेक चौपाइयों की आवृत्ति कर जाते हैं।''[26] इस कथन से स्पष्ट है कि 'रामचरितमानस' का प्रभाव हर वर्ग पर समान रूप से पड़ा। चाहे धर्मशील जनता हो, विद्वत समाज हो या फिर अशिक्षित समाज, हर वर्ग को इस महाकाव्य ने अवलम्ब प्रदान किया।

'रामचरितमानस' के सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव को देखकर विदेशी विद्वान भी इस ग्रंथ की ओर आकर्षित हुए और अध्ययन मनन किया साथ ही भारतीय जनमानस पर इसके प्रभाव का भी वर्णन किया। 'विल्सन' के मतानुसार

[25] रामजी तिवारी, गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 69–70
[26] तुलसीदास एवं पुनर्मूल्यांकन, सपां. अजय तिवारी, पृ. 292

''तुलसी की रचनाओं का हिन्दू जनता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव संस्कृत के विपुल साहित्य की अपेक्षा कहीं अधिक था।''[27]

ग्रियर्सन ने 'मानस' की महत्ता एवं लोकप्रियता की ओर इशारा करते हुए कहा ''भागलपुर से पंजाब और हिमालय से नर्मदा तट के विस्तृत क्षेत्र में, ग्रंथ का सभी वर्ग के लोगों में समान रूप से समादर पाना निश्चय ही ध्यान देने योग्य है। पिछले तीन सौ वर्षों से हिन्दू समाज के जीवन–आचरण और कथन में यह घुलमिल गया है। अपने काव्यगत सौन्दर्य के कारण यह उनका प्रिय एवं प्रशंसित ग्रंथ ही नहीं, वरन उनके द्वारा पूजनीय धर्म–ग्रंथ बन गया है। यह 10 करोड़ जनता का धर्म–ग्रंथ है। अंग्रेज पादरियों द्वारा 'बाइबिल' जितनी भगवत्प्रेरित मानी जाती है, उतनी ही भगवत्प्रेरित तुलसीदास रचित रामायण है।''[28]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि तुलसी के 'मानस' की परिव्याप्ति हर वर्ग तक थी और इसने तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति के अनुसार जनमानस को हर तरह से तुष्टि प्रदान की।

'रामचरितमानस' के सामाजिक प्रभाव एवं लोकप्रियता का एक कारण उसकी भाषा संरचना भी है। हालाँकि तुलसीदास से पूर्व संस्कृत में वाल्मीकि प्रसूत रामकथा विद्यमान थी परन्तु आम जनता उससे परिचित नहीं थी। कम्ब, कृतिवास जैसे रामायण क्षेत्रीय भाषाओं में भी लिखे जा चुके थे, किन्तु हिन्दी प्रदेश में खासकर उत्तर भारत में आम जन की भाषा में रामकथा की रचना नहीं हुई थी। फलतः सोलहवीं शताब्दी में तुलसीदास ने रामायण के लिए अवधी भाषा का चयन किया, जिससे रामकथा की व्याप्ति आम घरों तक हो और तुलसीदास को इसमें अभूतपूर्व सफलता भी मिली। भाषिक और रचना प्रक्रिया की सरसता ने उसे आम जनता का कंठहार बना दिय। 'रामचरितमानस' के माध्यम से रामकथा की प्रस्तुति ने भारतीय समाज पर सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टि से व्यापक प्रभाव डाला, जिस पर निम्नलिखित रूप से विचार किया जा सकता है।

[27] वही, पृ. 249
[28] वही, पृ. 255

(1) सामाजिक प्रभाव : 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने आदर्श समाज एवं परिवार की जो संकल्पना की है, उसका व्यापक प्रभाव भारतीय जनमानस पर पड़ा। उसका सबसे प्रमुख कारण यह था कि उन्होंने कथा को भारतीय सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के अनुरूप ढाल दिया है। उनकी कथा, उनके पात्र एवं पात्रों के चरित्र ने आदर्श का प्रतिमान गढ़ा है। 'मानस' में जिस नायक की संकल्पना की गई है वे मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। हमें इस बात का भी स्मरण रखना चाहिए कि तुलसीदास से पूर्व भी राम का चरित्र भारतीय समाज में विद्यमान था, परन्तु जनमानस में वाल्मीकि के राम को उतनी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई, जितनी मर्यादा पुरुषोत्तम राम को।

जैसा कि कहा जा चुका है तुलसीदास के राम सर्वगुण सम्पन्न, सर्वशक्तिमान एवं शीलवान हैं, उनमें त्याग, विराग, मानवता, लोकहित जैसे सद्गुण भरे पड़े हैं। इसलिए वे जन–जन के प्रिय हैं। इस चरित्र की लोकप्रियता एवं उसके प्रभाव के भी कई कारण हैं जिसे इन उदाहणों द्वारा समझा जा सकता है। राज्याभिषेक के प्रस्ताव पर राम सोचते हैं –

> ''जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई।।
> करनबेध उपबीत बिआहा। संग–संग सब भए उछाहा।।
> बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।।''[29]

राम का यह सोचना कि हम सब भाई एक ही साथ जन्में, खाना, सोना, लड़कपन, खेलकूद, कनछेदन, जनेऊ, विवाह सब उत्सव एक साथ हुए, परन्तु राज्याभिषेक मेरा ही क्यूँ। भाई–भाई के प्रति यह प्रेम और त्याग का प्रभाव जनता पर पड़ना स्वाभाविक था। इतना ही नहीं कैकेयी द्वारा राम का वनवास माँगे जाने पर भी राम कैकेयी से कहते हैं –

> ''सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जे पितु मातु बचन अनुरागी।।''[30]

राम के भातृप्रेम की यह उदारता सहज की प्रभावित करती है –

---
[29] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 315
[30] वही, पृ. 339

"भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सन्मुख आजू।।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।।"[31]

एक माँ जो पुत्र के लिए वनवास की कामना करती है, दूसरी माँ उसे धर्म की रक्षा हेतु बिना स्वार्थ के उसे वन जाने को प्रेरित करती है –

"जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौं कानन सत अवध समाना।।"[32]

पारिवारिक प्रेम और व्यवहार के नए उत्कृष्ट उदाहरणों ने भारतीय जनमानस को गहरे स्तर तक प्रभावित किया।

समाज एवं परिवार के हर एक नाजुक सम्बन्धों को तुलसीदास ने अपने पात्रों एवं विचारों से दृढ़ करने की कोशिश की; जिसका व्यापक प्रभाव पड़ा, जैसे भाई–भाई के बीच का सम्बन्ध, पति–पत्नी के बीच का सम्बन्ध आदि। 'मानस' में वर्णित पारिवारिक सम्बन्धों में भातृ–प्रेम को अधिक महत्त्व दिया गया है चूँकि यह अन्य सम्बन्धों की अपेक्षा अधिक नाजुक होता है। इसलिए तुलसीदास राम और भरत तथा राम एवं लक्ष्मण के माध्यम से समाज को भातृ–प्रेम की मिसाल पेश करते हैं। राम और भरत का प्रेम पारिवारिक सम्बन्धों के माधुर्य का जीता जागता उदाहरण है। अयोध्या लौटने पर जब भरत की अपने राजपद और राम के वनवास का पता चलता है तो वे कैकेयी की भर्त्सना इन शब्दों में करते हैं –

"भे अति अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही।।
जो हसि सो हरि मुहँ मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई।।"[33]

यहाँ तुलसीदास माता–पुत्र के सम्बन्ध से ऊपर भाई–भाई के प्रेम को स्थान देते हैं। इतना ही नहीं लक्ष्मण को शक्तिबाण लगना, राम के जीवन की सबसे बड़ी विपत्ति थी –

"जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।।

---

[31] वही, पृ. 340
[32] वही, पृ. 351
[33] वही, पृ. 434

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।
अस बचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।''[34]

भातृ–प्रेम के इन उदाहरणों ने न सिर्फ भारतीय जनमानस को प्रभावित किया वरन् सामान्य जनता भी इन उदाहरणों का उपयोग आदर्श के प्रदर्शन के लिए करने लगीं। समाज में भातृ–प्रेम को इन उदाहरणों द्वारा स्थापित किया जाने लगा।

पति–पत्नी सम्बन्धों की व्याख्या तुलसीदास सीता–अनुसूया संवाद के माध्यम से करते हैं –

''बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।।
ऐसेहु पति कर किएँ अपनाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।।
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।।
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं।।
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।।
मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें।।
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई।।
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।।''[35]

पति–पत्नी के बीच के इन सम्बन्धों को व्याख्यायित करने में तुलसीदास के विचारों की अपनी सीमा हो सकती है, किन्तु इस तरह के विचार ने समाज में पति–पत्नी के बीच के सम्बन्धों को सुदृढ़ करने का काम किया।

सामाजिक जीवन में मित्रता को उन्होंने महत्त्वपूर्ण माना है और मित्रता के लिए जिन सूक्तियों का प्रयोग किया है, उसका उपयोग आम–जनमानस मिसाल हेतु आज भी करती है। मित्रता के कर्तव्यबोध की बात राम, सुग्रीव से इन शब्दों में कहते हैं –

''जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।।

---

[34] वही, पृ. 759–760
[35] वही, पृ. 573

निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना।।

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रकटै अवगुनन्हि दुरावा।।

देत लेत मन संक न धरहि। बल अनुमान सदा हित करई।।

बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह सन्त मित्र गुन एहा।।''[36]

केवट, निषाद और शबरी प्रसंग ने भी सामाजिक रूप से जनजीवन को प्रभावित किया। जहाँ एक ओर राम निषाद राज के आतिथ्य को स्वीकार कर उसे भरत के समान भाई का दर्जा देते हैं, वही शबरी के जूठे बेर खाकर वर्णाश्रम के समन्वय का प्रयास करते हैं। जब शबरी राम से कहती है –

''केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।''[37]

राम इसका प्रत्युत्तर इस रूप में देते हैं –

''कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता।।''[38]

यहाँ तुलसी भक्ति के माध्यम से जातिगत समन्वय की बात करते हैं, जिसका प्रभाव भी सामाजिक रूप से भारतीय जनजीवन पर पड़ा।

इस प्रकार 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने जिस रूप से व्यक्ति, परिवार एवं समाज का व्यावहारिक विवेचन प्रस्तुत किया, उसे जनता ने आत्मसात किया। उनके पात्रों का एक–एक विचार, व्यवहार आमजीवन के व्यवहार से जुड़ गया। उनकी सूक्तियाँ सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन की विपत्तियों का अवलम्ब बन गया। आज भी इस तरह की सूक्तियों का उपयोग समाज में धड़ल्ले से हो रहा है। 'होइहि सोइ जो राम रचि राखा', 'करम प्रधान बिस्व करि राखा'', 'प्रभुता पाइ जाहिं मद नाहीं', आदि पंक्तियाँ हर किसी की जबान पर है। यह 'रामचरितमानस' के सामाजिक प्रभाव का ही प्रतिफलन है।

(2) सांस्कृतिक प्रभाव : 'रामचरितमानस' ने भारतीय जनमानस को विशेष कर उत्तर भारत एवं हिन्दू संस्कृति को सांस्कृतिक रूप से प्रभावित किया। इसका

---

[36] वही, पृ. 631
[37] वही, पृ.
[38] वही, पृ.

सबसे प्रमुख कारण था 'रामचरितमानस' का लोक–संस्कृति से जुड़ा होना। तुलसीदास ने रामकथा की अभिव्यक्ति के लिए लोक–संस्कृति का उपयोग अवश्य किया किन्तु उस कथा ने पुनः लोक–संस्कृति को व्यापक रूप से प्रभावित किया। चाहे शिव–विवाह का प्रसंग हो या फिर राम–विवाह का प्रसंग हो, इन प्रसंगों में लोक–संस्कृति की झाँकी व्यापक रूप में दिखाई देती है। विभिन्न प्रकार के संस्कारों, उत्सवों एवं व्यवहारों का वर्णन तुलसीदास ने विशद रूप से किया है। जिसे कुछ उदाहरणों द्वारा समझा जा सकता है। शिव–विवाह की पद्धति का सांस्कृतिक वर्णन इस रूप में किया गया है –

> ''लै अगवान बरातहिं आए। दिए सबहि जनवास सुहाए।।
> मैनाँ सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारीं।।
> कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी।।''[39]

'रामचरितमानस' में वर्णित इस लोक–व्यवहारों ने संस्कृति को सुदृढ़ करने का काम किया। तुलसीदास ने ईश्वरीय विवाह पद्धति को लोक–पद्धति से जोड़कर जनमानस को प्रभावित करने का काम किया। जनता की सांस्कृतिक आस्था इससे और पुष्ट हुई। विवाह की पद्धति का वर्णन करते हुए तुलसीदास लिखते हैं –

> ''जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई।।
> गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपीं जानी भवानी।।''[40]

'मानस' में वर्णित इस प्रकार के विचार एवं व्यवहार ने लोक–संस्कृति को सुदृढ़ करने का काम किया। इसी तरह रामजन्म एवं विवाह के समय की लोकरीति का भी तुलसीदास ने विशद वर्णन किया है। विवाह प्रसंग में मिथिला की संस्कृति का सूक्ष्म वर्णन यहाँ द्रष्टव्य है –

> ''दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा।।''[41]

---

[39] वही, पृ. 88
[40] वही, पृ. 93

उपर्युक्त उदाहरणों में वर्णित लोक–संस्कृति के सूक्ष्म वर्णन एवं कथा की सांस्कृतिक प्रस्तुति तथा प्रस्तुति की उदात्तता ने भारतीय जनमानस पर सांस्कृतिक रूप से प्रभाव डाला।

'रामचरितमानस' के भारतीय संस्कृति पर प्रत्यक्ष प्रभाव के कई उदाहरण हैं, जैसे रामलीला का मंचन, विजयादशमी का त्यौहार, दीपावली आदि। हालाँकि तुलसीदास के पूर्व भी रामलीला की परम्परा मौजूद थी, जो वाल्मीकि रामायण पर आद्धृत थी, किन्तु 'रामचरितमानस' के प्रादुर्भाव ने हिन्दी प्रदेश में वाल्मीकि की जगह तुलसीदास को रामलीला के क्षेत्र में स्थापित कर दिया। 'इन्दुजा अवस्थी' लिखती हैं – ''चित्रकूट की रामलीला नाम से आज जो रामलीला वाराणसी में प्रस्तुत की जाती है, वह पहले वाल्मीकि रामायण के आधार पर खेली जाती थी, बाद में तुलसी के शिष्य मेघाभगत ने उसे मानस से सम्बद्ध किया।''[42] जनश्रुतियों के आधार पर हिन्दी प्रदेश में रामलीला पर सर्वाधिक प्रभाव तुलसीदास के रामचरितमानस का था। 'डॉ. श्यामसुन्दर दास' का कहना है कि ''यद्यपि श्री कृष्णचन्द्र की रासलीला पहले प्रचलित हो चुकी थी और भजन गाकर रामलीला करने की बात भी प्रसिद्ध है, परन्तु जिस चाल पर अब रामलीला होती है, उसका मूल तुलसी कृत रामायण ही है।''[43]

कहने का अर्थ यह कि रामलीला हेतु कथ्य के रूप में 'रामचरितमानस' की उपयोगिता बढ़ी। इसके कई कारण थे। एक इसकी लोकभाषा, दूसरा नाटकीय योजना, तीसरा गेयता, चौथा पात्रों में नैतिकता एवं आदर्श की योजना आदि ने इसे सांस्कृतिक ग्रन्थ के रूप में स्थापित कर दिया।

रामलीला का सांस्कृतिक प्रभाव आम जनमानस पर गहरे रूपों में था। जिस गाँव या शहर में रामलीला की प्रस्तुति होती थी, वहाँ उतने दिनों के लिए सारे अनैतिक काम बंद हो जाते थे। जनता में नैतिकता एवं आदर्श के प्रदर्शन की होड़ मची रहती, हर कोई अपने व्यवहार में राम, लक्ष्मण, भरत आदि बनना चाहता था।

---

[41] वही, पृ. 255
[42] इन्दुजा अवस्थी, रामलीला परम्परा और शैलियाँ, पृ. 51
[43] तुलसीदास एक पुनर्मूल्यांकन, संपा. अजय तिवारी, पृ. 260

रामलीला के इसी सांस्कृतिक प्रभाव की ओर इशारा करते हुए 'अज्ञेय' कहते हैं – ''पहले रामलीला में पूरे समाज का सक्रिय योग होता था – रामलीला खेली नहीं जी जाती थी। किशोरों का राम–लक्ष्मण चुने जाना गौरव की बात थी : चुने जाने से लेकर रावण–दहन तक वे मानो सचमुच अवतार ही होते थे, देवत्व से आविष्ट माने जाते थे, स्वयं भी उन्हें इस गौरव का बोध होता था, पूरा समाज उन्हें राम–लक्ष्मण मानता था और उनके पैर छूकर माने सचमुच राम–लक्ष्मण का संस्पर्श पा जाता था।''[44] निरक्षर जनता जो इस काव्यग्रंथ को नहीं पढ़ सकती थी, उन तक ये कथाएँ एवं विचार रामलीला के माध्यम से पहुँचे। 'रामचरितमानस' की इस मंचीय प्रस्तुति ने आम जनमानस को सांस्कृतिक आधार प्रदान किया।

उत्तर भारत में विजयादशमी के अवसर पर रावण–दहन भी इसी महाकाव्य का सांस्कृतिक प्रभाव है। विजयादशमी के दिन धूम–धाम से उत्सव की भाँति रावण–कुम्भकर्ण एवं मेघनाद का पुतला जलाना इसी रामकथा की देन है। राम द्वारा रावण पर विजय प्राप्त करने की घटना से प्रेरित होकर जनता प्रतीकात्मक रूप से इस त्यौहार को मनाती है। दीपावली का त्यौहार राम के अयोध्या आगमन की खुशी में मनाया जाता है। कहा जाता है कि उसी दिन राम वनवास पूर्ण कर अयोध्या लौटे थे, जिस खुशी में अयोध्यावासियों ने घर–धर दीप जलाया था। यह भी उत्सव उसी रामकथा का सांस्कृतिक प्रतिफलन है।

'रामचरितमानस' का सांस्कृतिक प्रभाव सामाजिक व्यवहारों पर भी देखा जा सकता है। आज भी भारतीय जनमानस में खासकर उत्तर भारत में, नामकरण की पद्धति, मानस में वर्णित सद्पात्रों के आधार पर रही है। विभीषण कितना भी बड़ा राम का भक्त एवं सदाचरण वाला पात्र हो किन्तु कोई भी अपने पुत्र का नाम विभीषण नहीं रखता क्योंकि विभीषण भ्रातृदोह का पर्याय है। आज भी सामाजिक व्यवहार में किसी स्त्री की कुटिलता देख लोग उसे 'मंथरा' की संज्ञा से विभूषित कर देते हैं भाई से द्रोह करने वाले को 'विभीषण' की उपाधि मिल जाती है। अतिशय भातृ–प्रेम रखने वाले को 'भरत' की संज्ञा मिल जाती है। अतिशय सेवा करने वाले को 'हनुमान' की उपाधि प्राप्त हो जाती है।

---

[44] वही, पृ

इस प्रकार हम देखते हैं कि न सिर्फ उत्सवों, त्यौहारों बल्कि सामाजिक एवं पारिवारिक आचरणों में भी 'रामचरितमानस' की सांस्कृतिक भूमिका अक्षुण्ण है।

(3) धार्मिक प्रभाव : 'रामचरितमानस' की छवि भारतीय समाज में महाकाव्य से अधिक धर्मग्रंथ की है। फलतः भारतीय समाज पर इसका धार्मिक प्रभाव अन्य प्रभावों से ज्यादा है। तुलसीदास ने सोलहवीं शताब्दी में 'रामचरितमानस' की रचना कर 'राम' को सनातन प्रज्ञा पुरुष से 'ईश्वरत्व' प्रदान कर दिया। राम के ईश्वरीय रूप की प्रतिष्ठा में 'मानस' की सर्वाधिक भूमिका है। तुलसी का समय 'भक्ति आन्दोलन' का समय था। रामानन्द ने दक्षिण भारत से भक्ति आन्दोलन को उत्तर भारत में फैला दिया, जिसमें उनकी शिष्य परम्परा का महत्त्वपूर्ण योगदान है, जिनमें कबीर और तुलसी प्रमुख हैं, कबीर निर्गुण राम के उपासक थे और तुलसी सगुण राम के। राम के निर्गुण रूप को तुलसीदास भी स्वीकार करते हैं, लेकिन सगुण रूप प्रिय है। उन दिनों हिन्दू धर्म को तुलसी के 'मानस' ने रामभक्ति से परिप्लावित कर दिया। 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रंथ नहीं था जो रामभक्ति का इतने व्यापक रूप में प्रतिपादन कर सके। फलतः 'रामचरितमानस' सहज रूप से हिन्दुओं का धर्म–ग्रंथ बन गया, और राम देवता के रूप में स्थापित हो गए।

'रामचरितमानस' के धार्मिक प्रभाव का सबसे प्रमुख कारण 'राम का चरित्र' था, जो धर्म के अभ्युदय एवं पाप के पराभव से संयोजित है। तुलसीदास रामजन्म के उद्देश्य की स्पष्ट घोषणा करते हैं –

> ''असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
> जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु।।''[45]

जाहिर है धर्म में विभूतियों का अवतार इन्हीं दो उद्देश्यों की सिद्धि के लिए होता है और राम का जीवन भी इन्हीं दो उद्देश्यों की पूर्ति करता है। धर्म की साधना में राम का जीवन कई तरह के दुःखों का सहन करता है, बाधाओं का सामना करता है, इन्हीं सब परिस्थितियों में वह पाप के पराजय के लिए प्रवृत्त होता है। फलतः

[45] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), पृ. 110

यह जीवन एवं चरित्र लोगों को आकर्षित करता है। राम जब रावण, कुम्भकर्ण, खर–दूषण जैसे अतातायियों का वध करते हैं, निशिचरों के वध के लिए भुज उठाकर प्रण करते हैं, पापियों के पाचाचारों से दबी हुई धरती एवं मानवता का उद्धार करते हैं, तब पराधीनता के पाशों से बँधी, सांसारिक कष्टों से पीड़ित जनता के हृदय को धार्मिक सम्बल मिलता है। इस तरह राम का चरित्र जहाँ दुखहर्ता के रूप में स्थापित हो गया वहीं 'मानस' की निम्नलिखित पंक्तियाँ हर दुख का समाधान प्रस्तुत करने लगी –

> ''नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला।।
> राम राम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता।।
> भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।''[46]

इस प्रकार 'रामचरितमानस' के सामान्य अध्येता पर धर्म के इसी अभ्युदय और पाप के इसी पराजय का प्रभाव पड़ता है। जिसका प्रकटीकरण आज भी जनसमुदाय रावण को जलाकर करता है।

'रामचरितमानस' का सबसे बड़ा प्रभाव 'राम' के ईश्वरीय रूप की स्थापना है। रामकथा तुलसीदास के पूर्व भी भारतीय समाज में मौजूद थी, वाल्मीकि के राम को वह ईश्वरीय आस्था प्राप्त नहीं हुई, जो 'रामचरितमानस' के राम को हुई। सोलहवीं शताब्दी का भक्ति–आन्दोलन हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान का दौर था। तुलसीदास भी रामकथा के माध्यम से धर्म एवं उपासना की पद्धति विकसित कर रहे थे, जिससे उनकी रामकथा में कथा से अधिक भक्ति की प्रमुखता है। भक्ति का माधुर्य स्वरूप जनमानस में इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर गया जिसके परिणामस्वरूप 'मानस' धर्मग्रंथ और राम विष्णु के अवतार के रूप में स्थापित हो गए। जगह–जगह मन्दिर बनाए जाने लगे। वैदिक कर्मकाण्ड के अनुसार पूजा–आराधना की पद्धति विकसित होने लगी। हनुमान सर्वकालिक एवं सर्वसुलभ लोक–रक्षक देवता बन गए। अयोध्या हिन्दू–धर्म का प्रसिद्ध तीर्थ–स्थान बन गया।

---

[46] वही, पृ. 30–31

रामकथा के जुड़े तमाम स्थल, तीर्थ–स्थल के रूप में विकसित हुए उत्तर भारत में कृष्ण की जगह राम मुख्य देवता के रूप में स्थापित हो गए।

'रामचरितमानस' के धार्मिक प्रभाव से रामभक्ति के और भी उपादान विकसित हुए, जिनमें कथावाचकों की व्यास परम्परा का भी योगदान है। इस कथावाचन की परम्परा ने रामभक्ति को और भी दृढ़ करने का काम किया। कथावाचन की पद्धति का प्रारम्भ भी तुलसीदास ने ही किया था, हालाँकि 'रामचरितमानस' की रचना भी तुलसीदास ने कथावाचन की पद्धति में ही की है। कहते हैं कि ''अयोध्या के 'तुलसी चौरा' पर गोस्वामी जी ने स्वयं व्यास का स्थान ग्रहण किया और संडीले के स्वामी नन्दलाल तथा मिथिला के स्वामी रूपारूण जी को तुलसीदास के मुख से 'मानस' का पाठ सुनने का प्रथम सौभाग्य प्राप्त हुआ था।''[47] इस तरह कथावाचकों की एक लम्बी परम्परा प्रारम्भ हुई, जिनका आज अंकन करना कठिन है। इन कथावाचकों ने रामचरित की नैतिकता एवं आदर्श का प्रचार–प्रसार हिन्दू सनातन संस्कृति के आलोक में किया, फलतः जनता पर इसका प्रभाव सांस्कृतिक से अधिक धार्मिक रूप में पड़ा। जिससे जनता नैतिक कम धर्मभीरू अधिक हो गई। कथावाचन एक व्यवसाय के रूप में समाज में फैला और इसी धर्मभीरू जनता ने इसे धार्मिक एवं नैतिक समर्थन प्रदान किया।

(4) राजनीतिक प्रभाव : तुलसीदास ने रामराज्य जैसी जिस राजतंत्रीय व्यवस्था की कल्पना की, उसका प्रभाव भारतीय राजनीतिक जीवन पर भी पड़ा। जिस आदर्श समाज व्यवस्था की कल्पना तुलसी करते हैं, वह चाहे लोकतंत्र हो या राजतंत्र हर समाज के लिए उपयुक्त है। राजतंत्र में राजा की विशेषता बताते हुए जब तुलसीदास कहते हैं –

''मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक।।''[48]

तुलसीदास प्रतिपादित यह सिद्धान्त हर राजनीतिक व्यवस्था के लिए उतना ही उपयुक्त है, जितना राजतंत्र के लिए। जब वे कहते हैं –

---

[47] डॉ. राजपति दीक्षित, तुलसीदास और उनका युग, पृ. 401
[48] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, (मझला साइज), पृ. 556

''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।''[49]

यह कामना किसी भी राजनीतिक व्यवस्था से सम्बद्ध हो सकती है। हालाँकि तुलसीदास ने लोकतंत्रीय व्यवस्था की कामना कर इन सिद्धान्तों की रचना नहीं की, परन्तु उनके विचारों का भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था पर प्रभाव देखा जा सकता है।

'रामचरितमानस' का प्रभाव राजनीतिक दृष्टि से भारतीय समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों रूपों में पड़ा। आजादी के दिनों में जहाँ महात्मा गाँधी का कल्पित भारत तुलसी के रामराज्य से ही प्रेरित था, वहीं उत्तर भारत के आन्दोलनों में भी इस ग्रंथ ने प्रेरणा का काम किया। स्वतंत्रता पश्चात राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के दौर में तुलसीदास की इस रामकथा ने भारतीय राजनीति में धुरी का काम किया। राजनीतिक दलों द्वारा इसका उपयोग जनता की धार्मिक भावनाओं को सहलाकर वोट हासिल करने हेतु किया गया, जिसे आज भी देखा जा सकता है। राम की छवि हिन्दू राष्ट्र निर्माण के प्रतीक के रूप में उभरी। राम देवता से अधिक राजनीतिक हथकंडे के रूप में इस्तेमाल किए जाने लगे। अयोध्या तीर्थस्थान से अधिक राजनीतिक अखाड़े का केन्द्र बन गया। 1980 के दशक में अयोध्या में राम मंदिर निर्माण के प्रचार अभियान ने भारतीय जनमानस को राजनीतिक रूप से प्रभावित किया। 'रामचन्द्र गुहा' लिखते हैं – ''अयोध्या में एक मस्जिद की जगह एक मंदिर निर्माण के प्रचार अभियान ने लोगों को व्यापक रूप से आन्दोलित कर दिया। देशभर में बहुत सारे हिन्दू जो अलग–अलग जातियों से ताल्लुक रखते थे उन्होंने इसे 'अपने राष्ट्रीय जीवन में एक सम्मान के बिन्दु' के तौर पर देखना शुरू कर दिया। उन लोगों की राय में अयोध्या में बाबरी मस्जिद वाकई उनके 'अतीत की गुलामी' और अपमान की प्रतीक थी।' उस जगह पर एक भव्य राम मन्दिर का निर्माण करना हजारों हिन्दू युवाओं के जीवन में समर्पण और पूजा का एकमात्र उद्देश्य बन गया।''[50]

---

[49] वही, पृ. 363

[50] रामचन्द्र गुहा, भारत नेहरू के बाद, पृ. 304–305

जाहिर है राम मन्दिर के नाम पर समस्त देश में हिन्दुओं का एक जुट हो जाना और उसे अपनी धार्मिक अस्मिता से जोड़ना, इसी रामभक्ति के प्रचार–प्रसार का प्रभाव था, जिसे तुलसीदास ने स्थापित किया था। 'भारतीय जनता पार्टी' के उदय में इस विचार की महती भूमिका थी। उसकी राजनीतिक सफलता के पीछे 'रामचरितमानस' के धार्मिक प्रभाव का ही राजनीतिक उपयोग किया जाना था। 'रामचन्द्र गुहा' लिखते हैं – ''जनसंघ की उत्तराधिकारी बीजेपी को सन 84 में हुए आठवें आमचुनाव में महज दो सीटों पर जीत हासिल हुई थी। पाँच साल बाद यह आँकड़ा 86 सीटों का हो गया। इसकी एक प्रमुख वजह अयोध्या आन्दोलन में शामिल होना था।''[51] अगर 'रामचन्द्र गुहा' के विचार को ध्यान में रखकर देखें तो वर्तमान समय में भी राम मन्दिर निर्माण का मुद्दा भारतीय राजनीति का सबसे ज्वलन्त मुद्दा है। न सिर्फ राम मन्दिर वरन् 'रामायण संग्रहालय' एवं रामोपासना से जुड़े तमाम तीर्थों को जोड़कर 'रामायण सर्किट' के निर्माण का प्रस्ताव भी इसी ग्रंथ एवं रामभक्ति के अतिशय प्रभाव का उदाहरण है।

इस प्रकार 'रामचरितमानस' का प्रभाव भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों रूपों में पड़ा, और दोनों ही रूपों का आधार जनता की धर्मभावना एवं उसकी ग्रंथ के प्रति आस्था थी, जिसने धर्म के व्यापक स्वरूप को जनता के हृदय में स्थापित किया था।

6.3 धारावाहिक रामायण का उद्देश्य

'रामायण' धारावाहिक का स्मरण आते ही उसके उद्देश्य से अधिक प्रभाव की ओर हमारा ध्यान चला जाता है। इस धारावाहिक की सफलता ने जो प्रभाव भारतीय जनमानस पर छोड़ा है, उससे जनता आज भी आह्लादित है। जनता का यह आह्लाद धारावाहिक निर्माण या रचना प्रक्रिया को लेकर शायद कम हो, लेकिन उसके भक्ति–भाव ने आज भी दर्शकों को आक्रान्त कर रखा है। जनता बस उस

---

[51] वही, पृ. 305

भगवत स्वरूप की झाँकी याद कर तृप्त हो जाती है, आगे उसे कुछ सोचने की जरूरत नहीं वहाँ भाावुकता इतनी प्रबल है कि तार्किकता का कोई स्थान नहीं है।

सवाल यह उठता है कि रामानन्द सागर का इस धारावाहिक निर्माण के पीछे क्या उद्देश्य था? इस धारावाहिक के किसी एक उद्देश्य को स्थापित करना मुश्किल प्रतीत होता है क्योंकि यहाँ भी 'नाना भाँति राम अवतारा रामायण सत कोटि अपारा' वाली हालत है। हर आलोचक अपने–अपने अनुसार इसका उद्देश्य निर्धारित करते हैं। इसके राष्ट्रव्यापी सामाजिक एवं राजनीतिक प्रभाव को हर कोई स्वीकार कर रहा है किन्तु उद्देश्य की कल्पना कई रूपों में की जाती है, जिस पर विचार करना लाजिमी है।

(1) राजनीतिक उद्देश्य : रामायण धारावाहिक का प्रसारण 25 जनवरी 1987 ई. से दूरदर्शन पर प्रारम्भ हुआ। यह वह दौर था, जब दूरदर्शन को आम जनता से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा था। इसके पूर्व 1986 ई. में मनोहर श्याम जोशी लिखित धारावाहिक 'हमलोग' का प्रसारण किया जा चुका था। आम जनता को टेलीविजन से जोड़ने का यह प्रयास सफल हो चुका था। जनता के लिए टेलीविजन एक मनोरंजन के महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में उभरा। टेलीविजन के इस देश व्यापी प्रभाव को देखते हुए भारतीय संस्कृति से जनता का अवगत कराने के उद्देश्य से इस धारावाहिक का निर्माण किया गया है। इसके दो परिप्रेक्ष्य थे, एक यह कि इससे जनता सांस्कृतिक रूप से समृद्ध होगी और दूसरा इससे राजनीतिक उपयोगिता भी सिद्ध होगी। इस धारावाहिक के निर्माण में जितनी भूमिका रामानन्द सागर एवं दूरदर्शन की है, उतनी ही भूमिका तत्कालीन सरकार एवं प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की थी। 'अरविन्द राजागोपाल' का मानना है कि 'इस धारावाहिक को तत्कालीन काँग्रेसी सरकार ने ही प्रस्तावित किया था। उसका उद्देश्य आगामी चुनाव में हिन्दू जनता की धार्मिक भावनाओं को तुष्ट कर वोट हासिल करना था। उनका मानना था कि इसके कारण हिन्दू धर्म में एकता स्थपित होगी।' 'अरविन्द राजागोपाल' लिखते हैं – ''The serial was sponsoread by a congress-led Government, in the hope that its's flagging electoral

fortunes might be revived with an infusion of "Hindu vote", votes inspired by Hindu solidarity and its attendant exclusions.''[52]

उस समय काँग्रस की यह राजनीतिक जरूरत थी। 1984 ई. से ही अयोध्या आन्दोलन जोर पकड़ने लगा था। इससे पूर्व शाहबानों केस में कोर्ट के आदेश को नकारकर, कानून बनाकर मुस्लिम बोर्ड को संतुष्ट करने की नीति से बहुसंख्यक हिन्दू जनता नाराज थी, जिनकी धार्मिक भावना को संतुष्ट करना आवश्यक था। उस दौर में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने हिन्दू जनता को संतुष्ट करने के लिए इस तरह के कई कदम उठाए। 1 फरवरी 1986 ई. को राजीव गाँधी और अरुण नेहरू ने उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री वीर बहादुर सिंह के जरिए बाबरी मस्जिद के विवादित हिस्से में पूजा पाठ के लिए ताला खुलवाया। इतना ही नहीं राजीव गाँधी ने 1989 ई. में अपने चुनाव अभियान की शुरुआत भी अयोध्या से की और यह कहा कि 'पूरे देश में रामराज्य' लाएँगे। इन तमाम राजनीतिक घटनाओं के बीच यदि जनवरी 1987 से लेकर जुलाई 1988 ई. तक के धारावाहिक प्रसारण के दौर को देखा जाए तो इसके राजनीतिक उद्देश्य से इनकार नहीं किया जा सकता है।

(2) धार्मिक उद्देश्य : रामानन्द सागर के अनुसार उनका उद्देश्य तुलसीदास की भाँति लोकमंगल का है। 15 मार्च 1988 ई. को जनसत्ता में दिए गए साक्षात्कार में उन्होंने कहा ''मुझे तो श्रीराम ने सन्देश देकर भेजा है कि मैं संस्कृति के इस देश में राम सेवा के माध्यम से अपना डाकिए का काम पूरा कर सकूँ। मुझे लगता है उनकी अचिंत्य शक्ति ही मुझसे एकाएक यह सब करवा रही है। मैं निमित्त भर हूँ। करा तो शायद वह राम ही सब रहा है।''[53] जिसकी प्रेरणा उन्हें स्वप्न में अलौकिक रूप में मिली थी। जैसा कि उनके एक सहकर्मी ने बताया कि उन्हें 'रामायण' धारावाहिक बनाने की प्रेरणा तुलसीदास की तरह स्वप्न में हनुमान जी से मिली थी, जब वे एक बार दक्षिण भारत के दौरे पर थे। उनकी इस प्रकार की चमत्कारिक घटना पर प्रकाश डालते हुए 'जवरीमल्ल पारख' लिखते हैं ''यहाँ तक

---

[52] Arvind Rajagopal, Politics after television, page 72
[53] उद्धृत, जवरीमल्ल पारख, जनसंचार के सामाजिक सन्दर्भ, पृ. 88

कि तुलसीदास की तरह हनुमान जी की प्रेरणा का भी वे उल्लेख करते हैं। इसी तरह यह पूछे जाने पर कि वे रामकथा की प्रस्तुति इस या उस रूप में क्यों कर रहे हैं, तो एक ही जवाब देते हैं कि अगर ऐसा नहीं करूँगा तो 'लोग मुझे खा जाएँगे' अर्थात जनता ठीक उसी रूप में रामकथा को देखा चाहती है। तीसरे, रामानन्द सागर ने समाचार पत्रों के माध्यम से शूटिंग के दौरान होने वाली कथित चमत्कारी घटनाओं का भी प्रचार किया है। जैसे 'रामायण' से जुड़ा कोई भी कलाकार इस दौरान बीमार नहीं पड़ा, किसी के साथ कोई दुर्घटना नहीं घटी थी अगर घट गई तो वह चमत्कारी ढंग से बच गया। इसी तरह यह भी प्रचार किया 'रामायण' से जुड़ा प्रत्येक कलाकार सात्विक मनोवृत्ति का हो गया है। इन सबका तात्पर्य एक ही है, हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को उभारना ताकि वे इस धारावाहिक को एक धार्मिक कथा के रूप में ग्रहण कर सके।''[54]

यहाँ 'पारख जी' का कहना सत्य है क्योंकि रामानन्द सागर ने कथा को धार्मिक बनाने के साथ–साथ चमत्कारिक बनाने की भी कोशिश की है। तुलसीदास की जिस रामकथा को उन्होंने आधार बनाया है, उसकी अलौकिकता की कल्पना भी शायद उतनी न हो, जितनी रामानन्द सागर ने धारावाहिक में साकार करने की कोशिश की है।

धारावाहिक में कथा से अधिक कर्मकाण्डों पर जोर दिया गया है। यज्ञ, हवन, संस्कार, गृह–प्रवेश के नाम पर विभिन्न वेद–मंत्रों की पंक्तियों को इकट्ठा कर उसे तपस्थली बनाने की कोशिश की है। 35 मिनट के धारावाहिक में कहीं–कहीं 5 से 10 मिनट सिर्फ यज्ञ हवन कराया गया है। उस यज्ञ एवं हवन की महिमा और अलौकिकता का बखान किया गया है। हालाँकि रामनन्द सागर ने तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में वर्णित विचारों को ही पुष्ट करने की कोशिश की है किन्तु कहीं–कहीं धर्म–भावना की अतिशयता में वे तुलसी से भी आगे निकल गए हैं। स्पष्ट है इस धारावाहिक निर्माण के पीछे एक विशेष प्रकार के धार्मिक पुनरुत्थान की भावना भी काम कर रही थी। सूत्रधार के रूप में अशोक कुमार द्वारा कराई गई व्याख्या ऐसे ही पुनरुत्थानवादी व्याख्या का उदाहरण है।

[54] वही, पृ. 88–89

यज्ञों को वैज्ञानिक प्रयोग कहा गया है और इन्हीं यज्ञों से 'अणु अस्त्रों' के विकास की बात कहकर विश्वामित्र राम को पलक झपकते ही एक आयुध 'सूर्यत्रिशूल' दे देते हैं। विश्वामित्र राम से कहते हैं – ''हम जानते हैं राम! वशिष्ठ मुनि ने पूर्ण–शस्त्र विद्या देकर तुम्हें रण–कौशल में पारंगत किया है परन्तु हम जो शक्तियाँ आज तुम्हें प्रदान करेंगे वे देवताओं को भी दुर्लभ है। अनेक लौकिक पारलौकिक और वैज्ञानिक शोध के द्वारा आध्यात्मिक शक्ति से हमने जिन्हें सिद्ध किया है, वे दिव्यास्त्र संसार में एक साथ हमारे सिवा कहीं नहीं मिल सकते।''[55]

आगे विश्वामित्र कहते हैं ''वत्स!! अस्त्रों में कई प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। कुछ शक्तियाँ वैज्ञानिक अनुसंधान से पैदा होती हैं। कुछ आध्यात्मिक साधना से दिव्य लोकों से प्राप्त होती हैं। कुछ शक्ति परमाणु शक्ति से संपुट होते हैं, कुछ मन की शक्ति से चलते हैं।''[56]

रामानन्द सागर द्वारा इस प्रकार की व्याख्या से यह स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य इस मिथकीय कल्पनाओं को वैज्ञानिकता से जोड़कर कथा को आधुनिक रूप में प्रस्तुत करना है। हालाँकि वे इसमें कितने सफल हुए यह अलग विषय है। यह रामानन्द सागर की अपनी कल्पना है। वे इस कर्मकाण्ड एवं मिथक को वैज्ञानिकता से जोड़कर जनता को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। उनके इसी प्रयास पर टिप्पणी करते हुए 'सुधीश पचौरी' कहते हैं ''रामायण में इस कल्पना तत्त्व को व्याख्या देकर जब 'वैज्ञानिक' कहा जाता है तो वहाँ एक ऐसे अन्ध पुनरुत्थानवाद की सृष्टि होती है जो हमें नया सोचने, करने की गुंजाइश नहीं देता।''[57] जाहिर है इन विचारों के माध्यम से धारावाहिक का उद्देश्य रामकथा की प्रस्तुति के साथ–साथ मिथकीय कल्पनाओं, धार्मिक आडम्बरों को भी वैज्ञानिकता के नाम पर प्रस्तुत कर उसे सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यता प्रदान करना था।

[55] रामानन्द सागर, धारावाहिक रामायण पटकथा, पृ. 64, एपिसोड 4
[56] वही, पृ. 65, एपिसोड 4
[57] सुधीश पचौरी, हिन्दुत्व और उत्तर आधुनिकता, पृ. 47

(3) सांस्कृतिक उद्देश्य : धारावाहिक रामायण का उद्देश्य सांस्कृतिक एकता स्थापित करना भी था, जिसे विभिन्न रामायणों के संयोजन की बात द्वारा देखा जा सकता है। सूत्रधार के माध्यम से रामानन्द सागर ने कई भाषाओं के रामायणों के संयोजन की बात की है। उन्होंने रामायण के नाम के साथ सांगीतिक रूप में उसकी पंक्तियों को भी प्रस्तुत किया है।

''सूत्रधार – उसके बाद जब संस्कृत बोलचाल की भाषा नहीं रही तो कवियों और संतों ने बार–बार अपने–अपने समय और अपने–अपने प्रदेश की भाषा में लिखा। दक्षिण की भाषाओं में 'रंगनाथ रामायण' तेलुगू में लिखी गई –

रंगनाथ – मादेवु कमलाक्षु ममेरु देवु।
मादेवु कमलाक्षु मामेरु देव।
नादि नारायणु निखिल लोकेषु।।

सूत्रधार – उसी तरह महर्षि कम्बर ने तमिल में, उत्च्छन्न ने मलयालम में और नागचन्द्र ने कन्नड़ में इसे लिखा। पूर्व में महाकवि कृतिवास ने इसे बंग्ला भाषा में लिखा और कृतिवासी रामायण उनके जीवनकाल में ही घर–घर गाई जाने लगी –

कृतिवास – मधु चैत्र मास शुक्ला श्रीराम नवमी।
शुभ क्षणे –ऽ–ऽ–ऽ– भूमिष्ठ होलेन जगत स्वामी।।
– एतो दिने,
एतो दिने दशरथ मनेते उल्लास,
राम जन्म रचिल पण्डित कृतिवास।

सूत्रधार – उसी प्रकार पश्चिमी तट के निकट महाराष्ट्र में सन्त एकनाथ ने यह गाथा बड़े भावपूर्ण अंदाज में गाई –

एकनाथ – श्रीराम अच्युत वृक्ष प्रबल, श्रीराम अच्युत वृक्ष प्रबल।
व्यावरी वाल्मीकि कवि कोकिल, व्यावरी वाल्मीकि कवि कोकिल।
नरद वसन्ते उडलि कीट, नारद वसन्ते उडलि कीट।

सूत्रधार – जैसा कि मैंनने पहले कहा था, उत्तर में गोस्वामी तुलसीदास ने इसे अवधि में लिखा –

तुलसीदास – सब जानत प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई।।''[58]

इस प्रकार विविध रामायणों की पंक्तियों का उपयोग कर निर्देशक ने भारत के विभिन्न प्रान्तों के बीच सांस्कृतिक एकता स्थापित करने की कोशिश की है। हालाँकि उन्होंने मूल रूप से वाल्मीकि एवं तुलसी को ही आधार बनाया है किन्तु कई क्षेत्रीय एवं अन्य भाषाओं के रामायण की चर्चा की है, ताकि उत्तर भारत के इतर भी जनता सांस्कृतिक रूप से जुड़ाव महसूस कर सके।

धारावाहिक की कथा में 'रामचरितमानस' के साथ 'वाल्मीकि रामायण' का संयोजन कर उसे पारम्परिक संस्कृति से जोड़ने का प्रयास किया गया है। इन दो ग्रंथों के संयोजन के क्रम में चरित्रों का निर्माण प्रभावित हुआ है, जो न वाल्मीकि के अनुसार है और न ही तुलसी के अनुसार। यह दोनों का मिश्रित चरित्र है। रामानन्द सागर द्वारा कथा एवं चरित्र के समन्वय पर 'सुधीश पचौरी' कहते हैं ''जब मानस की पुनर्प्रस्तुति करनी थी तब या तो शुरू में ही कह दिया जाता कि राम के जिस अवतारी रूप की चर्चा यहाँ की जा रही है वह 'मानस' से प्रेरित है और मानस के पाठ से काफी नजदीकी रखी जाती और राम के ईश्वरत्व की रक्षा की जाती। तब भले ही वह आध्यात्मिकता का प्रचार होता किन्तु उसका सम्प्रेषण निश्चित ढंग का होगा। किन्तु यहाँ राम का ईश्वरत्व खण्डित करके अधिकांश मनुष्य रूप में दिखाया गया है। इससे भारी गड़बड़ी यह हुई है कि ये राम न तुलसी के बन पाए हैं न देवता की जगह सम्पूर्णतः मनुष्य ही बन पाए हैं बल्कि रामानन्द सागरी राम बन गए हैं।''[59]

इस प्रकार धारावाहिक का उद्देश्य रामकथा के माध्यम से हिन्दू–संस्कृति को पुनर्परिभाषित करने की थी परन्तु संस्कृति की प्रस्तुति के तरीके के कारण वह सांस्कृतिक से अधिक धार्मिक रूप में मुखरित हुआ। संस्कृति की व्याख्या के रूप

---

[58] रामानन्द सागर, धारावाहिक रामायण पटकथा, पृ. 5–6, भूमिका
[59] सुधीश पचौरी, मीडिया और साहित्य, पृ. 93–94

में वेद, उपनिषद, पुराण, यज्ञ आदि हिन्दू धर्म के अंगों–उपांगों पर विशेष जोर दिया गया। फलतः धारावाहिक का धार्मिक पक्ष महत्त्वपूर्ण हो गया और सांस्कृतिक पक्ष गौण हो गया। रामायण के इसी धार्मिक पक्ष की प्रबलता पर टिप्पणी करते हुए 'जवरीमल्ल पारख' लिखते हैं ''रामायण देखते हुए दर्शक की धार्मिक चेतना सक्रिय होती है न कि मानवीय चेतना। वह राम द्वारा किए गए कार्यों को धार्मिक निष्ठा के साथ देखता है न कि मानवीय विवेक और भावना के साथ''[60]

इस प्रकार रामानन्द सागर द्वारा धारावाहिक की प्रस्तुति एवं कुछ प्रसंगों तथा विचारों को प्रधानता दिए जाने के कारण, धारावाहिक में अभिव्यक्त संस्कृति के धार्मिक स्वरूप से भी इनकार नहीं किया जा सकता है।

(4) व्यावसायिक उद्देश्य : धारावाहिक के राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक उद्देश्यों पर विचार करने के पश्चात उसके व्यावसायिक उद्देश्य पर भी विचार करना आवश्यक है। जिसके कारण उस दौर के आलोचकों ने रामानन्द सागर की आलोचना की। जिस भगवत भाव एवं लोककल्याणार्थ वे धारावाहिक के निर्माण की बात करते हैं, वह कहाँ तक सत्य है? क्या सचमुच उन्होंने भारतीय समाज के लोकमंगल के लिए धारावाहिक का निर्माण किया या फिर आम जनमानस की धार्मिक भावनाओं को सहलाकर उन्होंने व्यावसायिकता को प्रश्रय दिया था?

वह दौर मीडिया में पूँजी की प्रतिस्पर्धा का दौर था, जिसमें दूरदर्शन की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। भारतीय दूरदर्शन भी इस होड़ और स्पर्धा के मैदान में काफी पहले ही उतर चुका था और इस सांस्कृतिक सम्पदा के प्रसारण में काफी पूँजी बटोर चुका था। ऐसे दौर में धारावाहिक के निर्माण का उद्देश्य व्यावसायिक न हो, यह बात अविश्वसनीय लगती है। रामानन्द सागर के बारे में 'कमलेश्वर' कहते हैं ''रामानन्द सागर जब विभाजन के बाद भारत आए थे तो उनके हाथ में इंसानी इंसाफ के लिए वामपंथी क्रांतिकारी कलम थी। और तब विभाजन की भयानक त्रासदी पर उन्होंने एक जबरदस्त उपन्यास लिखा था – 'और इंसान मर गया।' और यह मेरे लिए भी एक भयानक त्रासदी जैसा हादसा है कि वामपंथी क्रांतिवादी

[60] जवरीमल्ल पारख, जनसंचार के सामाजिक सन्दर्भ, पृ 90

रामानन्द सागर के उपन्यास 'और इंसान मर गया' की भूमिका मुझसे ही लिखवाई गई थी और पच्चीस वर्षों बाद मेरा वह दोस्त, वह लेखक इंसान रामानन्द सागर बदल गया और 'रामायण' की सफलता के बाद मैंने उस इंसान के हाथों में क्रांतिवादी कलम की जगह खरतालें देंखी और वह भी रामचन्द्र जी के राज्याभिषेक वाले एपिसोड में, वह टी–सीरीज वाले गुलशन कुमार की तरह नाचने, खरतालें बजाने और राम भजन करने लगा।''[61]

'कमलेश्वर' का मानना है कि रामानन्द सागर के व्यक्तित्त्व का इतना बड़ा परिवर्तन व्यावसायिक दृष्टि के कारण ही हुआ था, जबकि वे अपने उपन्यास को भी आधार बनाकर फिल्म बना सकते थे।

'जवरीमल्ल पारख' के अनुसार ''रामायण के प्रत्येक उपाख्यान (एपिसोड) के निर्माण पर दो लाख रूपए की लागत आई थी और प्रायोजक इसके साढ़े तीन लाख रूपए देते थे और अन्य देशों को बेचे गए अधिकार से भी रामानन्द सागर को काफी आय हुई है। रामानन्द सागर को कुल मिलाकर यह सीरियल करोड़ो रूपए का मुनाफा देने वाली काम धेनु साबित हुआ है।''[62] आगे वे लिखते हैं ''रामायण से रामानन्द सागर के अलावा लाभ कमाने में जुटा रहा है – दूरदर्शन। दूरदर्शन पर 'रामायण' के पहले लगभग 15 मिनट तक 40 से अधिक विज्ञापन दिखाए जाते थे। इन विज्ञापनों से दूरदर्शन को प्रति उपाख्यान लगभग 28 लाख रूपए की आमदनी होती थी। फरवरी 1988 ई. तक दूरदर्शन को 'रामायण' से पंद्रह करोड़ रूपए से अधिक को राजस्व प्राप्त हो चुका था, जो उस समय तक अन्य किसी धारावाहिक से प्राप्त होने वाली आय से कहीं ज्यादा था। यह राशि दूरदर्शन को प्राप्त होने वाले कुछ राजस्व का दस प्रतिशत था।''[63]

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में धारावाहिक को देखा जाए तो रामकथा के इस धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप की अप्रतिम एवं अपूर्व सफलता ने उन्हें व्यावसयिकता की ओर भी उन्मुख किया। न सिर्फ, रामानन्द सागर ने जनता की

---

[61] कमलेश्वर, मीडिया, भाषा और संस्कृति, पृ. 28
[62] जवरीमल्ल पारख, जनसंचार के सामाजिक सन्दर्भ, पृ. 85
[63] वही, पृ. 86

भावना का व्यावसायिक उपयोग किया बल्कि दूरदर्शन ने भी इस धारावाहिक के माध्यम से अपना व्यावसायिक बाजार सुदृढ़ किया। धारावाहिक प्रसारण के दौरान दिखाए जाने वाले उत्पादों ने एक बड़ा उपभोक्ता वर्ग तैयार किया। व्यापारियों ने अपने सामान को बेचने के लिए इस धर्म भावना का उपयोग किया। रामायण देखने के लिए बैठी जनता उस विज्ञापन को भी उसी धर्म भाव के साथ पन्द्रह मिनट तक देखती रहती और उसे खरीदने के लिए बाजार की ओर उन्मुख होती। प्रयोजकों एवं विज्ञापनदाताओं की दिलचस्पी इस बात में होती कि उनके विज्ञापन को दर्शक अधिक से अधिक देखें, ताकि उनका सामान ज्यादा से ज्याद बिक सके। यह तभी सम्भव है जब धारावाहिक लोकप्रिय हो। इस प्रकार निर्माता, प्रसारक एवं व्यावसायियों के गठजोड़ से धारावाहिक का व्यावसायिक स्वरूप भी उभर कर आया। जिसे नकारा नहीं जा सकता।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि रामानन्द सागर ने तुलसी के जिस लोकमंगल को ध्येय बनाकर जनता के प्रीत्यर्थ धारावाहिक के निर्माण की बात की है, वह उद्देश्य शायद उस रूप में सफल न होकर राजनीतिक, धार्मिक एवं व्यावसायिक रूप में ज्यादा सफल हुआ है।

6.4 धारावाहिक रामायण का प्रभाव

सैकड़ों वर्षों से भारतीय जनमानस में रामकथा का जो स्वरूप विद्यमान था, वह समय–दर–समय कई माध्यमों के द्वारा आम–जनजीवन को तुष्ट करता रहा है। प्रारम्भ में कथा की पद्धति वाचन की थी, जो बाद में रामलीला के रूप में अभिनीत होने लगी, जिससे जनमानस में कथा की छवि अलग रूपों में स्थापित हुई। इन रामलीलाओं की अपनी दृश्यगत सीमाएँ हैं, जिसके अधीन कलाकार रामकथा के विविध रूपों का चित्रण करने लगे। परन्तु आधुनिक तकनीकों के विकास ने जनमानस को उन सभी घटनाओं से जीवन्त परिचय कराया, जो उनके लिए काल्पनिक थी और रामलीलाओं में उन दृश्यों की सूचना भर दे दी जाती थी। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के जरिए जनता की कथा सम्बन्धी कल्पनाएँ यथार्थ में

परिणत होने लगी। भारतीय सिनेमा ने भी आरम्भिक दौर में जनता की इन्हीं धार्मिक भावनाओं का उपयोग किया और उन्हें सफलता भी मिली किन्तु तीन घंटे के अन्तराल में दिखायी जाने वाली वो फिल्में जनमानस पर अपेक्षित प्रभाव न छोड़ सकी। इसके कई कारण थे एक फिल्में हर जगह सुलभ नहीं थी, दूसरी सीमित अवधि में कथा के कुछ हिस्सों को ही आधार बनाकर फिल्में बनाई जाती थी। 1987–88 के दौर में रामानन्द सागर ने जनता की इसी धर्म भावना को लक्षित कर 'रामायण' धारावाहिक का निर्माण किया, जिसे देशव्यापी एवं अभूतपूर्व सफलता मिली।

(1) धार्मिक एवं सामाजिक प्रभाव : 'रामायण' धारावाहिक के प्रसारण ने देशव्यापी प्रभाव डाला। इस धारावाहिक के आम–जनमानस पर अतिशय प्रभाव ने 'राम' के देवत्व स्वरूप को पुनर्स्थापित कर दिया। 'राम' फिर से धारावाहिक के माध्यम से अवतरित हो गए। एक बार फिर वैदिक धर्म की स्वीकार्यता समाज में बढ़ने लगी। सम्पूर्ण भारत 'राम' के पीछे चल पड़ा। ये वो राम थे, जो रामानन्द सागर ने निर्मित किया था। यह प्रभाव अनायास नहीं था बल्कि इसे सुनियोजित तरीके से जनता के बीच प्रसारित किया जा रहा था। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है बार–बार रामानन्द सागर द्वारा इस धारावाहिक की घटनाओं को दैवीय चमत्कार से जोड़कर देखन एवं उसकी सफलता को दैवीय चमत्कार मानना आदि, विचार ने धर्मभीरू जनता में अपना व्यापक प्रभाव जमाया। राम की छवि भारतीय जनमानस में इस रूप में व्यक्त हुई कि जनता धारावाहिक के चरित्र को राम मनाने लगी। 'अरुण गोविल' राम हो गए और 'दीपिका चिखालिया' सीता। इन कलाकारों के जीवन से जुड़े कुछ प्रसंगों को उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है। बकौल अरुण गोविल "एक बार हमलोग एक गाँव से गुजर रहे थे। एक घर में हमने देखा टी. वी. का एक एंटीना लगा था। हमने ऐसे ही दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुलने के बाद वह व्यक्ति पलटा और मेरी तरफ देखा और गाँव की गली में चिल्लाता हुआ भागता हुआ चला गया 'अरे रामजी आ गए।'"[64] वे कहते हैं कि जब लोग मेरी तरफ देखते तो ऐसा लगता था जैसे साक्षात परमात्मा देख लिया हो। जीवन

---

[64] साक्षात्कार, इंडिया न्यूज, यू–ट्यूब

से जुड़े एक और प्रसंग को याद करते हुए अरुण गोविल कहते हैं ''एक बार एक औरत अपना बीमार बच्चा लेकर आई और मेरे पाँव में रख दिया और रो रही थी कि 'मेरे बच्चे को बचा लो'।''[65]

इसी प्रकार दीपिका चिखालिया कहती हैं कि ''एक बार एक उद्योगपति मित्र के घर हमलोग समारोह में गए थे, वहाँ उनके माता–पिता ने उन्हें देखकर साष्टांग दण्डवत किया था।''[66]

कहने का अर्थ यह कि आम–जनमानस ने रामकथा के माध्यम से जो कल्पनाएँ कर रखी थी, उसका प्रतिफलन उन्होंने इसी धारावाहिक में देखा। हर सत्पात्रों की पूजा होने लगी और खल पात्रों को विपरीत चरित्र के रूप में देखा जाने लगा। रावण का किरदार निभाने वाले 'अरविन्द त्रिवेदी' के अनुसार ''लोग उन्हें अपने इलाके में आज भी लंकेश कहते हैं, उनकी पत्नी को मन्दोदरी और पुत्रों को रावण–पुत्र।''[67]

धारावाहिक की लोकप्रियता एवं प्रभाव का आलम यह था कि 'रामायण' ने रविवार की सुबह 9 बजे का समय दर्शकों के लिए महत्त्वपूर्ण बना दिया। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार धार्मिक श्रद्धा से ओत–प्रोत जनता फूलमालाएँ लेकर टेलीविजन की पहले पूजा–अर्चना करती थी, फिर सामूहिक रूप से धारावाहिक देखती थी। उनके लिए टेलीविजन और राम दोनों अवतार ही थे। इतना ही नहीं उस दौरान प्रसारित होने विज्ञापनों को भी जनता उसी श्रद्धाभाव से देखती थी। राम के दृश्य में आते ही जनता जय–जयकार कर उठती, मानों राम स्वयं उसके उद्धार हेतु प्रकट हुए हों। धारावाहिक का सामाजिक प्रभाव यह था कि हर धर्म, जाति, सम्प्रदाय के लोग एक साथ धारावाहिक को देखते थे। सामाजिक आचरणों एवं व्यवहारों में जनता इन्हीं पात्रों का अनुसरण करने लगी। उनके लिए धर्म और अधर्म के मायने वहीं थे, जो रामानन्द सागर ने निर्धारित किए थे।

---

[65] वही
[66] वही
[67] वही

(2) सांस्कृतिक प्रभाव : 'अरविन्द राजागोपाल' का मानना है कि 'रामायण' धारावाहिक का प्रभाव सांस्कृतिक रूप से भी पड़ा। इसका प्रभाव न सिर्फ उत्तर भारतीय समाज पर बल्कि दक्षिण भरतीय समाज पर भी उसी रूप में पड़ा, जिसमें माध्यम के रूप में दूरदर्शन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिन्दी भाषी जनता के साथ गैर हिन्दी भाषी जनता ने भी इसे व्यापक रूप से आत्मसात किया। इसके प्रसारण के दौरान शहर, गलियाँ, दुकानें सूनी हो जाती थी। इस समय अन्य कोई आयोजन नहीं होता था। कुछ ही दिनों में इसके चार करोड़ से बढ़कर आठ करोड़ दर्शक हो गए। वे लिखते हैं ''The weekly Ramayan teleepic produced and directed by Ramanand Sagar was what established Doordarshan as a medium across north and south India, despite its reliane on the Hindi language. Audience estimates grew form four crores to eight crores in a few months. City streets and market places were empty at the time of broadcast.''[68]

धारावाहिक की इस अभूतपूर्व लोकप्रियता ने जनता को धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से समृद्ध किया था या नहीं यह विवाद का विषय हो सकता किन्तु यह सर्वविदित है कि इसने इन भावनाओं को उभारने की कोशिश की।

'जवरीमल्ल पारख' लिखते हैं ''चूँकि जनता में पहले से ही पुनरुत्थानवाद के पक्ष में वातावरण बनाया जा चुका था इसलिए लोगों की धर्मिक निष्ठा को सक्रिय करते हुए 'रामायण' देखने को प्रेरित करना। रामानन्द सागर के लिए आसान था।''[69]

इस तरह रामकथा को जिस प्रकार से धार्मिक रूप में प्रस्तुत किया गया उसने खास कर हिन्दू जनता को सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से प्रभावित किया, चाहे धारावाहिक में दिखाया गया पारिवारिक–सामाजिक व्यवहार हो,

---

[68] Arvind Rajagopal, our many Ramayanas : the Sunday mythology club, Indian express, 10 Nov. 2015

[69] जवरीमल्ल पारख, जनसंचार के सामाजिक सन्दर्भ, पृ. 90

धर्म–अधर्म की व्याख्या हो, यज्ञ का विधान हो या फिर वेदों की व्याख्या। यज्ञोपवीत के समय वशिष्ठ चारों भाइयों से कहते हैं –

''सर्वप्रथम तुम ब्रह्मा के ब्रह्माचारी हो। फिर वज्रधारी इन्द्र के, पश्चात अग्नि देवता के, तत्पश्चात मेरे ब्रह्मचारी हो। अब मैं सूर्य देवता की आज्ञा से तुम्हें शिष्य रूप में स्वीकार करता हूँ। गुरु और शिष्य के बीच सर्वदा प्रेम और विश्वास बना रहे। मेरे जो उत्तम गुण हों, तुम केवल उन्हें ही ग्रहण करना, अब मेरा पहला उपदेश ग्रहण करो। सत्यं वद, धर्मं चर, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।''[70] इसके आगे मंत्रों की पूरी श्रृंखला एवं कर्मकाण्ड का विधान प्रस्तुत किया गया है।

इन सबने एक बार फिर हिन्दू जनता को धर्म पालन के इन वैदिक विधानों की ओर उन्मुख किया।

(3) तकनीकी प्रभाव : इस धारावाहिक ने भारतीय जनमानस पर तकनीकी रूप से प्रभाव डाला, फलतः उनकी अलौकिक आस्था उन काल्पनिक दृश्यों को साकार देखकर और पुष्ट हुई। अहिल्या का पत्थर से स्त्री बन जाना, यज्ञ की अग्नि से देवता का प्रकट हो जाना, वानरों द्वारा युद्ध करना, राक्षसों का आकाश में विचरण करना, राक्षसों को भयंकर स्वरूप में दिखाना, वाणों का आपस में टकराना एवं प्रभाव–स्वरूप बिजली का गरजना तथा पृथ्वी का हिलना, पलक झपकते ही अस्त्र–शस्त्र का प्रकट हो जाना, हनुमान का पर्वत उठा लेना, पशु–पक्षियों का मानवी भाषा में बातचीत करना आदि चमत्कारिक दृश्य–विधानों ने जनता के मन पर गहरा प्रभाव डाला। उन्हें धर्म के इस चमत्कार पर पक्का यकीन हो गया, सामान्य जीवन में भी वे यज्ञ एवं तपस्या की कामना कर चमत्कार की कल्पना करने लगे।

(4) राजनीतिक प्रभाव : 'रामायण' धारावाहिक के प्रभाव स्वरूप जिस तथ्य की सर्वाधिक चर्चा होती है, वह है इसका राजनीतिक प्रभाव। हालाँकि इसके अतिशय धार्मिक प्रभाव का राजनीतिकरण कर दिया गया था, जिसने भारतीय इतिहास में

---

[70] रामानन्द सागर, रामायण धारावाहिक पटकथा, पृ. 28, भाग 2

धार्मिक एवं राजनीतिक ध्रुवीकरण की परिस्थितियाँ उत्पन्न की। यह वह दौर था जब राम जन्मभूमि विवाद अपने चरम उत्कर्ष पर था। 1984 ई. से ही यह विवाद गहराने लगा था। ''7–8 अप्रैल 1984 ई. को दिल्ली में विश्व हिन्दू परिषद द्वारा आयोजित प्रथम धर्म संसद में राम जन्मभूमि मुक्त कराने का संकल्प लिया गया। 21 जुलाई 1984 ई. को महन्त अवेद्यनाथ राम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति के अध्यक्ष बनाए गए। 25 सितम्बर 1984 ई. को सीतामढ़ी से अयोध्या श्रीराम जानकी रथयात्रा शुरू की गई। 18 अक्टूबर 1984 ई. को अयोध्या–लखनऊ के बीच राम–जानकी रथयात्रा निकाली गई। 1987 ई. में एक बार फिर राम–जानकी रथयात्रा निकाली गई और देश भर में राम जन्मभूमि मुक्ति समितियों का गठन किया गया। 1 फरवरी 1989 ई. में प्रयाग में कुम्भ के अवसर पर आयोजित सन्त सम्मेलन में 9 नवंबर 1989 ई. को मन्दिर के शिलान्यास की घोषणा की गई।''[71] कहने का अर्थ यह है कि राम जन्मभूमि के इस आन्दोलन के दौर में धारावाहिक ने जनता की धार्मिक भावनाओं को उत्तेजित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जिसका प्रतिफलन 6 दिसम्बर 1992 ई. को देखा गया। रामानन्द सागर भले इसे लोकमंगल हेतु निर्मित एवं प्रसारित करने की बात कह रहे हों, लेकिन इस धारावाहिक ने उस दौर में हिन्दू राष्ट्रवाद को उभारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जिसे विश्व हिन्दू परिषद के नेता 'अशोक सिंघल' ने अपने एक साक्षात्कार में कबूला। 'अरविन्द राजागोपाल' के अनुसार ''Ashok singhal who led the mobilization noted about the Ramayan serial in an interview, it was a great gift to our movement. We owed our recruits to the serials inspiration.''[72]

इससे स्पष्ट है कि जिस दौर में अयोध्या में एक ओर हिन्दू और मुसलमान आपस में अपनी हकदारी को लेकर संघर्षरत थे, छोटे–छोटे धार्मिक जुलूसों पर धर्मांध आपस में लड़ रहे थे। ऐसे वक्त में 'रामायण' के प्रसारण ने सहज ही उत्तेजना का कार्य किया। इसमें सबसे बड़ा राजनीतिक फायदा भारतीय जनता पार्टी को हुआ। जैसा कि 'रामचन्द्र गुहा' का मानना है अयोध्या आन्दोलन में

---

[71] अरविन्द कुमार सिंह, अयोध्या विवाद एक पत्रकार की डायरी, पृ 225–226

[72] Arvind Rajagopal, Politics after television, page 31

जुड़ने से भारतीय जनता पार्टी को 1989 ई. के आठवें लोकसभा के चुनाव में 86 सीटें प्राप्त हुई; जो एक बड़े विपक्ष के रूप में उभरी। जिस राम मन्दिर आन्दोलन को लेकर पार्टी आगे बढ़ रही थी, उसमें आम जनता के विचार को धार्मिक रूप से उद्वेलित करने में इस धारावाहिक का योगदान था। 'जवरीमल्ल पारख' कहते हैं – ''रामायण को देखते हुए एक हिन्दू मानस उसे ऐसे सीरियल के तौर पर ग्रहण नहीं कर सकता जिसकी अपील मानवीय और धर्मनिरपेक्ष हो, क्योंकि उसकी प्रस्तुति ही धार्मिक कथा के रूप में की गई। इसलिए 'रामायण' देखते हुए दर्शक की धार्मिक चेतना सक्रिय होती है न कि मानवीय चेतना। वह राम द्वारा किए गए कार्यों को धार्मिक निष्ठा के साथ देखता है न कि मानवीय विवेक और भावना के साथ। उसके लिए राम ईश्वर के रूप में सत्य है जिसने अतीत में कभी अयोध्या में अवतार लिया था इसलिए राम की जन्मभूमि उसके लिए मिथकीय तथ्य नहीं जीती जागती सच्चाई बनाई जाती है। उसका यह विश्वास 'रामायण सीरियल और पुख्ता करता है और तब उसका रामायण देखना व्यवहार में 'राम जन्मभूमि' के पक्ष में ताकत भी बनता है। यह 'रामायण' की साम्प्रदायिक–राजनीतिक भूमिका है।''[73]

धारावाहिक के इस धार्मिक प्रभाव का न सिर्फ राजनीतिक फायदा दलों एवं नेताओं ने उठाया बल्कि इसका राजनीतिक फायदा रामायण से जुड़े पात्रों ने भी उठाया। सीता की भूमिका निभाने वाली दीपिका चिखालिया बड़ौदा से 1989 ई. के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी की सांसद चुनी गई। राम की भूमिका निभाने वाले अरुण गोविल एवं हनुमान बने दारा सिंह ने काँग्रेस पार्टी के पक्ष में चुनाव प्रचार किया। रामानन्द सागर बड़े–बड़े धार्मिक एवं राजनीतिक आयोजनों में बतौर मुख्य अतिथि एवं वक्ता बुलाए जाने लगे। इस प्रकार इस धारावाहिक ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से अधिक राजनीतिक रूप से आम–जनमानस को प्रभावित किया। जिसका स्थापित प्रभाव आज भी भारतीय समाज एवं राजनीति में देखा जा सकता है।

---

[73] जवरीमल्ल पारख, जनसंचार के सामाजिक सन्दर्भ, पृ. 90

उपसंहार

उपसंहार

'साहित्य' और 'इलेक्ट्रॉनिक माध्यम' दोनों ही मनुष्य के भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। यह मानवीय सभ्यता के क्रमिक विकास एवं विस्तार की उपलब्धि है। जैसे–जैसे मानवीय सभ्यता का विकास होता गया, मनुष्य ने भोजन, वस्त्र और आवास की समस्या के इतर अपनी ज्ञान परम्परा को विकसित करने का प्रयास किया। इस ज्ञान परम्परा के विकास के साथ–साथ उसके संरक्षण की भी आवश्यकता महसूस की गई। फलतः ज्ञान परम्परा के संरक्षण के दौर में मनुष्य पत्थर, भोजपत्र, ताम्रपत्र आदि से गुजरते हुए कागज तक पहुँचा। कागज का आविष्कार मानवीय ज्ञान संरक्षण के इतिहास की सबसे बड़ी घटना थी। परिणामस्वरूप ज्ञान को कागजों पर शब्दों के रूप में संरक्षित किया जाने लगा। बौद्धिक ज्ञान के संरक्षण में मुद्रण ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। मुद्रण के कारण विश्व की विभिन्न भाषाओं में प्रचूर साहित्य लिखे गए, कई भाषाओं में उनके अनुवाद हुए। फलतः मुद्रण कला ने साहित्य को समाज के लिए, सुलभ बना दिया। जो साहित्य अपने आरम्भिक दौर में श्रुति परम्परा में अभिव्यक्त होता था, वह आगे चलकर भोजपत्रों एवं ताम्रपत्रों से होता हुआ कागजों पर अंकित शब्दों के

माध्यम से अभिव्यक्त होने लगा। परन्तु बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक आते–आते अभिव्यक्ति के नए माध्यमों की तलाश हुई।

जब कागज पर मुद्रित ज्ञान मनुष्य के सर्वांगीण जीवन को अभिव्यक्त करने में असमर्थ सिद्ध हुआ, वैसी स्थिति में 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया' ने चिन्तन और सृजन के नए आयामों से मनुष्य का परिचय कराया। 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया' की सुगमता और सम्प्रेषणीयता ने धीरे–धीरे जनमानस पर व्यापक प्रभाव डाला। चूँकि यह माध्यम दृश्य एवं श्रव्य दोनों है अतः प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से यह अधिक कारगर सिद्ध हुआ। खासकर उन वर्गों के लिए जिनका परिचय शब्दों से नहीं था। फलतः सभ्यता, संस्कृति, मिथक, पुराण की कथाओं आदि को जन–जन तक पहुँचाने के लिए इन्हीं माध्यमों का उपयोग किया जाने लगा। 'रामायण धारावाहिक' भी इन्हीं माध्यमों द्वारा मिथक पुराण की कथाओं को आम–जनमानस तक पहुँचाने का एक सार्थक प्रयास था। यह साहित्य और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के समन्वय का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। मिथक पुराणों की कथा का जो संस्कार भारतीय जनमानस पर व्याप्त था, उसी भाव को सहलाने का यह एक प्रयास था, जिसमें रामानन्द सागर सफल हुए।

धारावाहिक की इस सफलता के पीछे रामकथा की अभिव्यक्ति के पूर्व माध्यमों की भी भूमिका थी, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता है। भारतीय जनमानस में इस कथा की व्याप्ति एवं प्रभाव के कई आदिम एवं आधुनिक स्रोत हैं जिसकी भूमिका इसकी सफलता का आधार है। इन आदिम एवं आधुनिक स्रोतों ने ही जनमानस को इस धारावाहिक के लिए कौतूहल एवं रहस्यात्मकता पैदा की। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत 'ऋग्वेद', 'ऐतरेय ब्राह्मण', 'शतपथ–ब्राह्मण', 'जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण', 'वृहदारण्यक उपनिषद' आदि में मौजूद रामकथा के पात्रों ने रामकथा के आगे की पृष्ठभूमि तैयार की। इन्हीं स्रोतों पर आगे चलकर वाल्मीकि ने रामकथा को आधार बनाकर व्यवस्थित रूप में रामायण की सर्जना की।

चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में वाल्मीकि ने जब 'आदि रामायण' की रचना की, तो उसमें केवल राम वनगमन से लेकर अयोध्या प्रत्यावर्तन तक की कथा वर्णित

थी अर्थात उसमें 'अयोध्याकाण्ड' से लेकर 'युद्धकाण्ड' तक की कथा शामिल थी। बाद में ईसा की दूसरी शताब्दी ई. तक यह 'आदि रामायण', 'प्रचलित रामायण' के रूप में उभकर आया, जिसमें 'बालकाण्ड' एवं 'उत्तरकाण्ड' जोड़े गए। इसका कारण यह था कि 'वाल्मीकि रामायण' का यह प्रचलित रूप कई शताब्दियों तक मौखिक रूप में ही प्रचलित रहा, जिसके परिणामस्वरूप कथावाचकों एवं गायकों ने अपने श्रोताओं की रुचि को ध्यान में रखकर उसके लोकप्रिय अंशों को बढ़ाने एवं कथानक में नवीन सामग्री को जोड़ने का काम किया। जैसे–जैसे जनता की रसानुभूमि बढ़ती गई, इन कुशीलवों ने कथानक में अद्भुत रस की सृष्टि प्रारम्भ कर दी। कथावाचन की इस मौखिक परम्परा से नई कथा की सृष्टि हुई, जिसे जनता ने आत्मसात कर लिया।

रामकथा की यह धारा जो वैदिक साहित्य से चली और वाल्मीकि द्वारा सृजित हुई थी, वह सैकड़ों वर्षों में न सिर्फ लोक–भाषाओं में बल्कि विदेशी भाषाओं में भी प्रसारित हुई। फलतः न सिर्फ भारतीय भाषाओं में बल्कि विदेशों में भी प्रभूत रामकथाएँ लिखी गई। रामकथा की इस लोकप्रियता का प्रभाव न सिर्फ सामाजिक जीवन पर बल्कि विभिन्न धर्मों पर भी पड़ा। बौद्धों एवं जैनियों ने भी राम को अपने धर्म में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। यह कथा सांस्कृतिक रूप से इतनी प्रसारित हुई कि उसे उस समय के प्रचलित तीनों धर्मों ने स्थान दिया। चाहे हिन्दू धर्म में विष्णु के रूप में हो, बौद्ध धर्म में बोधिसत्व के रूप में हो या फिर जैन धर्म में आठवें बलदेव के रूप में।

रामकथा की इसी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक व्याप्ति के कारण इसकी अभिव्यक्ति एवं प्रस्तुति के लिए नए माध्यम के रूप में रामलीला का जन्म हुआ। अब तक जो कथा वाचिक एवं लिखित परम्परा में थी, वह साक्षात पात्रों के माध्यम से अभिनीत होने लगी। हालाँकि रामकथा के अभिनय की परम्परा 'हरिवंश पुराण' से ही मिलती है, जो बाद में 'हनुमान्नाटक' से होती हुई अन्य भारतीय भाषाओं तक पहुँचती है। चाहे गुजराती में 'भावाई का रामवेश' हो या फिर महाराष्ट्र के 'ललित' में रामकथा की परम्परा, असम और बंगाल की 'राम जात्रा'

हो या फिर पंजाबी का 'आसा–दी–वार' सबने रामलीला की परम्परा को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

रामलीला के अभिनय की यही परम्परा 'इलेक्ट्रॉनिक माध्यम' में धारावाहिक के रूप में स्थापित हुई। यह धारावाहिक इसी रामलीला का तकनीकी रूपान्तरण था, जो टेलीविजन के माध्यम से प्रसारित किया गया था। मशीनी पुनरुत्पादन के दौर में कलाओं का रूपान्तरण भी सहज एवं सरल हो गया। अभिव्यक्ति के इस नए माध्यम ने जनमानस में अपनी स्थापना हेतु, जनता की इन्हीं धार्मिक एवं सांस्कृतिक रुचियों का उपयोग किया। 'रामायण धारावाहिक' भी जनता की इसी रुचि का तकनीकी उपयोग था। हालाँकि 'रामायण धारावाहिक' से पूर्व रामकथा पर आधृत कई फिल्में बनाई जा चुकी थी। जिसकी परम्परा 1917 ई. दादा साहब फल्के निर्मित 'लंका–दहन' से प्रारम्भ हुई थी। 1917 ई. से लेकर 1987 ई. तक रामकथा पर आधारित कई फिल्मों का निर्माण किया गया, जिनमें हिन्दी से लेकर दक्षिण भारत की कई भाषाओं में फिल्में बनाई गई।

इस प्रकार रामानन्द सागर को रामकथा पर आधारित फिल्मों की परम्परा विरासत में मिली थी, जिसका उन्होंने तकनीकी रूप से अध्ययन किया और धारावाहिक के रूप में रामकथा का रूपान्तरण किया। चूँकि मशीनी तंत्र एवं दृश्य संयोजन की परम्परा उन्हें फिल्म निर्माण के रूप में मिल चुकी थी और धारावाहिक निर्माण से पूर्व भी वे फिल्म निर्माण में सक्रिय थे। इसके लिए उन्हें एक सशक्त पटकथा की आवश्यकता थी, जिसके माध्यम से रामकथा से जुड़े हर प्रसंग को प्रस्तुत किया जा सके। फलतः उन्होंने स्रोत के रूप में 'रामचरितमानस' एवं 'वाल्मीकि रामायण' का उपयोग कर कथानक का निर्माण किया।

धारावाहिक का कथानक महाकाव्य एवं धारावाहिक लेखन दोनों के प्रतिमानों के बीच लिखी गई पटकथा है। जिसमें सांस्कृतिक प्रभाव के लिए भले ही कम्बर, कृतिवास, चकबस्त, राधेश्याम आदि रामायणों की चर्चा की गई है परन्तु यह कथानक के लिए पूर्णरूपेण 'वाल्मीकि रामायण' एवं 'रामचरितमानस' पर आधृत है। रामानन्द सागर ने तुलसी के भाव एवं वाल्मीकि की घटना दोनों का

उपयोग कथानक में किया है। रामानन्द सागर का उद्देश्य कथानक के माध्यम से आम जनता को प्रभावित करना था, जिसमें शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों तरह की जनता शामिल थी। इसलिए उन्होंने दोनों महाकाव्यों के लोकप्रिय प्रसंगों को कथानक का आधार बनाया। जहाँ कहीं भी तुलसीदास की कथा संकेत के साथ आगे बढ़ जाती है, वहाँ रामानन्द सागर ने वाल्मीकि से घटना को लेकर उस कथा एवं प्रसंग को विस्तार दिया है। जैसे गंगावतरण की कथा, अहिल्या की कथा, श्रवण कुमार की कथा, सीता–जन्म की कथा आदि। इतना ही नहीं प्रसंगानुसार जनमानस से कथा को जोड़ने के लिए लोकरूपों की भी सृष्टि की है जैसे गुरुकुल की कथा, राम की बाल–क्रीड़ा आदि। विवाहोपरान्त नेग की रस्म आदि ऐसे प्रसंग हैं जो लोकरीति को प्रस्तुत करते हैं। परन्तु लोक–संस्कृति की जो भव्यता तुलसीदास के यहाँ है, उसका सर्वथा आभाव है। इस तरह रामानन्द सागर छोटी–छोटी उपकथाओं को भी मुख्य कथा के साथ जोड़ते हुए चलते हैं, जिससे दर्शकों को रामकथा से जुड़े किसी भी प्रसंग हेतु अन्य स्रोतों का सहारा न लेना पड़े और रामकथा की पूर्ण छवि जनता के मनोमस्तिष्क में स्थापित हो और साथ ही धारावाहिक की निरन्तरता भी बनी रहे। हालाँकि कथा विस्तार के लिए उन्होंने गीतों, कर्मकाण्डों से जुड़े प्रसंगों पर अधिक समय दिया है, जहाँ संवाद की जगह भावों एवं अभिनय को प्रधानता दी गई हैं। ये संवाद रहित कथांश भी मूल कथा को आधार प्रदान करते हैं और कथानक की रसमयता बनी रहती है।

कथानक निर्माण में नीति और धर्म से जुड़े लम्बे–लम्बे संवादों के लिए दोनों महाकाव्यों से भाव ग्रहण किया गया है किन्तु कथानक के संवाद की दो स्थितियाँ हैं। एक वह, जहाँ प्रसंग पूर्णरूपेण इन महाकाव्यों से गृहीत हैं वहाँ संवाद में वर्णित विचार भी उनके अनुसार हैं। दूसरा जिन प्रसंगों को लोकाभिरुचि के कारण जोड़ा गया है वहाँ विचार आधुनिक हो गए हैं। इस प्रकार कथानक का विचार पौराणिक एवं आधुनिक दोनों का मिला जुला रूप प्रतीत होता है। वाल्मीकि आधारित प्रसंगों में 'मानस' की पंक्तियों एवं 'मानस' के प्रसंग में वाल्मीकि की उक्तियों का प्रयोग कर सामंजस्य बनाने की कोशिश की गई है। फलतः 'रामचरितमानस' एवं 'वाल्मीकि रामायण' से परिचित जनता के लिए वह प्रसंग

असहज हो सकता है किन्तु इससे अनभिज्ञ जनता के लिए सहज है। धारावाहिक में दोनों ही महाकाव्यों में वर्णित विचारों का प्रयोग पटकथा के अन्तर्गत किया गया है, परन्तु रामानन्द सागर ने कथानक में विचार से अधिक घटना को प्रमुखता दी है, फलतः विचारों से अधिक घटनाओं का संयोजन किया गया है।

धारावाहिक की मुख्य कथा के रूप में रामजन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा का संयोजन किया गया है। रामानन्द सागर ने 'अयोध्याकाण्ड' तक का अधिकांश प्रसंग 'रामचरितमानस' से ही ग्रहण किया है, परन्तु 'अरण्यकाण्ड' से कथानक 'वाल्मीकि रामायण' की ओर झुकने लगता है। 'किष्किन्धाकाण्ड' से अधिकांश कथा 'वाल्मीकि रामायण' पर आधृत है, जिसमें बीच–बीच में दोहा–चौपाई एवं छोटे–छोटे प्रसंगों को 'रामचरितमानस' से जोड़कर उसकी उपस्थिति का एहसास कराया गया है। इसका एक कारण दोनों महाकाव्यों में प्रसंगों की समानता भी है साथ ही साथ धारावाहिक की घटना के लिए वह उपयुक्त भी है। इस तरह घटनाओं एवं तथ्यों के संग्रह में रामानन्द सागर को 'वाल्मीकि रामायण' से अधिक सहायता मिली है, जिसका उन्होंने भरपूर उपयोग किया है। धारावाहिक की भूमिका में वर्णित विभिन्न स्रोतों के उपयोगों से इतर कथा पूर्णतः 'रामचरितमानस' एवं 'वाल्मीकि रामायण' पर आधृत है।

इस कथानक की सफलता के लिए रामानन्द सागर कथानक के अनुसार पात्रों की सृष्टि करते हैं, क्योंकि ये पात्र ही कथा की अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम हैं चूँकि यह कथा पौराणिक है इसलिए पौराणिक पात्रों के प्रति जनमानस में विस्मयपूर्ण श्रद्धा के संस्कार भरे होते हैं, जिसकी अभिव्यक्ति उसी रूप में करना एक चुनौतीपूर्ण काम है। रामानन्द सागर ने भी पात्रों की सृष्टि रामकथा के आम–जनजीवन में व्याप्त संस्कारों को ध्यान में रखकर ही की है, किन्तु चरित्र निर्माण के लिए जिस ग्रन्थ का सहारा लिया है उसके पात्रों के चरित्र एवं धारावाहिक के चरित्र में अपेक्षित साम्य–वैषम्य देखने को मिलता है।

पात्रों की दृष्टि से 'धारावाहिक रामायण' एवं 'रामचरितमानस' की तुलना करें तो, दोनों के पात्र निर्माण के अपने–अपने अलग प्रतिमान हैं। दोनों दो विधाएँ

हैं। एक महाकाव्य है, तो दूसरा दृश्य माध्यम हेतु लिखी गई पटकथा। जाहिर है उनके पात्रों की संगति अलग होगी, क्योंकि रूपान्तरित विधा में पात्रों की योजना मूल विधा से भिन्न होती है। धारावाहिक हेतु पात्र निर्माण की अपनी रूपरेखाएँ हैं, जो महाकाव्यों में वर्णित पात्र संरचनाओं से भिन्न होती है। इसलिए इन दोनों के पात्रों में यथेष्ट अन्तर है।

'रामचरितमानस' एवं 'धारावाहिक रामायण' के पात्रों में अन्तर का मतलब यह कतई नहीं है कि दोनों के पात्र अलग–अलग हैं, हालाँकि कथा विस्तार के लिए कुछ अतिरिक्त पात्र वाल्मीकि से जोड़े गए हैं। धारावाहिक कथानक हेतु 'मानस' पर निर्भर है, जो एक पौराणिक आख्यान है, इसलिए उसके मुख्य पात्र स्थायी हैं, जो परम्परा प्रसूत हैं। उनकी कथा भी व्यवस्थित है। उसका चरित्र भी मौलिक नहीं है बल्कि वही चरित्र है जो सैकड़ों वर्षों से जनमानस में व्याप्त है। जिसे धारावाहिक निर्माता ने अपने अनुरूप ढालने की कोशिश की है। इस प्रकार पात्र वही है किन्तु चित्रण के कारण उनके चरित्र में भिन्नता परिलक्षित होती है। जिससे तात्विक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से उनका चरित्र कहीं–कहीं बदलता हुआ प्रतीत होता है। इसका प्रमुख कारण कथानक हेतु वाल्मीकि रामायण का भी उपयोग किया जाना है।

'धारावाहिक' एवं 'मानस' दोनों ही विधाओं के रचनाकारों ने अपने–अपने अनुरूप पात्रों के चरित्र का निर्माण किया है। तुलसीदास ने काव्यात्मक ढंग से अपने पात्रों के चरित्र को उदात्तता प्रदान की है, जो उनके सामाजिक सरोकारों की भी अभिव्यक्ति करते हैं, और यह सामाजिक सरोकार उनकी समसामयिक परिस्थिति एवं समाजबोध का परिणाम है। रामानन्द सागर ने भी तुलसीदास के भावों एवं विचारों को ही धारावाहिक में स्थापित करने की कोशिश की है किन्तु बीच–बीच में घटना विस्तार हेतु अन्य स्रोतों का उपयोग एवं कथा को जनमानस से जोड़ने के लिए, पात्रों के चरित्र को समसामयिक परिस्थिति एवं अपने समाजबोध के अनुसार अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। जिससे पात्रों के मनोविज्ञान में भिन्नता आई है।

'रामचरितमानस' एव 'धारावाहिक रामायण' के पात्रों के मनोविज्ञान में अन्तर का पहला कारण है विधात्मक भिन्नता एवं दूसरा कारण है लेखक और पात्रों के बीच का संतुलन। 'मानस' चूँकि महाकाव्य है जो पाठ्य माध्यम है, अतः तुलसीदास का पूरा ध्येय चरित्रों एवं उसके मनोविज्ञान के आधार पर अपने विचारों को अभिव्यक्ति करना है, इसलिए उन पात्रों पर मनोवैज्ञानिक रूप से नियंत्रण रखना तुलसीदास के लिए सम्भव है। क्योंकि उन्हें सिर्फ पात्रों का अंतरंग दिखाना है। जबकि धारावाहिक की अभिव्यक्ति अंतरंग एवं बहिरंग दोनों पर निर्भर होती है। धारावाहिक में लेखक के विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति पात्रों की संवाद अदायगी एवं अभिनय के द्वारा होता है। इसलिए दोनों परिस्थितियों में सामंजस्य स्थापित करने के कारण 'धारावाहिक' एवं 'मानस' के पात्रों में मनोवैज्ञानिक अन्तर दिखाई देता है। जैसे धारावाहिक में राम वही नहीं हैं, जो तुलसीदास के यहाँ हैं। जैसा कि विदित है वाल्मीकि से कथा ग्रहण के कारण दोनों महाकाव्यों का चारित्रिक मनोविज्ञान आपस में टकराता है साथ ही धारावाहिक के राम बीच–बीच में रामानन्द सागर के अनुसार आधुनिक भाव बोध को भी ग्रहण करते दिखाई पड़ते हैं, जिसके कारण एक अलग तरह का मनोविज्ञान प्रकट होता है। भरत का चरित्र, दशरथ का चरित्र, कौशल्या का चरित्र आदि मनोवैज्ञानिक रूप से धारावाहिक में कहीं–कहीं भिन्न रूप में प्रकट हुआ है।

केवट एवं निषाद प्रसंगों में अवधी के आँचलिक रूप का प्रयोग कर रामानन्द सागर ने तुलसीदास के अनुसार पात्रों को ढालने की कोशिश की है किन्तु चरित्र एवं भावों की जो उच्चता तुलसीदास के यहाँ है, उसका सर्वथा आभाव है। कहने का अर्थ यह कि साहित्य में पात्रों का चरित्र एवं मनोविज्ञान ही उसकी अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है किन्तु धारावाहिक के पात्रों की अपनी सीमाएँ हैं। विधान्तरण एवं रूपान्तरण के कारण इसका बहुत कुछ चरित्र पटकथा लेखक के विचार के साथ अनुस्यूत हो गया है। चूँकि यह दृश्य माध्यम है इसलिए यहाँ घटना की प्रधानता है। चरित्र का उपयोग भी घटना के सन्दर्भ में किया गया है। जबकि मानस में चरित्र प्रमुख है, और तुलसीदास का उद्देश्य अपने चरित नायक को स्थापित करना है न कि रामकथा सुनाना। 'मानस' का पाठक अपनी

रुचि एवं सामर्थ्य के अनुसार पात्रों के चरित्र एवं मनोविज्ञान को आत्मसात कर लेता है किन्तु धारावाहिक के लिए दर्शक पूर्णतः माध्यम पर आश्रित होता है, जिसमें निर्देशक की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

'रामचरितमानस' एवं 'धारावाहिक रामायण' की भाषा भिन्न है। एक अवधी की रचना है दूसरी खड़ी बोली की। यह विधा एवं भाषा दोनों रूपों में भिन्न है। जब भी किसी साहित्यिक या पौराणिक कृति का रूपान्तरण होता है तो उसकी भाषा वही नहीं रह जाती है, जो उस कृति में होती है। इसलिए इन दोनों में भिन्नता है। चूँकि दोनों दो कालखण्ड की रचना है अतः इनकी भाषा का वैषम्य स्वाभाविक है। एक पद्यात्मक रचना है दूसरी गद्यात्मक संवाद की शैली। 'मानस' में भाषा शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति हुई है, जबकि 'धारावाहिक' में कायिक एवं वाचिक अभिनय द्वारा। 'मानस' की भाषा साहित्यिक भाषा है किन्तु 'धारावाहिक' की भाषा आम बोलचाल की भाषा है। 'मानस' की भाषा रस, छंद, अलंकार से युक्त है जो उसे काव्यात्मकता प्रदान करते हैं किन्तु 'धारावाहिक' की भाषा सहज संवाद की भाषा है जिसे पात्र अभिनय द्वारा व्यक्त करते हैं। धारावाहिक में प्रयुक्त उपमा, रूपक एवं मुहावरे भी आम–जनमानस से ग्रहण किए गए हैं। भाषा दोनों ही जगह पात्रानुसार एवं अवसरानुसार वर्णित है किन्तु काव्यात्मकता का उपयोग 'धारावाहिक' में नहीं है। धारावाहिक की भाषा को काव्यमयी बनाना उसे दुर्बोध बनाना है क्योंकि दोनों के उपभोक्ता और उनके वर्ग भिन्न है। 'धारावाहिक' की भाषा का विधान इस प्रकार से किया गया है कि हर वर्ग तक बिना किसी बौद्धिक श्रम के सम्प्रेषित हो सके।

'धारावाहिक रामायण' में संस्कृत भाषा का भी उपयोग किया गया है। रामानन्द सागर ने संवादों में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग कर भाषा को पौराणिक आख्यानों के अनुरूप ढालने की कोशिश की है, जिससे कथानक का मूल स्वभाव स्पष्ट हो सके। भाषा में जहाँ भी नीतिवाक्यों एवं दार्शनिक उक्तियों का प्रयोग किया गया है, वहाँ भाषा भी इन महाकाव्यों के अनुरूप ढल गई है। इसके अतिरिक्त कहीं–कहीं 'वाल्मीकि रामायण' की पंक्तियों एवं वेद, पुराणों की पंक्तियों का प्रयोग संस्कृत भाषा में किया गया है। हालाँकि परम्परा प्रसूत इस

भाषा का त्याग तुलसीदास भी नहीं कर सके, उन्होंने भी मंगलाचरण में संस्कृत का उपयोग किया है।

'धारावाहिक' की भाषा में सबसे प्रमुख योगदान गीतों का है, जो संवाद का आधार प्रदान करता है। जहाँ संवाद खत्म होता है, उसके आगे की अभिव्यक्ति एवं पात्रों के मनोभावों को गीतों के माध्यम से चित्रित किया गया है। इन गीतों की योजना कई भाषाओं के माध्यम से की गई है जैसे ब्रज, अवधी एवं खड़ी बोली। 'मानस' के दोहे एवं चौपाइयों का प्रयोग भी सांगितिक रूप से किया गया है और कहीं–कहीं इन दोहे एवं चौपाइयों के आधार पर अलग से पंक्तियाँ गढ़ दी गई है। ये गीत प्रसंगानुसार एवं अवसरानुसार प्रयोग किए गए हैं। इन गीतों की भाषा का अपना कोई स्वरूप नहीं है, न ही किसी व्याकरण को ध्यान में रखकर इन गीतों की सृष्टि की गई है। उनका उपयोग महज संवादों की रिक्तता भरने एवं दृश्य विधान द्वारा प्रभावोत्पादकता पैदा करने तथा कथानक को गतिशीलता प्रदान करने के लिए किया गया है।

इस प्रकार एक ओर जहाँ तुलसीदास ने रामकथा की साहित्यिक अभिव्यक्ति अवधी के माध्यम से की, वहीं रामानन्द सागर ने खड़ी बोली के माध्यम से कथा को उसी भाव में प्रस्तुत करने की कोशिश की। जिसके लिए उन्होंने गीत, संगीत एवं आधुनिक दृश्य विधानों एवं उससे जुड़ी तकनीकों का इस्तेमाल किया।

अन्ततः 'रामचरितमानस' के उद्देश्य एवं प्रभाव की बात करें, तो तुलसीदास का उद्देश्य 'लोकमंगल' था, जिसकी स्थापना के लिए उन्होंने रामकथा को आधार बनाया। 'रामचरितमानस' में उन्होंने पारिवारिक एवं सामाजिक आदर्श की रूपरेखा प्रस्तुत की, जिस पर चलकर लोक का कल्याण हो। उनके इन सामाजिक, पारिवारिक आदर्श का प्रतिफलन उनके 'रामराज्य' की अवधारणा में दिखाई देता है। वे एक ऐसे 'रामराज्य' की कामना करते हैं जहाँ हर प्राणी वर्णाश्रम के अनुकूल आचरण करे, दैहिक, दैविक एवं भौतिक किसी प्रकार का कष्ट समाज में न हो, हर व्यक्ति वेद–विदित मार्ग का अनुसरण करे, जहाँ प्रकृति भी मनुष्य के अनुकूल आचरण करे, हर व्यक्ति राजा का सम्मान करे और राजा भी प्रजा सम्मत हो तथा

विवेकी हो आदि। इसके अलावा वे तत्कालीन धार्मिक एवं साम्प्रदायिक (पंथ विशेष) वैमनष्यता को समाप्त कर सबके समन्वय की भी कामना करते हैं। वे धार्मिक एवं साम्प्रदायिक समन्वय के साथ–साथ सामाजिक एवं दार्शनिक समन्वय का भी प्रयास 'रामचरितमानस' में करते हैं।

तुलसीदास का उद्देश्य समाज में एक ऐसे 'राम' की स्थापना करना है, जो ईश्वर होकर भी मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं और सज्जनों का दुःख हरते हैं। तुलसीदास का यह विश्वास उन लाखों जनता में जान डाल देता है जो निरन्तर सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक संकट से मुक्ति की कामना करती है। वह जनता ऐसे ही किसी नायक की अपेक्षा करती है, जिसका स्मरण मात्र ही जीवन का दुःख दूर कर, सम्बल प्रदान करे। इसलिए तुलसीदास ने तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप राम के ऐसे ही आदर्श एवं दुखहर्ता स्वरूप की कल्पना की है।

'रामचरितमानस' में वर्णित रामकथा का भारतीय समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। यह 'धर्मग्रन्थ' एवं 'काव्यग्रन्थ' दोनों रूपों में स्थापित हुआ। 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने आदर्श समाज एवं परिवार की जो संकल्पना की है, उसका व्यापक प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा। उसका कारण यह था कि उन्होंने कथा को भारतीय सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के अनुरूप ढाल दिया। तुलसीदास ने जिस रूप में व्यक्ति, परिवार एवं समाज का व्यावहारिक विवेचन प्रस्तुत किया, उसे जनता ने उसी रूप में आत्मसात कर लिया। 'रामचरितमानस' के पात्रों ने मानवीय चरित्रों का प्रतिमान गढ़ दिया, जिसका हिन्दू संस्कृति पर अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा। इस ग्रन्थ में वर्णित लोक सस्कृति एवं लोकव्यवहारों ने आम जनमानस को गहराई से प्रभावित किया। इसी के सांस्कृतिक प्रभाव के कारण उससे जुड़े पर्व त्यौहार धूम–धाम से मनाए जाने लगे।

'रामचरितमानस' का सर्वाधिक प्रभाव धार्मिक रूप से पड़ा। तुलसीदास ने राम के चरित्र में 'धर्म का अभ्युदय' एवं 'पाप का पराभव' दोनों को संयोजित कर, उसे ईश्वरीय आस्था के साथ समाज में स्थापित किया। फलतः इस ग्रन्थ ने

जनता को धार्मिक आस्था प्रदान की। जनता धर्म के तेज से पुनः मण्डित हो उठी और राम दुखहर्ता के रूप में व्याप्त हो गए। रामोपासना की पद्धति वैदिक रूप से प्रारम्भ हो गई। मन्दिर बनाए जाने लगे। पूजा–अर्चना की नवीन पद्धतियाँ विकसित होने लगी। उत्तर भारत में कृष्ण की जगह राम मुख्य देवता के रूप में स्थापित हो गए।

'धारावाहिक रामायण' का उद्देश्य भी तुलसी के विचारों की ही सामाजिक स्थापना है। रामानन्द सागर के अनुसार इस धारावाहिक का निर्माण उन्होंने लोक–कल्याण हेतु किया है किन्तु तुलसीदास के तत्कालीन समय में एवं रामानन्द सागर के समय में कई अन्तर हैं जिसका प्रभाव रामानन्द सागर पर पड़ा। फलतः तुलसीदास के बरक्स रामानन्द सागर के इस विदित उद्देश्य के पीछे भी कई गोपनीय उद्देश्य भी हैं, जिसमें राजनीतिक एवं व्यावसायिक उद्देश्य को भी नकारा नहीं जा सकता है।

रामानन्द सागर ने विभिन्न रामायणों का जिक्र कर एवं खड़ी बोली में पटकथा का निर्माण कर सांस्कृतिक समन्वय का प्रयास किया है। भारत चूँकि विविधतापूर्ण संस्कृति का देश है ऐसे में हर संस्कृति के लोगों को धारावाहिक की ओर आकृष्ट करना भी उनका उद्देश्य था। धारावाहिक में कर्मकाण्डों एवं वैदिक संस्कृति को प्रमुखता देकर उन्होंने वैदिक संस्कृति को भी स्थापित करने का प्रयास किया है।

'रामानन्द सागर' ने 'तुलसीदास' के जिस लोकमंगल से प्रेरित होकर रामकथा के निर्माण की बात की है, उसका प्रभाव भारतीय समाज पर सकारात्मक से अधिक नकारात्मक रूप में पड़ा। जनता ने 'धारावाहिक' को मानवीय विवेक से अधिक धार्मिक निष्ठा के रूप में देखा। फलतः समाज में वैदिक कर्मकाण्ड का प्रचार–प्रसार बढ़ गया। राम एक बार फिर टेलीविजन के माध्यम से अवतरित हो गए। आम जनता के दिलोदिमाग में उसी 'राम' की छवि अंकित हुई, जो रामानन्द सागर ने दिखाई थी। जनता इन पात्रों को उसी भगवत भाव से देखने लगी। 'राम' एक बार फिर आस्था के केन्द्र में आ गए। लोगों के लिए अयोध्या एवं लंका

की वही छवि निर्मित हुई, जो रामानन्द सागर ने दिखाई थी। अब तक जो कथा कल्पनाओं में विचरण कर रही थी, वह इस धारावाहिक के माध्यम से साकार हो गई। जनता घर, द्वार, काम–धंधा सब त्यागकर इस धारावाहिक में प्रदर्शित 'राम' को देखने के लिए व्याकुल हो उठी। जिसका फायदा तत्कालीन राजनीतिक दलों ने उठाया और इन्हीं धर्म भावनाओं का उपयोग कर राम मन्दिर निर्माण को राजनीतिक के केन्द्र में ला खड़ा किया। फलतः जनता मन्दिर को अपनी धार्मिक अस्मिता का प्रतीक समझकर मन्दिर निर्माण के लिए सर्वस्व कुर्बान करने के लिए तैयार हो गई। जिसका नतीजा 6 दिसम्बर 1992 ई. के रूप में सामने आया। न सिर्फ 6 दिसम्बर का वह दिन बल्कि आज भी 'राम' और राम मन्दिर दोनों भारतीय राजनीति के केन्द्र में है, जिससे जनता आज भी समझौता करना नहीं चाहती।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

1 आधार ग्रंथ

1. गोस्वामी तुलसीदास, ***श्रीरामचरितमानस***, सटीक, मझला साइज, टीकाकार : हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर, एक सौ तीनवाँ पुनर्मुद्रण, संवत 2070।

2. रामानन्द सागर, ***दूरदर्शन–धारावाहिक रामायण,*** सम्पादक : तोमिओ मिज़ोकामि, अनुवादक : गिरीश बख्शी, ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज, जापान, 1992।

2 सन्दर्भ ग्रंथ

- **हिन्दी**

1. अरविन्द कुमार सिंह, ***अयोध्या विवाद एक पत्रकार की डायरी***, शिल्पायन, दिल्ली, संस्करण : 2010।
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, ***गोस्वामी तुलसीदास***, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण : 2010।
3. आध्यात्म रामायण, अनुवादक : मुनिलाल गुप्त, गीताप्रेस, गोरखपुर, इकतालीसवाँ पुनर्मुद्रण, संवत 2070।
4. इन्दुजा अवस्थी, ***रामलीला परम्परा और शैलियाँ***, राधाकृष्ण प्रकाशन, द्वितीय संस्करण : 2000।

5. कमलेश्वर, ***मीडिया, भाषा और संस्कृति***, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2006।
6. कामिल बुल्के, ***रामकथा : उत्पत्ति और विकास***, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, छठा संशोधित संस्करण पुनर्मुद्रण : 2012।
7. गौरीशंकर रैणा, ***टेलीविजन नाटक की पटकथा***, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2013।
8. जवरीमल्ल पारख, ***जनसंचार के सामाजिक सन्दर्भ***, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, संस्करण : 2001।
9. ***जायसी ग्रंथावली***, सम्पादक : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2007।
10. डॉ. अम्बा प्रसाद सुमन, ***रामचरितमानस–भाषा रहस्य***, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्रथम संस्करण : 1974।
11. डॉ. राजपति दीक्षित, ***तुलसीदास और उनका युग***, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, तृतीयावृत्ति, संवत 2023।
12. डॉ. रामदेव प्रसाद, ***रामचरितमानस की काव्यभाषा***, वि.भू. प्रकाशन, साहिबाबाद, प्रथम संस्करण : 1986।
13. डॉ. हरदेव बाहरी, ***हिन्दी भाषा***, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2006।
14. देवेन्द्र इस्सर, ***उत्तर आधुनिकता : साहित्य और संस्कृति की नई सोच***, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1996।
15. देवेन्द्र शर्मा, ***भाषा विज्ञान की भूमिका***, संशोधन एवं परिवर्द्धन : दीप्ति शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण दूसरी आवृत्ति 2008।
16. नरेश मेहता, ***संशय की एक रात***, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2013।
17. मैनेजर पाण्डेय, ***शब्द और कर्म***, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, परिवर्द्धित संस्करण : 1997।

18. मनोहर श्याम जोशी, ***पटकथा लेखन एक परिचय***, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण चौथी आवृत्ति : 2013।
19. महर्षि वाल्मीकि, ***श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (प्रथम खण्ड/द्वितीय खण्ड)***, गीताप्रेस, गोरखपुर, छियालीसवाँ पुनर्मुद्रण, संवत 2071।
20. ***रामचरितमानस तुलनात्मक अध्ययन***, सम्पादक : डॉ. नगेन्द्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1974।
21. रामजी तिवारी, ***गोस्वामी तुलसीदास***, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रण : 2008।
22. राममनोहर लोहिया, ***भारत माता धरती माता***, सम्पादक : ओमकार शरद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण : 2007।
23. रोमिला थापर, ***प्राचीन भारत (कक्षा 6)***, अनुवादक : गुणाकर मुले, एन.सी. आर.टी., नई दिल्ली, 2005।
24. रामचन्द्र गुहा, ***भारत नेहरू के बाद***, अनुवादक : सुशान्त झा, पेंगुइन बुक्स इंडिया, संस्करण : 2012।
25. रामविलास शर्मा, ***भाषा और समाज***, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण आवृत्ति : 2008।
26. रामधारी सिंह दिनकर, ***संस्कृति के चार अध्याय***, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तीसरा संस्करण पुनर्मुद्रण : 2012।
27. विश्वनाथ त्रिपाठी, ***लोकवादी तुलसीदास***, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण : 2011।
28. शिवकुमार मिश्र, ***भक्ति–आन्दोलन और भक्ति–काव्य***, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संशोधित संस्करण, द्वितीय आवृत्ति : 2015।
29. ***साहित्य और सिनेमा***, सम्पादक : पुरुषोत्तम कुन्दे, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण : 2014।
30. सुधीश पचौरी, ***हिन्दुत्त्व और उत्तर–आधुनिकता***, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण पहली आवृत्ति : 2010।
31. सुधीश पचौरी, ***मीडिया और साहित्य***, राजसूर्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1996।

32. हरीश कुमार, ***सिनेमा और साहित्य***, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1998।

33. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ***हिन्दी साहित्य की भूमिका***, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2008।

- **अंग्रेजी**

1. Arvind Rajagopal, ***Politics after Television: Hindu Nationalism and the reshaping of the Public in India***, Cambridge University Press, first published. 2001.

- **पत्र–पत्रिकाएँ**

1. ***पाखी***, सम्पादक : प्रेम भारद्वाज, जनवरी 2016।
2. सुरेश शर्मा, ***हाँ एक नई राह दिखाई है इस फिल्म ने***, नवभारत टाइम्स, 16 अगस्त 2016।

- **वेब लिंक**

1. https://www.youtube.com/watch?v=MbiDDdNpnJg
2. Hindulegends.com/ek-shloki-ramayana-shortest-summary-ramayana/
3. Indianexpress.com/article/lifestyle/art-and-cultre/our-many-ramayanas-the-Sunday-mythology-culb/

3 सहायक ग्रंथ

- **हिन्दी**

1. अनुपम ओझा, ***भारतीय सिने–सिद्धान्त***, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2002।
2. अमृतलाल नागर, ***साहित्य और संस्कृति***, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, संस्करण : 1986।
3. अमृतलाल नागर, ***फिल्मक्षेत्रे–रंगक्षेत्रे***, सम्पादक : डॉ. शरद नागर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति : 2012।

4. उदयभानु सिंह, ***तुलसी काव्य मीमांसा***, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण आवृत्ति : 2008।
5. ए.के. रामानुजन, ***तीन सौ रामायण***, सम्पादक : अपूर्वानन्द, अनुवादक : धवल जायसवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2012।
6. कुबेरनाथ राय, ***रामायण महीतीर्थम***, भरतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, चौथा संस्करण : 2011।
7. कृतिवास, ***कृतिवास रामायण***, अनुवादक : नन्दकुमार अवस्थी, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ, संस्करण : 1975।
8. कृष्णदेव उपाध्याय, ***लोक संस्कृति की रूपरेखा***, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2014।
9. गुणवन्त शाह, ***रामायण : मानवता का महाकाव्य***, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण : 2015।
10. जगदीश्वर चतुर्वेदी, ***मीडिया, विचारधारा और संस्कृति***, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2013।
11. जवरीमल्ल पारख, ***जनसंचार माध्यमों का राजनीतिक चरित्र***, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्श, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2006।
12. जवरीमल्ल पारख, ***हिन्दी सिनेमा का समाजशास्त्र***, ग्रंथलोक, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2006।
13. डॉ. अशोक कुमार यमन, ***टेलीविजन और संगीत***, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2014।
14. डॉ. भ.ह. राजूरकर, ***रामकथा और तुलसी***, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्रथम संस्करण : जनवरी 1974।
15. डॉ. विनय नारायण सिंह, ***तुलसी के रामकथा काव्य***, ग्रंथलोक, दिल्ली, संस्करण : 2011।
16. डॉ. ऋचा मिश्र, ***तुलसी काव्य के अध्ययन में विदेशी लेखकों का योगदान***, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1999।
17. डॉ. पांडुरंग राव, ***रामायण के महिला पात्र***, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण : 1993।

18. डॉ. जगत नारायण दुबे, ***भारतीय संस्कृति में रामायण के पात्रों का योगदान***, दुर्गा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, संस्करण : 2006।
19. डॉ. शिवकुमार शुक्ल, ***रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन***, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण : 15 अगस्त 1965।
20. डॉ. सज्जनराम केणी, ***रामचरितमानस : तुलनात्मक अनुशीलन***, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्रथम संस्करण : 1974।
21. डॉ. भगीरथ मिश्र, ***महाकवि तुलसीदास और युग सन्दर्भ***, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1973।
22. डॉ. मुंशीराम शर्मा, ***तुलसी का मानस***, ग्रंथम, कानपुर, प्रथम संस्करण : 1972।
23. डॉ. अजित नारायण सिंह तोमर, ***तुलसी की रचनाओं का भाषा वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय विवेचन***, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, प्रथम संस्करण : जनवरी 1977।
24. ***तुलसीदास***, सम्पादक : विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण : 2009।
25. ***तुलसी***, उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण आवृत्ति, 2005।
26. नन्दकिशोर नवल, ***तुलसीदास***, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला छात्र संस्करण : 2013।
27. पी.वी. नरसिम्हाराव, ***अयोध्या 6 दिसम्बर 1992***, अनुवादक : योगेन्द्र सिंह, पेंगुइन बुक्स इंडिया, हिन्दी प्रथम संस्करण : 2006।
28. ***प्रयाग की रामलीला***, सम्पादक : योगेन्द्र प्रताप सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2011।
29. प्रेमचन्द माहेश्वरी, ***हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप और विकास***, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण आवृत्ति : 2009।
30. महाकवि कम्बन, ***कम्ब रामायण***, सम्पादक : श्री अवधनन्दन, अनुवादक : न. वी. राजगोपालन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, द्वितीय संस्करण : 2004।

31. रमेश कुन्तल मेघ, ***तुलसी आधुनिक वातायन से***, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2007।
32. रामविलास शर्मा, ***भारतीय सौन्दर्य–बोध और तुलसीदास***, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2001।
33. राजा गोनबुद्ध, ***रंगनाथ रामायण***, सम्पादक : श्री अवधनन्दन, अनुवादक : श्री ए.सी. कामाक्षिराव, बिहार, राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, द्वितीय संस्करण : 1986।
34. रमन सिन्हा, ***रामचरितमानस पाठ : लीला : चित्र : संगीत***, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2011।
35. राही मासूम रज़ा, ***सिनेमा और संस्कृति***, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2001।
36. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ***गोसाईं तुलसीदास***, वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण : 1965।
37. सुधीश पचौरी, ***प्रसार भारती और प्रसारण नीति***, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1999।
38. सुधीश पचौरी, पॉपुलर कल्चर के विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2011।
39. संजीव श्रीवास्तव, हिन्दी सिनेमा का इतिहास, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, संस्करण : 2004।
40. सत्यजीत रे, ***चलचित्र कल और आज***, अनुवादक : योगेन्द्र चौधरी, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1992।

- **अंग्रेजी**

1. Anand W.P. Guruge, ***The Society of the Ramayana***, Abinav publications, 1991.
2. Father Dr. Camille Bulcke, ***Ramkatha and other Essays***, Vidyanidhi, New Delhi, Edition : 2015.
3. Gary R. Edgerton, Brian Geoffrey Rose, ***Thinking Outside the Box : A Cntemporary Television Genre Reader***, University Press of Kentucky, 2005.

4. H.D. Sankalia, ***Ramayana : Myth or Reality?***, P.P.H., New Delhi, April 2009.
5. Lawrence A. Babb, Susan S. Wadley, ***media and the Transformation of Religion in South asia***, Motilal Banarasidas publ., New Delhi, 1998.
6. Mandakranta Bose, ***The Ramayana Revisited***, Oxford University Press, U.S.A., 2004.
7. Purnima Mankekar, ***Screening culture, viewing Politics : An Ethnography of Television, Womanhood, and Nation in Postcolonial India***, Duke University Press, 1999.
8. Philip Lutgendorf, ***The life of a Text : Performing the Ramcharitmanas of Tulsidas***, University of California press, Berkeley, California, 1991.
9. Rachel Dwyer, ***Filming the Gods : Religion and Indian Cinema***, Routledge publication : 2006.
10. Soogi Kim, ***Hanuman in myth and Ramayana theatre in India***, University of Wisconsin-Madison, 1990.
11. ***The Television Studies Reader***, Edited by Robert Clyde Allen and Annette Hill, Routledge publication, 2004.

पत्रिकाएँ

- **हिन्दी**

1. ***अनभै साँचा***, रामकथा विशेषांक, जुलाई–सितम्बर 2012।
2. ***इस्पातिका***, सिनेमा विशेषांक, जनवरी–जून 2013।
3. ***वाक***, प्रवेशांक, जनवरी–मार्च 2007।
4. ***संवेद***, सिनेमा विशेषांक, जनवरी 2015।

- **अंग्रेजी**

1. Jonathan Karp and Michael Williams, ***Reigning Hindu TV Gods of India Have Viewers Glued to Their Sets***, The Wall Street Journal, 22 April 1998.

2. Philip Lutgendorf, **All in the (Raghu) Family : A Video Epic in Cultural Context.** In John Stratton Hawley, Vasudha Narayanan. The life of Hinduism, University of California press, Berkeley, 2006.
3. Purnima Mankekar, ***Epic contests : Television and religious identity in India***, Media worlds : Anthropology on new terrain (2000) : (134-51).
4. Richard Schechner and Linda Hess, ***The Ramlila of Ramnagar [India]***. The Drama review : TDR (1977), page 51-82.
5. Steve Derne, ***Market forces at work : religious themes in commercial Hindi films***, media and the Transformation of Religion in South Asia, 1995.
6. Vasudha Dalmia, ***Television and tradition : some observations on the serialisation of the Ramayana***. Ramayana and Ramayanas (1991) : 207-28.

बुकलेट

1. के.एन. पणिक्कर, ***आज का सम्प्रदायवाद : हस्तक्षेप की सार्थकता***, अनुवादक : यश चौहान, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, तीसरा संस्करण : 2015।
2. रामशरण शर्मा, ***साम्प्रदायिक इतिहास और राम की अयोध्या***, अनुवादक : यश चौहान, पाँचवाँ संस्करण : अक्टूबर 2015।